GE-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भौतिक भूगोल

GE-01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भौतिक भूगोल

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राजस्थान)

संयोजक / समन्वयक एवं सदस्य

विषय समन्वयक
प्रोफेसर(डॉ.) एस.सी. कलवार
पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

सदस्य सचिव / समन्वयक
डॉ. अशोक शर्मा
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रोफेसर(डॉ.) सन्तोष शुक्ला**
   भूगोल विभाग
   एच.एस. गौड़ विश्वविद्यालय,सागर(मध्य प्रदेश)
2. **प्रोफेसर(डॉ.) एस.एम. राशीद**
   जामिया मिलिया इस्लामिया नई दिल्ली
3. **प्रोफेसर(डॉ.) के.एन. जोशी**
   विकास अध्ययन संस्थान जयपुर (राज.)
4. **प्रोफेसर(डॉ.) एल.सी. खत्री**
   भूगोल विभाग
   एम.एल. सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)
5. **डॉ. ओ.पी. छीपा**
   विभागाध्यक्ष
   राजकीय महाविद्यालय,अजमेर(राज.)

संपादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. के.के. शर्मा
सेवानिवृत्त प्राचार्य
115/10, मेडिकल गर्ल्स हॉस्टल के सामने,
सिविल लाइन, अजमेर

लेखक

1. **डॉ. ओ.पी. छीपा**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय महाविद्यालय,अजमेर
2. **डॉ. आर.एन. शर्मा**
   एसोसियेट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. **डॉ. बी.एल. शर्मा**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
4. **डॉ. एन.के. जेतवाल**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, बून्दी
5. **डॉ. मिलन यादव**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
6. **डॉ. विनोद कुमार**
   विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, सिरोही
7. **डॉ. अजय कुमार शर्मा**
   वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
8. **डॉ. प्रीति बाला**
   भूगोल विभाग
   राजकीय उच्च अध्ययन संस्थान, अजमेर
9. **डॉ. रामा प्रसाद**
   असिसटेन्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
10. **डॉ. एम.जैड.ए. खान**
    वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
    राजकीय महाविद्यालय, कोटा
11. **डॉ. बी.एल. गुप्ता**
    असिसटेन्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
    राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
12. **डॉ. आर.पी. शर्मा**
    वरिष्ठ व्याख्याता, भूगोल विभाग
    राजकीय महाविद्यालय, अलवर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**अकादमिक**	**पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : पुनः मुद्रण : जून, 2010

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

GE-01

भूगोल

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भौतिक भूगोल

इकाई सं.		इकाई	पृष्ठ सं.
इकाई - 1	:	भौतिक भूगोल, पृथ्वी की उतपत्ति व आन्तरिक संरचना	7
इकाई - 2	:	महाद्वीपीय विस्थापन तथा प्लेट विवर्तनिकी	27
इकाई - 3	:	भूसन्तुलन का सिद्धान्त; भूसंचलन एवं परिणामस्वरूप संरचनात्मक रूप; ज्वालामुखी एवं भूकम्प	49
इकाई - 4	:	चट्टानें एवं अनाच्छादन (Rocks and Denudation)	80
इकाई - 5	:	पवनों, लहरों, एवं भूमिगत जल के कार्य, भूअपरदन व संरक्षण	101
इकाई - 6	:	वायुमण्डल	118
इकाई - 7	:	तापमान, उसका वितरण व तापमान की विलोमता	138
इकाई - 8	:	वायुदाब	155
इकाई - 9	:	पवन परिसंचरण	161
इकाई - 10	:	आर्द्रता, संघनन एवं वर्षा का वितरण स्वरूप	171
इकाई -11	:	विश्व के जलवायु प्रदेश	185
इकाई -12	:	जल मण्डल	206
इकाई -13	:	सागरीय लवणता	224
इकाई -14	:	महासागरीय जल का संचलन : लहरें, ज्वार एवं धाराएँ	239
इकाई -15	:	महासागरीय निक्षेप एवं महासागरीय जल का प्रदूषण	256

परिचयात्मक

इस पुस्तक का लेखन वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा दवारा अनुमोदित प्रथम वर्ष भूगोल के प्रथम प्रश्न-पत्र के पाठ्यक्रमानुसार किया गया है । इसमें प्रश्न-पत्र से सम्बन्धित विभिन्न प्रत्ययों को यथा सम्भव सरल भाषा में अभिव्यक्त किया गया है । मानचित्र तथा आरेख भूगोल के उपयोगी उपकरण हैं । इनका यथा स्थान समावेश किया गया है, ताकि विभिन्न भौगोलिक पहलुओं को समझने में आसानी हो ।

प्रस्तुत पुस्तक का यह प्रथम संस्करण है । आशा है यह पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी । आपके सुझावों दवारा इस पुस्तक का परिमार्जन प्रशंसनीय होगा ।

इकाई-1 : भौतिक भूगोल, पृथ्वी की उत्पत्ति व आन्तरिक संरचना

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भौतिक भूगोल
 2.1.1 भौतिक भूगोल की प्रकृति
 2.1.2 भौतिक भूगोल का विषय क्षेत्र
 2.1.3 भौतिक भूगोल के मुख्य भाग
1.3 सौर मण्डल
1.4 पृथ्वी की उत्पत्ति के सिद्धान्तों का परिचय
 1.4.1 एक तारक परिकल्पनाएं
 1.4.2 द्वैतारक परिकल्पनाएं
 1.4.3 नवीन परिकल्पनाएं
1.5 पृथ्वी की आन्तरिक संरचना
 1.5.1 निहित स्त्रोत
 1.5.2 आकस्मिक संचलन
 1.5.3 उल्कापात
 1.5.4 स्वैस का वर्गीकरण
 1.5.5 नवीन मान्यता
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 संदर्भ ग्रन्थ
1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य-

- भौतिक भूगोल की प्रकृति एवं विषय क्षेत्र को समझना ,
- भौतिक भूगोल के मुख्य भागों व उनके अन्तर्सम्बन्ध को जानना,
- सौर मण्डल के विषय में जानना
- पृथ्वी की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों को समझना, तथा
- पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की जानकारी करना ।

1.1 प्रस्तावना

आपने देखा होगा कि मनुष्य ही नहीं, सभी जीव -जन्तु अपने निवास स्थान एवं विचरण क्षेत्र को पहचानने तथा अधिकाधिक जानने का प्रयास करते हैं । किन्तु मानव इतिहास में यही प्रयास भौगोलिक ज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था रही है । धीरे - धीरे मानव का आवासीय परिवेश धरातल (**स्थल मण्डल**) पर चारों ओर फैलता गया । पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण बल के कारण उसके चारों ओर गैसीय आवरण (**वायुमण्डल**) रख जल के विभिन्न रूप (**जल मण्डल**) जकड़े हुए हैं । इनके संयोजन से विभिन्न प्रकार के जीवों (**जीव मण्डल**) की उत्पति हुई है । इन सभी मण्डलों का **सम्पर्क क्षेत्र** उन सीमाओं तक व्याप्त है जहाँ तक धरातल से नीचे व ऊपर की ओर मानवीय पहुंच है । इस **सम्पर्क क्षेत्र** में सभी वस्तुओं, तथ्यों व घटनाओं के मध्य अत्यन्त जटिल पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध है जिसे **मानव-पर्यावरण तन्त्र** (man-environment system) कहा जाता है ।

1.2 भौतिक भूगोल

1.2.1 भौतिक भूगोल की प्रकृति

यह एक बहुपयोगी, मानवोचित रख समाजोपयोगी विज्ञान है । इसकी प्रकृति को बिन्दुवार इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है

1. **अवस्थिति का ज्ञान** - अपनी अवस्थिति एवं परिवेश को समझने में सभी प्रयासरत रहते हैं । स्वयं की स्थिति जान लेने के पश्चात् क्रमश : आसपास एवं दूरस्थ क्षेत्रों की स्थिति, दिशा व दूरियाँ जानने की आवश्यकता होती है । यह सुविधा भौतिक भूगोल में निहित है
2. **पर्यावरण-मानव सहसम्बन्ध का अवबोध** - इस वृहत् रख आधारभूत सहसम्बन्ध का अवबोध कराने में भौतिक भूगोल सक्षम है । भूगोल के विकास के साथ साथ इस सहसम्बन्ध की प्रगाढ़ता एवं जटिलता की अधिकाधिक जानकारियाँ उपलब्ध हुई हैं ।
3. समग्र ज्ञान में सहायक - पर्यावरण - मानव सहसम्बंध की विभिन्न विज्ञानों में अपने - अपने दृष्टिकोण से व्याख्या की गई है |किन्तु इसके सभी पहलुओं का स्व साथ उत्पत्ति व आन्तरिक संरचना अध्ययन करना अधिक उपयोगी होता है समग्र उपागम के आधार पर इस सहसम्बन्ध का पूर्ण ज्ञान उपलब्ध कराना स्टाम्प के मतानुसार भौतिक भूगोल का विशिष्ट योगदान (unique contribution) है|
4. क्षेत्रीय नियोजन में सहायक - स्थलाकृत्तियों वितरण प्रारूपों के अध्ययन से क्षेत्रीय विशेषताओं एवं समस्याओं की जानकारी में वृद्धि होती है | परिणामस्वरूप प्राप्त जानकारी के आधार पर क्षेत्रीय नियोजन एवं विकास के प्रयास प्रभावी होते हैं ।
5. लोकोपकारी उपागम (humanistic approach) - भूगोल ही एक ऐसा विज्ञान है जो पर्यावरण - मानव सम्बन्ध को समग्र रूप में अध्ययन करता है । इस अन्तर्सम्बन्ध के जटिल तथ्यों का अध्ययन भूगोल लोकोपकारी परिप्रेक्ष्य में करता है ।

1.2.2 भौतिक भूगोल का विषय क्षेत्र

यदि हम अपने चारों ओर देखें तो पायेंगे कि धरातल रख स्थलाकृतियाँ सर्वत्र समान नहीं हैं । सर्वत्र स्थलमण्डल का विस्तार भी नहीं है । स्थल से जलमण्डल का विस्तार लगभग ढाई गुना

अधिक है । इनके अतिरिक्त पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल का आवरण है । ये तीनों मण्डल **प्राकृतिक पर्यावरण** के अंग हैं रख परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । प्राकृतिक पर्यावरण जैव मण्डल को प्रभावित करता है एवं उसके साथ अन्तर्क्रिया करता है । इसका अध्ययन भौतिक भूगोल में किया जाता है ।

भौतिक भूगोल के अध्ययन में जैवमण्डल को सम्मिलित करने के बारे में स भी भूगोलवेत्ता एकमत नहीं हैं । यद्‌यपि अब अधिकाधिक भूगोलवेत्ता जैव मण्डल को भौतिक भूगोल की विषय - वस्तु में सम्मिलित करने के पक्ष में होते जा रहे हैं, तथापि कुछ भूगोलवेत्ता इसे केवल प्राकृतिक पर्यावरण का अध्ययन मानते हैं ।

आर्थर होम्स के अनुसार **"भौतिक पर्यावरण का अध्ययन ही अपने आप में भौतिक भूगोल है जिसके अन्तर्गत स्थलाकृति (भू - आकृति विज्ञान), सागरों व महासागरों (समुद्र विज्ञान) एवं वायुमण्डल (व जलवायु विज्ञान) का अध्ययन सम्मिलित है |"** होम्स ने अपनी परिभाषा में भौतिक भूगोल के तीन घटक माने हैं जो मोटे रूप में स्थलमण्डल, जलमण्डल व वायुमण्डल हैं ।

स्ट्रैलर (strahler) का मानना है कि जैविक एवं भौतिक पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्ध को भली - भांति समझने के लिए भौतिक भूगोल विभिन्न प्राकृतिक विज्ञानों की विषय - वस्तु का उपयोग करता है । उनके अनुसार मानव एवं उसके प्राकृतिक पर्यावरण की अन्तर्क्रिया एक अत्यन्त सीमित परत में होती है जिसे वे **जैविक परत (Life layer)** कहते हैं । यह **सम्पर्क क्षेत्र (Contact zone)** वायुमण्डल - स्थलमण्डल एवं वायुमण्डल -जलमण्डल के मिलन की संकड़ी परत है । उनके अनुसार इस सम्पर्क क्षेत्र को अन्तरापृष्ठ **(interfaces)** भी कहा जा सकता है| इस सम्पर्क क्षेत्र में विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की गहन क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं । इस क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं एवं उनके परिणामों का वितरण अत्यन्त असमान पाया जाता है । इसलिए स्ट्रैलर ने कहा है कि भौतिक भूगोल में जैविक परत की स्थानिक भिन्नता का अध्ययन किया जाता है । मनुष्य धरातल पर निवास करता है एवं प्राकृतिक पर्यावरण से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । अत: प्रारम्भ से ही अपने प्राकृतिक पर्यावरण एवं उसकी स्थानिक भिन्नताओं को अधिकाधिक समझने की उसकी जिज्ञासा स्वाभाविक है । इसी प्रकार के विचार मैक इन्टायर के थे, उन्होंने लिखा है कि **"भौतिक भूगोल के अध्ययन में दो आधारभूत किन्तु विषम घटकों-भौतिक पर्यावरण एवं जीवन, का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण सम्मिलित है ।"** अत: भौतिक भूगोल की विषय-वस्तु के प्रति व्यापक दृष्टिकोण रखते हुए निष्कर्ष स्वरूप हम यह परिभाषित कर सकते हैं कि **भौतिक भूगोल प्राकृतिक एवं जैविक पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों एवं उनके वितरण प्रारूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन है ।** अत: भौतिक भूगोल के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु **भूतल** है । प्रत्यक्ष रूप से जिस **भूतल** पर हम घूमते-फिरते हैं या रहते हैं, उससे कहीं अधिक व्यापक रूप को इसके अध्ययन में सम्मिलित जाता है (चित्र- 1.1) । भौतिक भूगोल के अध्ययन में धरातल व उसके नीचे कई किलोमीटर गहराई तक का भाग सम्मिलित किया जाता है।

---

1. **A. Holmes.** “The study of the physical environment by itself Geography, which includes consideration of the surface relief of the globe (Geomorphology), of the seas and oceans (Oceanography) and air (Meteorology and Climatology).”

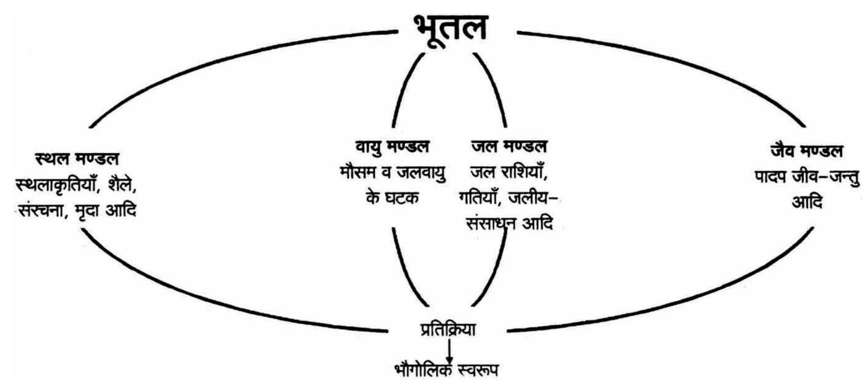

चित्र- 1. 1

स्थलमण्डल के इस गहरे भाग से जल व विविध प्रकार के खनिज प्राप्त होते हैं । पादप भी गहरी मिट्टियों में उगते है व उससे पोषक तत्व प्राप्त करते हैं । धरातलीय स्वरूप भी भूपृष्ठ एवं भूगर्भ की शक्तियों द्वारा बनते हैं । धरातल पर पाया जाने वाला गैसीय आवरण भी भूतल का ही अंग है। **वायुमण्डल** में पाई जाने वाली परिस्थितियाँ मौसम व जलवायु को प्रभावित करती हैं (चित्र- 1.2)। भूतल पर पाई जाने वाली विशाल जलराशि इसका तृतीय अंग है । **जलमण्डल** का महत्व सस्ते यातायात के साधन के अतिरिक्त खाद्य व खनिज प्राप्त करने के साधन के रूप में बढ़ता जा रहा है । इस सम्पूर्ण भूतल के त्रिविमीय क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पादप व जीव- जन्तु पाये जाते हैं । **ये जैव मण्डल** के अंग हैं । इस प्रकार भौतिक भूगोल के चार प्रमुख अंग हैं (चित्र-1.1)।

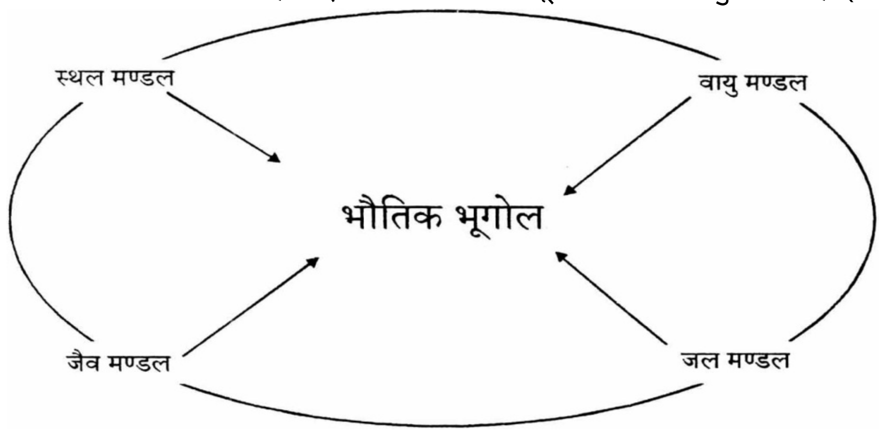

चित्र - 1. 2

बोध प्रश्न- 1

1. स्ट्रैलर के अनुसार जहाँ मानव व प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य अन्तर्क्रिया होती है, वह है -
   (अ) सम्पर्क क्षेत्र (ब) वायुमण्डल
   (स) जलमण्डल (द) स्थलमण्डल । ( )
2. पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल जिस कारण पाया जाता है, वह है -
   (अ) जीव जन्तु (ब) गैसीय दाब
   (स) पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल (द) वनस्पति ( )

3	'जैविक परत' को भौतिक भूगोल के अध्ययन में जिसने सम्मिलित किया, वह है-	
	(अ) होम्स	(ब) स्ट्रैलर
	(स) मैक इन्टायर	(द) स्टीअर्स ( )

1.2.3 भौतिक भूगोल के मुख्य भाग

1. **स्थलमण्डल -** इसके अन्तर्गत वह भाग सम्मिलित किया जाता है जिस पर हम विचरण करते हैं या रहते हैं रख जिस गहराई तक हम इसका उपयोग करते हैं । धरातल सर्वत्र समतल नहीं है, बल्कि यह अत्यन्त असमान है । कहीं पर ऊँची -ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हैं तो कहीं पर गहरी -गहरी घाटियाँ, कहीं पर विशाल समतल मैदान हैं तो कहीं पर छोटे -छोटे द्वीप । महाद्वीपों के निर्माण से लेकर धरातल पर विभिन्न स्वरूपों के निर्माण में भूगर्भिक शक्तियों व प्रक्रियाओं का योगदान रहा है । भूगर्भिक शक्तियों के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की शैलों का निर्माण होता है । इन शैलों में संरचनात्मक भिन्नताएँ पाई जाती हैं । शैलों में विविध प्रकार के खनिज पाये जाते हैं । इनके विघटन से विभिन्न गुणों वाली मिट्टियों की उत्पत्ति होती है । ये सभी तथ्य स्थलमण्डल के अंग हैं ।

2. **वायुमण्डल -** पृथ्वी के चारों ओर उसके गुरुत्वाकर्षण बल से जकड़ा हुआ गैसीय आवरण मिलता है जिसे **वायुमण्डल** कहते हैं । इसकी संघटक गैसें हमारे लिये अदभुत एवं आधारभूत संसाधन हैं । भौतिक भूगोल के अन्य घटकों की भाँति वायुमण्डल भी अत्यन्त परिवर्तनशील घटक है । वायुमण्डलीय अल्प-कालिक परिस्थितियों को **मौसम** एवं दीर्घकालिक परिस्थितियों को **जलवायु** कहते हैं । हवा का तापमान, दाब, पवनों की गति व दिशा, मेघाच्छादन, वृष्टि आदि इसके प्रमुख अंग हैं ।

3. **जलमण्डल** - धरातल के बहुत बड़े भाग पर जलीय आवरण पाया जाता है जिसे जलमण्डल कहते हैं । यह भी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा जकड़ा हुआ जलीय आवरण है । जलाशय छोटे हों अथवा बड़े, इनमें जल का संघटन भिन्न -भिन्न पाया जाता है । जल की गहराई में भी व्यापक भिन्नताऐं पायी जाती हैं । जलमण्डल में विभिन्न प्रकार की गतियाँ होती है । लहरें, धाराऐं, ज्वार - भाटा आदि प्रमुख गतियाँ हैं । जलमण्डल में जैविक व अजैविक संसाधनों का अतुल भण्डार पाया जाता है । इन सभी तथ्यों का अध्ययन जलमण्डल के अंग के रूप में किया जाता है ।

---

1. **Mc. Intyre-** “Physical Geography is an insight into and analysis of the two basic but heterogenous components-physical environment and life.”
2. “Physical Geografhy is an analytical of the interrelationships and areal patterns of the natural and biotic environment.”

4. **जैवमण्डल** - स्थलमण्डल, वायुमण्डल व जलमण्डल में अनेक प्रकार के जीव पाये जाते हैं | विविध प्रकार के पादप, जीव -जन्तु एवं मानव **जैवमण्डल** के अंग हैं । मानव व उसकी क्रियाओं के क्षेत्रीय प्रारूप के अध्ययन हेतु एक अलग शाखा-मानव भूगोल है । अत: भौतिक भूगोल में मानव को छोड्कर सभी प्रकार के पादप व जीव -जन्तुओं का अध्ययन सम्मिलित किया जाता है

भौतिक भूगोल के उपरोक्त चारों अंगों -स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल व जैवमण्डल की अन्तर्निर्भरता व अन्तर्सम्बन्ध अनेक तथ्यों में देखने को मिलते हैं । उदाहरण के लिए मिट्टी शैलों के विघटन से बनती है । इसके कणों के मध्य रिक्त स्थान में वायुमण्डलीय गैसें पाई जाती हैं । मिट्टी में जलीय अंश भी होता है । कई जीवित व मृत जीव भी मिट्टियों में पाये जाते हैं । वायुमण्डल में असंख्य धूलिकण, उन पर जमी पानी की बूंदें, बीजाणु, जीवाणु, विषाणु आदि होते हैं । जल मण्डल में विशाल मात्रा में तलछट, घुलनशील गैसें व विविध प्रकार के पादप एवं जीव -जन्तु पाये जाते हैं । जलवायु पर ऋतु अपक्षय (weathering),वनस्पति आदि की निर्भरता भौतिक भूगोल के चारों अंगों के पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाता है ।

1.3 सौर मण्डल

ब्रहमाण्ड असीमित व अपरिमित है । इसमें अनेक तारे, नक्षत्र, ग्रह, सौर्य परिवार, आकाशगंगाऐं आदि हैं । इनमें से हमारा एक सौर्य परिवार भी है । ये सभी ग्रह अपने उपग्रहों के साथ सूर्य की परिक्रमा करते हैं । सौर्य परिवार के कई संरचनात्मक गुण यह इंगित करते हैं कि इस परिवार में सम्मिलित सभी ग्रहों की उत्पत्ति एक ही समय एवं समान पदार्थो से हुई है । अत: सौर्य परिवार की उत्पत्ति से सम्बन्धित परिकल्पनाएँ पृथ्वी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में भी लागू होती हैं । सौर्य परिवार की उत्पत्ति के विषय में समय-समय पर कई परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की गई । इनमें से कोई भी परिकल्पना सर्वमान्य नही है । इनके विषय में जानने से पूर्व सौर्य परिवार की कुछ विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है -

1. हमारे सौर्य परिवार के ग्रहों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है । प्रथम वर्ग में **आन्तरिक ग्रह (Inner or Terrestrial Planets)** आते हैं । चित्र संख्या 1. 3 देखिये, इस वर्ग में बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल आते हैं । ये ग्रह अपेक्षाकृत छोटे हैं । इनका घनत्व अधिक है । इनकी परिभ्रमण गति कम है| इसके कोई उपग्रह नही है अथवा बहुत कम उपग्रह है, जैसे पृथ्वी के एक व मंगल के दो उपग्रह हैं । द्वितीय वर्ग में **बाह्य ग्रह (outer planets)** आते हैं| इस वर्ग में वृहस्पति, शनि, अरूण, वरूण व यम सम्मिलित हैं । आंतरिक ग्रहों की अपेक्षा बाह्य ग्रहों का आकार बड़ा है । इनका घनत्व कम है । इनकी परिभ्रमण गति अधिक है । इनके उपग्रह भी अधिक हैं । यम इसका अपवाद है क्योंकि इसके विषय में अभी तक पूर्ण जानकारी नही हे ।
2. सभी ग्रहों के अक्ष (axis) अपने कक्ष-तल (orbital plane) पर झुके हुए हैं । किन्तु विभिन्न ग्रहों के अक्षों का अपने कक्ष -तल पर झुकाव भिन्न -भिन्न है ।
3. सभी ग्रह अपने इन अक्षों पर परिभ्रमण (rotation) करते हैं ।
4. सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा घड़ी की सूई के प्रतिकूल दिशा में करते हैं ।
5. सभी ग्रहों के पथ लगभग वृत्तकार अथवा दीर्घवृताकार (elliptical) हैं ।

6. आकार व द्रव्यमान (mass) की दृष्टि से सभी ग्रह सूर्य की तुलना में बहुत छोटे हैं । सौर्य परिवार के कुल द्रव्यमान का लगभग 98 प्रतिशत भाग सूर्य में केन्द्रित है ।

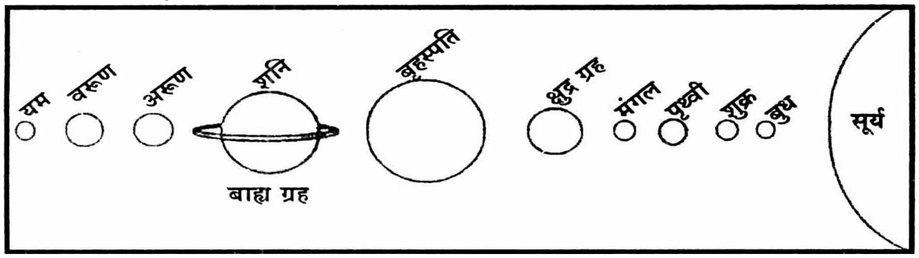

चित्र - 1.3 : सौर परिवार

7. सौर्य परिवार में कोणीय संवेग (ANGULAR MOMENTUM) का वितरण विशेष प्रकार का है| यांत्रिकी (MECHANICS) में किसी पिण्ड का कोणीय संवेग उसके द्रव्यमान व वेग (VELOCITY) का प्रतिफल (द्रव्यमान*वेग=mv) होता है । किसी केन्द्र की पीरक्रमा करते हुए पिण्ड का कोणीय संवेग उसके द्रव्यमान, वेग व उसकी कक्षा (ORBIT) के अर्द्धव्यास का प्रतिफल (अर्थात mvR) के बराबर होता है । कोणीय संवेग के संरक्षण सिद्धान्त के अनुसार अंतरिक्ष में किसी एकाकी तंत्र में कुल कोणीय संवेग समान रहता है । किन्तु सौर्य परिवार में कोणीय संवेग का वितरण समान नहीं है । तालिका 1 में सौर्य परिवार के विभिन्न सदस्यों का कोणीय संवेग दिया गया है । इस तालिका में सूर्य व अन्य ग्रहों के कोणीय संवेग की तुलना करने पर ज्ञात होगा कि कुल कोणीय संवेग का केवल 17 प्रतिशत भाग ही सूर्य में समाविष्ट है । शेष 98.3 प्रतिशत भाग सौर्य परिवार के ग्रहों में केन्द्रित है । इसके विपरीत सौर्य परिवार के कुल द्रव्यमान का 98 प्रतिशत भाग सूर्य मे केन्द्रित है |

तालिका- 1.1 : कोणीय संवेग

सौर्य परिवार के सदस्य		**कोणीय संवेग**
बुध		0.03
शुक्र		0.69
पृथ्वी		1.00
मंगल		0.13
बृहस्पति		725.00
शनि		294.00
अरूण		64.00
वरूण		95.00
यम	लगभग	1.00
सूर्य	लगभग	20. 00
सौर्य परिवार का योग		1200. 85

बोध प्रश्न- 2

1.	जो बाह्य ग्रहों की श्रेणी में नहीं है, वह है -		
	(अ) यम	(ब) शनि	
	(स) वरूण	(द) मंगल	( )
2.	आन्तरिक ग्रह नहीं है -		
	(अ) बुध	(ब) अरूण	
	(स) शुक्र	(द) मंगल	( )
3.	सौर्य परिवार के द्रव्यमान का जितना प्रतिशत भाग ग्रहों में निहित है, वह है -		
	(अ) 98	(ब) 11	
	(स) 2	(द) 90	( )

1.4 पृथ्वी की उत्पत्ति के सिद्धान्तों का परिचय

उपर्युक्त विशेषतायें ही सौर्य परिवार की उत्पत्ति के विषय में दी गई परिकल्पनाओं का आधार हैं| अत: इन्हीं विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में परिकल्पनाओं के गुण-दोषों की समीक्षा की जाती है । इन परिकल्पनाओं को तीन मुख्य वर्गो में बांटा जा सकता है -

1. एक तारक परिकल्पनाएँ (ONE STAR HYPOTHESES) ।
2. द्वैतारक परिकल्पनाएँ (BINARY HYPOTHESES) ।
3. नवीन परिकल्पनाएँ (MODERN HYPOTHESES) ।

प्रत्येक वर्ग में कई विद्वानों की परिकल्पनाएँ सम्मिलित हैं । किन्तु इस इकाई में कुछ विद्वानों की परिकल्पनाओं को ही सम्मिलित किया गया है ।

1.4.1 एक तारक परिकल्पनाएँ

जिन परिकल्पनाओं में सौर्य परिवार की उत्पत्ति एक तारे से मानी जाती है, उन्हें **एक तारक परिकल्पनाएँ** कहा जाता है । इन परिकल्पनाओं के अनुसार सौर्य परिवार की उत्पत्ति एक क्रमिक विकास प्रक्रिया (GRADUAL EVOLUTIONARY PROCESS) का परिणाम है । बफ न, काण्ट, लाप्लास, रोशे, लॉकियर आदि विद्वानों की परिकल्पनाएँ इस वर्ग में सम्मिलित की जाती हैं । इस इकाई में काण्ट व लाप्लास की परिकल्पनाओं को ही सम्मिलित किया गया है ।

काण्ट की वायव्य-राशि परिकल्पना (GASEOUS HYPOTHESIS OF KANT)

काण्ट ने सन् 1755 में पृथ्वी की उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पना का प्रतिपादन किया । काण्ट के अनुसार प्रारम्भ में असंख्य आद्य पदार्थ (PRIMORDIAL MATTER) के कण ब्रह्माण्ड में फैले हुए थे । ये सभी आद्य कण पारस्परिक गुरूत्वाकर्षण के कारण टकराकर आपस में एकत्रित होने लगे । इन कणों के टकराने से उनमें गति रण ताप उत्पन्न हुआ । ताप से द्रव तथा द्रव से ये कण गैसीय अवस्था में परिवर्तित हो गये । गैसीय पुंज निरन्तर तीव्रतर गति से परिभ्रमण करने लगा। परिभ्रमण गति से गुरूत्वाकर्षण बल (GRAVITATIONAL FORCE) की अपेक्षा अपकेन्द्रीय बल अधिक बढ़ा । इस बल के अधिक बढ़ने से गैसीय पुंज के मध्यवर्ती भाग में उभार पैदा होने लगा । उभार के बढ़ते जाने से एक -एक करके छल्ले बनने लगे । इस प्रक्रिया में नौ गोलाकार छल्ले बने । इससे नौ ग्रह तथा इसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति से इनके उपग्रह बने और जो

अवशिष्ट बचा वह सूर्य बना । इस प्रकार सौर्य परिवार की रचना हुई । इसीलिये काण्ट ने कहा था -"मुझे पदार्थ दो, मैं पृथ्वी की उत्पत्ति कर दिखलाऊंगा ।" (GIVE ME MATTER, AND I WILL SHOW YOU HOW TO MAKE A WORLD OF IT).

आलोचना

1. 1. काण्ट के अनुसार आद्य कण गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण आपस में टकराने लगे । यह शक्ति पहले कहाँ थी और बाद में कैसे प्रकट हो गई? यह प्रश्न अनुत्तरित है ।
2. गतिक -विज्ञान के अनुसार आद्य कणों के आपस में टकराने से उनमें परिभ्रमण गति पैदा नहीं हो सकती है ।

लाप्लास की निहारिका परिकल्पना

लाप्लास (LAPLACE) फ्रांसीसी ज्योतिष थे । उन्होंने अपनी पुस्तक विश्व व्यवस्था की व्याख्या (EXPOSTION OF THE WORLD SYSTEM) के माध्यम से सन् 1796 में सौर्य परिवार की उत्पत्ति के विषय में अपनी परिकल्पना प्रतिपादित की । लाप्लास से पूर्व काण्ट ने निहारिका परिकल्पना (NEBULAR HYPOTHESIS) दी थी । लाप्लास ने काण्ट की परिकल्पना के संशोधित रूप को अपने विचारों का आधार बनाया । उन्होंने सौर्य परिवार की उत्पत्ति की प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में परिभ्रमण करती हुई स्व अत्यन्त उष्ण एवं गैसीय निहारिका की कल्पना की थी । उन्होंने अपनी परिकल्पना में निहारिका की उत्पत्ति के विषय में कुछ भी नहीं कहा । लाप्लास ने काण्ट की परिकल्पना के इस अंश को हटा दिया कि आद्य पदार्थों की टकराहट से उनमें ताप व गति उत्पन्न हुई । इस संशोधन से लाप्लास ने अपनी परिकल्पना को कोणीय संवेग के संरक्षण सिद्धान्त सम्बन्धी आलोचना से बचा लिया ।

यह उष्ण एवं गैसीय निहारिका लाप्लास के अनुसार सूर्य के केन्द्र से वरूण के पीरक्रमण मार्ग से भी काफी अधिक विस्तृत थी । गुरूत्वाकर्षण रण ताप हास के कारण यह निहारिका सिकुड़ने लगी जिससे इसके व्यास में कमी होती गई । इसके कारण परिभ्रमण गति एवं अपकेन्द्रीय बल में वृद्धि हुई । एक स्थिति ऐसी आई कि भूमध्यरेखीय उभार (EQUATORIAL BULGE) मै गुरुत्वाकर्षण व अपकेन्द्रीय बल बराबर हो जाने से भारहीनता हो गई । परिणामस्वरूप सिकुडती हुई निहारिका के भारहीन भूमध्यरेखीय उभार से क्रमश: एक के बाद एक वलय पृथक होती गई (चित्र- 1.4) । इन वलयों के ठंडा होने से ग्रहों का निर्माण हुआ । वलय के ठंडा होने से पूर्व उनसे उप-वलय भी इसी प्रक्रिया के द्वारा अलग हुई, जिनके ठंडा होने से उपग्रहों का निर्माण हुआ । निहारिका का शेष भाग सूर्य के रूप में विद्यमान रह गया ।

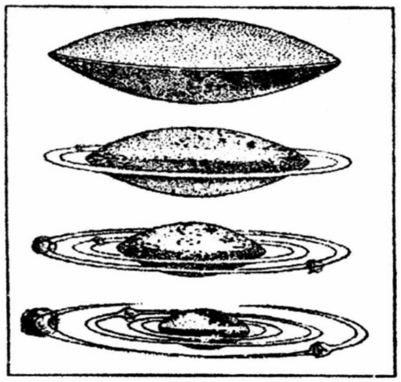

चित्र–1.4 : भूमध्यरेखीय उभार व वलयों का पृथक होना

इस परिकल्पना में कई विशेषतायें हैं । अंतरिक्ष में कई निहारिकाएँ विद्यमान हैं जो लाप्लास के मत की पुष्टि करती हैं । शनि ग्रह के चारों ओर पाई जाने वाली वलय इस परिकल्पना की पुष्टि का एक सशक्त प्रमाण है । परिक्रमणशील पिण्ड केव्यास में कमी होने से उसकी परिभ्रमण गति में वृद्धि होती है । लाप्लास का यह मत

गति विज्ञान के नियमों के अनुकूल है । सब ग्रहों की रचना में एक जैसे तत्वों की उपस्थिति भी लाप्लास की परिकल्पना को सही प्रमाणित करती है । लाप्लास के अनुसार सभी ग्रह गैसीय वलय के ठंडा होने से बने हैं । इनका ऊपरी भाग तो ठोस हो गया किन्तु भीतरी भाग अब भी तरल अवस्था में है । भूतल पर ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाले तरल लावा से भी लाप्लास की परिकल्पना की पुष्टि होती है । इन गुणों के कारण लाप्लास की परिकल्पना एक शताब्दी से अधिक अवधि तक मान्य रही । सांख्यिकी, भौतिकी, खगोल भौतिकी एवं ऊष्मा गतिकी आदि विज्ञानों के विकास के साथ -साथ लाप्लास की परिकल्पना में कई कमियाँ उजागर होने लगी जिनके आधार पर इस परिकल्पना की कई आलोचनाएँ की गईं ।

आलोचना

1. लाप्लास ने अपनी परिकल्पना में उष्ण व गतिशील निहारिका की उत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं बताया ।
2. लाप्लास की परिकल्पना में यह स्पष्ट नही हो पाता कि निहारिका से केवल नौ वलय ही क्यों पृथक हुई। इससे कम या अधिक क्यों नहीं?
3. मोल्टन (MOULTON) के मतानुसार वलयों के ठण्डा होने से ग्रह जैसे पिण्ड बनना सम्भव नहीं है । उन्होंने बताया कि ऊष्मा गतिकी के नियमों के अनुसार ऐसी स्थिति में ग्रहों के वर्तमान स्वरूप से भिन्न अपेक्षाकृत छोटे एवं असमान ग्रह बनेंगे ।
4. आलोचकों का मानना है कि यदि सूर्य निहारिका का अवशिष्ट भाग है तो उसमें भी भूमध्यरेखीय उभार होना चाहिए, जो नहीं है ।
5. लाप्लास की परिकल्पना द्वारा सूर्य व ग्रहों के मध्य कोणीय संवेग के वितरण की विसंगति स्पष्ट नहीं हो पाती है । कुल कोणीय संवेग का 17 प्रतिशत सूर्य में एवं शेष 98.3 प्रतिशत भाग ग्रहों मे समाविष्ट होने का स्पष्टीकरण इस परिकल्पना मे नही मिलता|
6. कई भूगर्भशास्त्री प्रारम्भिक अवस्था में पृथ्वी को ठोस मानते हैं । अत: वे लाप्लास की परिकल्पना के इस तथ्य से असहमत हैं कि ग्रह क्रमश: गैसीय व तरल रूप से ठोस अवस्था में परिवर्तित हुए।

1.4.2 द्वैतारक परिकल्पनाएँ

दो तारों से सौर्य परिवार की उत्पत्ति मानने वाली परिकल्पनाओं को द्वैतारक परिकल्पनाएँ कहा जाता है । इस वर्ग की अधिकांश परिकल्पनाओं का प्रतिपादन बीसवां शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था । इस समय तक काफी नये तथ्यों की जानकारी हो चुकी थी । चैम्बरलेन -मोल्टन, जेम्स जीन्स, जैफ्रीज, रसैल आदि वैज्ञानिकों की परिकल्पनाएँ इस वर्ग में सम्मिलित की जाती हैं । लेकिन इस इकाई में जेम्स जीन्स की परिकल्पना का ही विवरण सम्मिलित किया गया है ।

जेम्स जीन्स की ज्वारीय परिकल्पना (TIDAL HYPOTHESIS OF JAMES JEANS)

जेम्स जीन्स ने सौर्य परिवार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ज्वारीय परिकल्पना सन् 1919 में प्रतिपादित की थी । उनके अनुसार सूर्य अपने वर्तमान आकार से काफी बड़ा गैस का गोला था । सूर्य से भी कई गुना बड़ा एक तारा अपने पथ पर चलता हुआ सूर्य के निकट से गुजरा । जैसे - जैसे यह तारा निकट आने लगा, सूर्य के बाह्यभाग में ज्वार उठने लगा । इस तारे के सूर्य के

निकटतम आने तक यह ज्वार प्रबल हो गया । सिगार के आकार का यह ज्वारीय फिलामैण्ट करोड़ों किलोमीटर लम्बाई में विस्तृत था । भ्रमणशील तारे के निकटस्थ आने पर यह फिलामैण्ट सूर्य से अलग हो गया, किन्तु तब तक यह तारा अपने पथ पर आगे बढ़ चुका था (चित्र- 1. 5)| अत: यह फिलामैण्ट न तो तारे के साथ जा सका और न ही पुन: सूर्य से मिल सका । गुरूत्वाकर्षण प्रभाव में यह फिलामैण्ट सूर्य की पीरक्रमा करने लगा । फिलामैण्ट की द्रव्य राशि में गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से एवं घनीभूत होने से गाँठें या ग्रन्थियाँ पडने लगी । ग्रन्थिल फिलामैण्ट ही घनीभूत होकर विभिन्न ग्रहों में परिणित हो गया । ज्वारीय प्रभाव से निःसृत फिलामैण्ट दोनों सिरों पर संकड़ा एव बीच मे अधिक फैला हुआ था । इसलिए इस फिलामैण्ट के घनीभूत होने से बनने वाले ग्रह भी दोनों सिरों पर छोटे एव मध्य में बड़े. आकार के बने (चित्र - 1.3) । ठीक उसी प्रकार सूर्य की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण ग्रहों से उपग्रह बने । ग्रहों की द्रव्य राशि पर सूर्य की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण जो लघु ज्वारीय फिलामैण्ट उत्पन्न हुए उनसे उपग्रहों की उत्पत्ति हुई । जिन ग्रहों के दो से अधिक उपग्रह हैं, उनमें भी मध्यस्थ उपग्रह बड़े एवं दोनों सिरों की ओर छोटे उपग्रह स्थित हैं ।

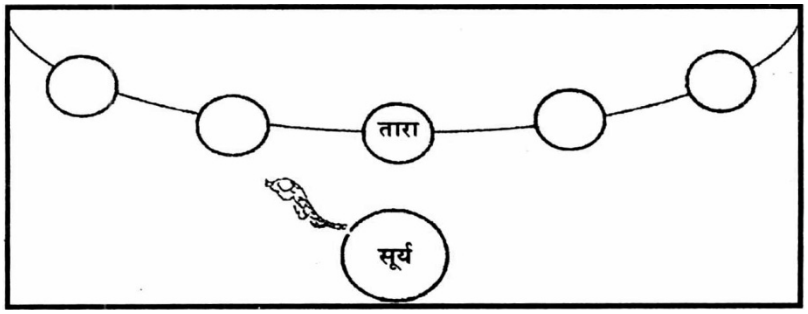

चित्र - 1.5 ज्वारीय फिलामैण्ट

विशेषताएँ

इस परिकल्पना में कई विशेषताएँ हैं, जिनके कारण यह परिकल्पना काफी लम्बे समय तक मान्य रही ।

1. सौर्य परिवार के ग्रहों को एक रेखा में व्यवस्थित किया जाये तो चित्र संख्या 1.1 के अनुसार बड़े ग्रह मध्य भाग में रच दोनों सिरों पर छोटे ग्रह स्थित हैं । ग्रह -व्यवस्था की इस सिगार जैसी आकृति के कारण इस परिकल्पना की पुष्टि होती है ।
2. जेम्स जीन्स की ज्वारीय परिकल्पना की दूसरी विशेषता यह है कि ग्रहों की भाँति उपग्रहों की भी सिगार जैसी वितरण व्यवस्था इसकी पुष्टि करती है ।
3. छोटे ग्रहों को ठंडा होने में अपेक्षाकृत कम समय लगा । अत: इनके या तो उपग्रह नहीं हैं या बहुत कम हैं । इसके विपरीत बड़े ग्रह अधिक लम्बे समय तक गर्म रहे । इसलिए उनके उपग्रह अधिक संख्या में हैं । यह इस परिकल्पना की तीसरी विशेषता है ।
4. इस परिकल्पना में सभी ग्रहों की उत्पत्ति सूर्य से निःसृत फिलामैण्ट से होने की कल्पना की गई है । इस तथ्य की पुष्टि सभी ग्रहों की संरचना में समान पदार्थ के योगदान से होती है । अत: यह इस परिकल्पना की चौथी विशेषता है ।

5. यह परिकल्पना इस तथ्य का तर्कसंगत स्पष्टीकरण देने में समर्थ है कि सभी ग्रह समकालीन हैं| इस परिकल्पना के अनुसार सभी ग्रहों का निर्माण सूर्य से अलग हुए फिलामैण्ट से एक साथ ही हुआ था । यह इस परिकल्पना की पाँचवीं विशेषता है ।

आलोचना

1. आलोचकों के अनुसार अन्तरिक्ष में तारों की पारस्परिक दूरियाँ बहुत अधिक हैं । उनके इतना निकट आने की सम्भावना नहीं है कि तारे की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण सूर्य से बहुत बडी मात्रा में द्रव्य राशि फिलामैण्ट के रूप में अलग हो जाये ।
2. इस परिकल्पना में कोणीय संवेग के वितरण की विसंगति का स्पष्टीकरण भी नहीं मिलता है|
3. कुछ वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सूर्य से अलग हुए गैसीय फिलामैण्ट का शीतल होकर ग्रहों में परिणित होना सम्भव नहीं है । बल्कि उतने उच्च तापमान वाली स्थिति के कारण उसे तो अन्तरिक्ष में विलीन हो जाना चाहिए था ।
4. रसैल के अनुसार सौर्य परिवार के बराबर विस्तृत फिलामैण्ट का सूर्य से अलग होना सम्भव नहीं है ।

1.4.3 नवीन परिकल्पनाएँ

पिछली शताब्दी में तीसरे दशक के बाद सौर्य परिवार की उत्पत्ति के बारे में नवीन तथ्यों पर आधारित कई परिकल्पनाएँ प्रतिपादित की गई । लिटिलटन (Littleton), होयल (Hoyle), बैनर्जी, ऑल्फवैन (Alfven), ऑटो श्मिड आदि वैज्ञानिकों ने नवीन परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की । इस इकाई में केवल ऑटो श्मिड की परिकल्पना का ही विवरण दिया जा रहा है ।

ऑटो श्मिड की अन्तर - तारक धूलि परिकल्पना (OTTO SCHMIDT'S INTER STELLAR DUST HYPOTHESIS)

रूसी वैज्ञानिक ऑटो श्मिड ने सन् 1943 में अपनी अन्तर -तारक धूलि परिकल्पना प्रतिपादित की । उनके मतानुसार ब्रह्माण्ड में गैस एवं धूलि कणों के बादल इधर -उधर बिखरे हुए हैं । ऑटो श्मिड ने इन्हीं से सौर्य परिवार के ग्रहों की उत्पत्ति की कल्पना की है । गैस व धूलि कणों के विषय में उन्होंने बताया कि इनकी उत्पत्ति तारों से नि:सृत परमाणुओं के घनीभूत होने से हुई है । ऑटो श्मिड की मान्यता है कि पहले से मौजूद सूर्य ने ऐसे ही एक गैसीय एव धूलिकणों के पुज को अपनी गुरूत्वाकर्षण शक्ति द्वारा आकर्षित कर लिया । इस पुंज से धीरे - धीरे ग्रहों का निमार्ण हुआ ।

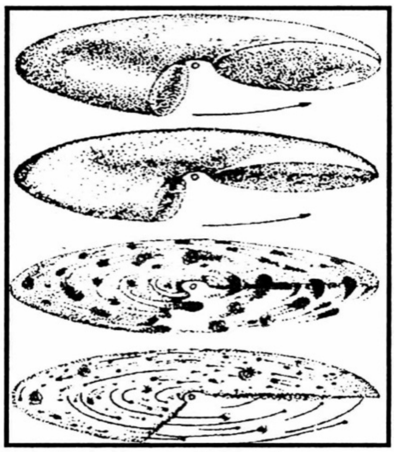
चित्र संख्या 1.6 : घनीभवन से भ्रूण बनना

ऑटो श्मिड के सहयोगी वैज्ञानिक लेविन ने ग्रहों की निर्माण प्रक्रिया में तीन प्रेरक कारक बताये हैं । ये तीन कारक हैं - गुरूत्वाकर्षण शक्ति, यान्त्रिक या भौतिक ऊर्जा (MECHANICAL ENERGY) का ऊष्मा

(HEAT) में परिवर्तन एवं भौतिक -रासायनिक शक्तियाँ (PHYSICO-CHEMICAL FORCES) | ऑटो शिमड के अनुसार प्रारम्भ में भ्रमणशील पुज में उपलब्ध गैस रण धूलिकण अत्यन्त अव्यवस्थित रूप से सूर्य की परिक्रमा कर रहे थे । पुंज के चपटा होने के साथ -साथ इन कणों के परिक्रमण मार्ग अधिक व्यवस्थित एवं भूमध्य रेखीय तल के समानान्तर होने लगे । गुरूत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव में यह पुंज अपने भूमध्य रेखीय तल की ओर चपटा तश्तरीनुमा भी होने लगा था । गैस एव धूलिकणों के बादल में धूलिकणों की मात्रा अधिक होती थी । भारी होने के कारण धूलिकण भूमध्यरेखीय तल की ओर अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में एकत्रित होते गये एवं घनीभूत होकर एक विशाल चपटी तश्तरी का रूप ले लिया । पुँज के चपटा हो जाने से उसमें उपलब्ध गैस व धूलिकणों की पारस्परिक दूरियाँ कम होती गई जिससे उनमें टकराहट होने लगी| गैस के कणों की टकराहट प्रत्यास्थ (ELASTIC) होती है । इससे उनकी गति मन्द नहीं होने पाती है तथा वे धीमी गति से घनीभूत होते हैं । इसके विपरीत धूलिकणों की टकराहट अप्रत्यास्थ (NON ELASTIC) होती है । धूलिकणों के घनीभूत होने से उनका एकत्रण होने लगा । ये प्रारम्भिक एकत्रण ग्रहों के भ्रूण सिद्ध हुए । परिपक्व होते -होते ये भ्रूण क्षुद्रग्रहों(ASTEROIDS) के रूप में विकसित होते गये । सूर्य की परिक्रमा करते हुए ये क्षुद्रग्रह अन्य छोटे पिण्डों व कणों को आत्मसात करते रहे । इस प्रकार धीरे -धीरे उन्होंने वर्तमान ग्रहों का रूप ले लिया । ग्रह - निर्माण के इस क्रम को चित्र - 1. 6 में प्रदर्शित किया गया है ।

चित्र संख्या 1.6 : घनीभवन से भ्रूण बनना

ग्रह निर्माण की प्रक्रिया के उपरान्त भी गैस व धूलिकणों के पुंज का काफी पदार्थ अपरिपक्व अवस्था में बचा था । यह पदार्थ भी कालान्तर में घनीभूत होकर उपग्रह के रूप में अपने निकटस्थ ग्रह की परिक्रमा करने लगे । इस प्रकार विभिन्न उपग्रहों का निर्माण हुआ ।

विशेषताएँ

1. यह सिद्धान्त ग्रहों के समकालीन होने को प्रमाणित करता है |
2. ऑटोश्मिड ने बताया कि जब गैस व धूलिकण तश्तरी के रूप में संगठित हो गये तो सूर्य की किरणें उन्हें भेद कर अधिक दूर तक नहीं जा सकती थी । अत: तश्तरी के सूर्योन्मुखी भाग से भारी तत्वों वाले ग्रह बने । ये आन्तरिक ग्रह हैं - बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल (चित्र संख्या 1.3) । इनकी संरचना में लोहा, निकिल, सिलिका, एल्यूमीनियम आदि की अधिकता है । इसके विपरीत तश्तरी के सूर्य विमुखी भाग के बाहय ग्रह बृहस्पति, शनि, अरूण, वरूण व यम अपेक्षाकृत हल्के तत्वों से बने हैं ।
3. इस परिकल्पना से कोणीय संवेग के वितरण में विसंगति का स्पष्टीकरण भी मिल जाता है, क्योंकि सूर्य व ग्रहों की रचना भिन्न परिस्थितियों व घटकों से हुई है ।
4. इसी प्रकार ऑटो शिमड की परिकल्पना से द्रव्यमान के वितरण की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है ।
5. ऑटोश्मिड ने बताया कि गैस व घूलिकणों तथा पारस्परिक टकराव के कारण उनकी परिक्रमण गति का सामान्यीकरण हो गया । इसके परिणामस्वरूप ग्रहों के परिक्रमण पथ लगभग वृत्तकार अथवा दीर्घवृत्ताकार बने हैं ।
6. ऑटो शिमड ने ग्रहों के बीच की दूरियों का स्पष्टीकरण देते हुए बताया है कि भिन्न-भिन्न गति व परिमाण वाले ग्रह अलग - अलग दूरियों पर ही संगठित होंगे ।

आलोचना

1. गैस व धूलिकणों से निर्मित बादल की उपस्थिति से कई वैज्ञानिक सन्तुष्ट नहीं हैं ।
2. सैफ्रोनोव ने आपत्ति की है कि अन्तरिक्ष में तारों की अत्यधिक दूरी के कारण सूर्य द्वारा गैस व धूलिकणों के बादल को आकर्षित करना सम्भव नहीं लगता है ।
3. इस परिकल्पना के अनुसार ग्रहों की प्रारम्भिक अवस्था शीतल एवं ठोस मानी गई है । इस तथ्य से कई भूगर्भशास्त्री सहमत नही हैं क्योंकि वे इसकी प्रारम्भिक अवस्था को क्रमश: गैसीय व तरल मानते हैं ।

बोध प्रश्न- 3

1. कुल कोणीय संवेग का जो भाग सूर्य में समाविष्ट है, वह है -
   (अ) 1.7 % (ब) 1.17%
   (स) 1.27% (द) 1.37%। ( )
2. अन्तरतारक धूलि परिकल्पना के अनुसार सौर्य परिवार की उत्पत्ति होती है -
   (अ) निहारिका से (ब) आद्य पदार्थ के कणों से
   (स) ज्वारीय नि:सूत फिलामैण्ट से (द) गैस व धूलिकणों के बादल से। ( )
3. लाप्लास ने जिस वर्ग की परिकल्पना प्रस्तुत की, वह है -
   (अ) एक तारक (ब) द्वैतारक
   (स) त्रैतारक (द) नवीन ( )

1.5 पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना आज भी एक रहस्य है क्योंकि भूगर्भ प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण से परे है । अभी तक धरातल पर तेल के लिये कुआं अधिकतम 6 किलोमीटर गहरा खोदा गया है । जबकि धरातल से पृथ्वी के केन्द्र की दूरी 6378 किलोमीटर है । इस दूरी के सामने उक्त कुए की गहराई नगण्य है, जो हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान की सीमा है । यद्यपि पृथ्वी की आन्तरिक संरचना का विषय भूगर्भशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में आता है, किन्तु भूगोल में भी इसका अध्ययन इसलिये आवश्यक है कि पृथ्वी की स्थलाकृत्तियाँ भूगर्भिक गतिविधियों पर बहुत कुछ निर्भर करती हैं । अत: पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के प्रयास निरन्तर किये जाते रहे हैं । इन प्रयासों के अन्तर्गत इस विषय पर प्रकाश डालने वाले कई प्रमाण जुटाये गये हैं । इन्हें तीन मुख्य वर्गो में विभाजित किया जा सकता है -

1. निहित स्रोत (Inherent Sources)
   (अ) तापमान (Temperature)
   (ब) घनत्व (Density)
   (स) दबाव (Pressure)
2. आकस्मिक संचलन (Sudden Movements)
   (अ) ज्वालामुखी क्रिया (Volcanic Activity)
   (ब) भूकम्पविज्ञान(Srismology)
3. उल्कापात

1.5.1 निहित स्रोत

(अ) तापमान - अनेक तथ्यों से यह प्रमाणित हो चुका है कि भूगर्भ में गहराई के साथ -साथ तापमान बढ़ता जाता है । यह वृद्धि दर 1० सैल्शियस प्रति 32 मीटर है । इस दर से 5० कि मी. की गहराई पर ही तापमान 1500० सैल्शियस हो जाता है । इतने उच्च तापमान पर कोई भी पदार्थ ठोस अवस्था में नहीं रह सकता । ज्वालामुखी उद्‌गार से निकलने वाला लावा 5० किलोमीटर से कम गहराई से ही आता है । इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि पृथ्वी का आन्तरिक भाग अत्यन्त उष्ण अवस्था में है |

(ब) घनत्व (DENSITY) - सम्पूर्ण पृथ्वी का औसत घनत्व 5.5 है । जबकि धरातल की ऊपरी चट्टानों का घनत्व 2.7 है । इस तथ्य से पता चलता है कि पृथ्वी के केन्द्रीय भाग का घनत्व अधिक होगा । विशेषज्ञों द्‌वारा अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी के भीतरी भाग का घनत्व 11 से भी अधिक है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वी का भीतरी भाग अत्याधिक भारी पदार्थो से, मुख्यत: धात्विक (METALIC) पदार्थों से बना है । ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी का केन्द्रीय भाग या भू-क्रोड़ (CORE) निकल-लौह -मिश्रण (NICKEL-IRON MIXTURE) है |

(स) दबाव - उपरोक्त बढ़ते तापमान की दर के अनुसार एक निश्चित गहराई के बाद भूगर्भ की शैलों का ठोस रूप में रहना सम्भव प्रतीत नहीं होता । किन्तु प्रमाण इसके पक्ष में नही है, क्योंकि पृथ्वी एक ठोस पिण्ड की तरह गतिमान है । भूगर्भशास्त्रियों का मानना है कि गहराई की ओर ऊपरी दबाव बढ़ता जाता है जिसके कारण शैलों का द्रवणांक भी बढ. जाता है । अत: भूगर्भ में तापमान उच्च होते हुए भी अत्यधिक दबाव के कारण शैलें ठोस अवस्था में ही हैं । भूगर्भिक घटनाओं के फलस्वरूप चट्टानों के खिसकने के कारण दबाव कम होने से शैलें पिघल जाती हैं । इससे ज्वालामुखी-क्रिया उत्पन्न होती है ।

1.5.2 आकस्मिक संचलन

(अ) ज्वालामुखी क्रिया- ज्वालामुखी क्रिया के फलस्वरूप पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तरल मैग्मा तथा धरातल पर तह तरल लावा प्रवाहित होता है । इस आधार पर कुछ भूगर्भशास्त्रियों का अनुमान है कि पृथ्वी के आन्तरिक भाग में कम से कम एक ऐसी परत है जो हमेशा द्रव अवस्था में रहती है । इसी को वे मैग्मा भण्डार (MAGMA CHAMBER) कहते हैं, जहाँ से मैग्मा के रूप में धरातल पर तम तरल लावा प्रकट होता है । किन्तु कई भूगर्भशास्त्री इसे व्यावहारिक नहीं मानते हैं ।

(ब) भूकम्प विज्ञान - भूकम्प विज्ञान की प्रगति ने पृथ्वी की आन्तरिक संरचना का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता पहुँचाई है । भूकम्प विज्ञान में भूकम्प की तरंगों और उनकी गतियों का अध्ययन किया जाता है । भूकम्पीय तरंगों का सिद्धान्त यह है कि उनकी गति हल्के घनत्व के माध्यम में धीमी और अधिक घनत्व के माध्यम में तेज होती है । अर्थात् माध्यम का घनत्व जितना ही अधिक होगा, तरंगों की गति भी उतनी ही अधिक होगी । इस गुण के कारण भूकम्पीय तंरगों के विश्लेषण से हमें अनेक जानकारियाँ मिलती हैं । **भूकम्प मूल** (FOCUS) से तीन प्रकार की तरंगें चलती हैं । **प्राथमिक तंरगों** की गति सार्वाधिक होती है । ये तरंगें द्रव पदार्थ से होकर भी गुजर सकती हैं । गौण तरंगें द्रव पदार्थ से होकर नहीं गुजर

सकती हैं । धरातलीय तले धरातल पर ही चलती हैं । भूकम्प की प्राथमिक तरंगें (Primary Waves) पृथ्वी की ऊपरी परत (SIAL) में साढ़े पाँच किलोमीटर प्रति सैकण्ड की गति से और गौण तरंगें (SECONDARY WAVES) तीन किलोमीटर प्रति सैकण्ड की गति से आगे बढती हैं । मध्यवर्ती परत सीमा (SIMA) में तरंगों की गति छः किलोमीटर प्रति सैकण्ड पायी गयी है । इससे स्पष्ट होता कि सियाल की अपेक्षा सीमा की परत अधिक सघन (DENSER) है ।

केन्द्रीय पिण्ड (NIFE) में भूकम्पीय-तंरगों की गति कुण्ठित हो जाती है । वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पृथ्वी के केन्द्रीय भाग में भारी धातुएँ हैं, जिनका घनत्व बहुत अधिक है किन्तु यहाँ चट्टानें तरल अवस्था में हैं । अत: प्रधान तरंगें इसमें प्रवेश तो करती हैं पर उनका मार्ग वक्राकार हो जाता है । वे इस परत में से होकर सीधी यात्रा नहीं कर सकती । लचीली बनावट के कारण गौण (आड़ी) तरंगें इसमें नहीं घुस पाती और आगे बढ़ने में असमर्थ रहती हैं । इन तरंगों की गति और अधिक घनत्व को देखकर प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री गैमो (GAMOW) इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पृथ्वी का केन्द्रीय भाग तरल अवस्था में होना चाहिए ।

1.5.3 उल्कापात

उल्कापात से हम सभी परिचित हैं । उल्कापिण्ड (METERITES) सौर्य परिवार के ही भाग हैं, जो ग्रहों की उत्पत्ति के समय अलग होकर अन्तरिक्ष में फैल गये थे । उल्काओं की रचना में निकल और लोहा पाया जाता है । अत: सौर्य-परिवार की सदस्य पृथ्वी में भी चुम्बकत्व का गुण इसके आन्तरिक भाग में निकल-मिश्रित लोहे के कारण बताया जाता है ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कई भूगर्भशास्त्रियों ने भिन्न प्रकार से पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की व्याख्या की है । इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय स्वैस द्वारा सुझाया गया वर्गीकरण है ।

1.5.4 स्वैस (SUESS) का वर्गीकरण

स्वैस के अनुसार पृथ्वी की ऊपरी परत तलछट (SEDIMENTS) से निर्मित है । इसमें परतदार शैलों की अधिकता है। इसकी गहराई व घनत्व बहुत कम है। इसकी शैलों के घनत्व का औसत 2.7 है । इसके निर्माण मे सिलिका,फैल्सपार तथा अभ्रक के रवेदार कणों कि अधिकता होती है | इसके नीचे स्वैस ने पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की तीन परतें मानी हैं ।

1. सियाल (SIAL)

इसकी विशिष्ट संरचना के कारण इस परत का नामकरण सियाल हुआ है । इसके निर्माण में सिलिका(SILICA) व एल्यूमीनियम (ALLUMINIUM) की अधिकता होती है अतः इस परत को SIAL कहते है इस परत मे शैलों का घनत्व 2.7 से 2.9 तक पाया जाता है । इस परत में ग्रेनाइट व नीस शैलों की प्रधानता होती है । इन शैलों में अम्लीय (ACIDIC) अंश अधिक होता है| स्वैस के अनुसार महाद्वीपों का निर्माण इन्हीं शैलों से हुआ है । इस परत की गहराई 50 से

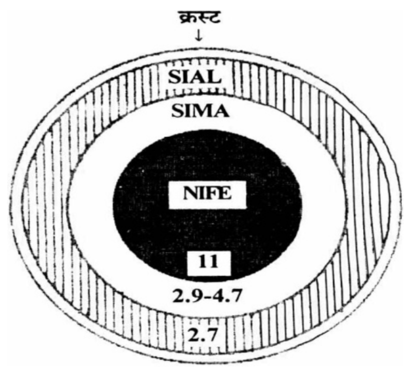

चित्र–1.7 : स्वैस के अनुसार पृथ्वी की आन्तरिक परतें

300 किलोमीटर तक आंकी गई है ।

2. सीमा (SIMA)

सिलिका (SILICA) तथा मैगनीशियम (MAGNESIUM) से निर्मित होने के कारण इस परत का नाम सीमा(SIMA)रखा गया है । इस परत में बैसाल्ट व गैब्रो शैलों की प्रधानता पाई जाती है । इसमें शैलों का घनत्व 2.9 से 4.7 तक पाया जाता है । यह परत महाद्वीपों के निचले भाग में विस्तृत है तथा महासागरीय तली का निर्माण भी सीमा से हुआ है । स्वैस की मान्यता थी कि सियाल से निर्मित महाद्वीप सीमा पर तैर रहे हैं । ज्वालामुखी उद्गारों से निकलने वाले लावा का स्रोत यही परत होती है |

3. निफे (NIFE)

इसके निर्माण में निकिल (NICKEL) तथा लोहे (IRON) की अधिकता होती है । इसलिये इस परत को **निफे (NIFE)** कहा जाता है । इसकी संरचना में इन भारी खनिजों का मिश्रण पाया जाता है । अत: इसका औसत घनत्व 11 से अधिक है । लोहे की अधिकता के कारण इस परत में चुम्बकीय गुण पाया जाता है । इस परत का विस्तार दो हजार किलोमीटर से भूकेन्द्रतक है । अर्थात इस परत का व्यास चार हजार तीन सौ किलोमीटर से अधिक है । उनकी मान्यता थी कि धरातल से पृथ्वी के केन्द्र की ओर कुछ सकेन्द्रीय (CONCENTRIC) छल्ले हैं, जिनका घनत्व गहराई की ओर बढता जाता है ।

1.5.5 नवीन मान्यता

भूकम्प विज्ञान एवं अन्य नवीनतम जानकारियों के आधार पर पृथ्वी के आन्तरिक भाग को निम्नानुसार भी विभाजित किया जाता है |

1. भूपर्पटी (CRUST)

इसका विस्तार धरातल से औसतन 8० किलोमीटर की गहराई तक पाया जाता है । इस प्रकार यह परत न केवल धरातल पर, बल्कि महासागरीय तली के नीचे भी विस्तृत है ।

2. मैण्टल (MANTLE)

मैण्टल की मोटाई लगभग तीन हजार किलोमीटर आंकी गई है । इसका औसत घनत्व 4.5 है । इस परत में भूकम्प की प्राथमिक तरंगों की गति बढ़ जाती है । दाब व घनत्व की अधिकता के कारण ऐसा होता है ।

3. भूक्रोड़ (CORE)

इसका विस्तार मैण्टल की निम्न सीमा से पृथ्वी के केन्द्र तक है । इस भाग में सर्वाधिक घनत्व (लगभग 11) पाया जाता है । इस भाग में केवल भूकम्पीय प्राथमिक तरंगें ही प्रवेश कर पाती हैं । इस परत में गौण तरंगें प्रवेश नहीं कर पाती हैं । इससे यह अनुमान लगाया गया है कि यह परत द्रव अवस्था में होनी चाहिये ।

बोध प्रश्न- 4

1. सियाल की परत होती है |

(अ) सबसे ऊपर (ब) भूकेन्द्र में

(स) सीमा से ऊपर (द) 500 किमी. गहरी।

2.	स्वैस के अनुसार महाद्वीपों का निर्माण जिस परत से हुआ है, वह है-	
	(अ) ऊपरी परत	(ब) सियाल
	(स) सीमा	(द) निफे।
3.	स्वैस के वर्गीकरण के परिप्रेक्ष्य में जो कथन गलत है, वह है-	
	(अ) ऊपरी परत का घनत्व 2.7 है	
	(ब) सीमा में बैसाल्ट शैलों की प्रधानता है	
	(स) निफे में चुम्बकीय गुण विद्यमान है	
	(द) सियाल निफे पर तैर रहा है।	

1.6 सारांश

1. अपने आवासीय परिवेश की जानकारी, स्थिति व अवस्थिति निर्धारण भौतिक भूगोल के विकास का प्रारम्भिक चरण ।
2. भूगोल की प्रकृति में अवस्थिति का ज्ञान, पर्यावरण -मानव सहसम्बन्ध का अवबोध, समग्र व ज्ञान का समावेश, क्षेत्रीय नियोजन का ज्ञान, लोकोपकारी उपागम सम्मिलित है|
3. भौतिक भूगोल की कुछ परिभाषाओं में केवल भौतिक पर्यावरण के अध्ययन व कुछ अन्य में जैविक पर्यावरण को भी सम्मिलित करने पर बल, अत : इसकी विषय वस्तु के मुख्य घटक - स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल, जैवमण्डल ।
4. सौर्य परिवार की सिगार जैसी आकृति है जिसके मध्य में बड़े व किनारों पर छोटे ग्रह स्थित हैं।
5. सौर्य परिवार के ग्रहों के दो वर्ग हैं - (अ) **आन्तरिक ग्रह** - (बुध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल), छोटा आकार व कम उपग्रह युक्त; (ब) **बाह्य ग्रह** - (बृहस्पति, शनि, अरूण,वरुण व यम), बड़ा आकार व अधिक उपग्रह युक्त|
6. सौर्य परिवार के कुल द्रव्यमान का 98 प्रतिशत एवं कुल कोणीय संवेग का केवल 1.7 प्रतिशत सूर्य में तथा शेष ग्रहों में समाहित ।
7. काण्ट व लाप्लास की एक तारक निहारिका परिकल्पना -निहारिका से पृथक हुई वलयों के शीतल होने से ग्रहों व उपग्रहों का निर्माण ।
8. काण्ट व लाप्लास की परिकल्पना में कमियाँ - उष्ण व गतिशील निहारिका की उत्पत्ति, केवल नौ वलय पृथक होने, ऊष्मा गतिकी नियमों के विरूद्ध ग्रहों के निमार्ण, सूर्य में भूमध्यरेखीय उभार के अभाव, कोणीय संवेग के वितरण की विसंगति आदि के कारण इस परिकल्पना से अस्पष्ट ।
9. जेम्स जीन्स की (द्वैतारक) ज्वारीय परिकल्पना -एक अन्य निकट आते हुए तारे के गुरूत्वाकर्षण के कारण सूर्य से अलग हुए फिलामैण्ट से ग्रहों की उत्पत्ति ।
10. जेम्स जीन्स की परिकल्पना में कमियाँ - अन्तरिक्ष के किसी तारे का इतना निकट आना, सौर्य परिवार के आकार के फिलामैण्ट का अलग होना, उस फिलामैण्ट के ठण्डा होने से ग्रहों का बनना आदि कई वैज्ञानिकों द्वारा असम्भव माने गये ।

11. ऑटो शिमड की अन्तर -तारक धूलि परिकल्पना - गैसों व धूलिकणों से युक्त पुंज पर गुरूत्वाकर्षण, यान्त्रिक तथा भौतिक -रासायनिक शक्तियों के प्रभाव के कारण कणों के एकत्रण से ग्रहों का निर्माण ।
12. ऑटो शिमड की परिकल्पना में कमियाँ - गैस व धूलिकणों के पुंज से कई वैज्ञानिक असहमत, सैफ्रोनोव द्वारा गुरूत्वाकर्षण प्रभाव से कणों के घनीभवन पर आपत्ति, ठोस प्रारम्भिक अवस्था पर आपत्ति आदि ।
13. प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण से परे होने के कारण पृथ्वी की आन्तरिक संरचना की सीमित जानकारी।
14. आन्तरिक संरचना के विषय में जानकारी हेतु जुटाये गये स्रोत - (अ) निहित स्रोत - तापमान, घनत्व, दबाव, (ब) आकस्मिक संचलन -ज्वालामुखी क्रियाएं ,भूकम्पविज्ञान (स) उल्कापात ।
15. स्वैस का वर्गीकरण- (अ) ऊपरी परत- परतदार शैल, घनत्व 2.7 (ब) सियाल, सिलिका व एल्यूमीनियम निर्मित, अम्लीय, ग्रेनाइट व नीस शैलें, घनत्व 275 से 2.9, गहराई 50 से 300 किलोमीटर (स) सीमा-सिलिका व मैगनीशियम निर्मित, बैसाल्ट व गैब्रो शैलें, घनत्व 2.9 से 4.7, गहराई 1000 से 2000 किलोमीटर (द) निफे - केन्द्रीय परत, निकल व लौह निर्मित, चुम्बकीय, घनत्व 11 से अधिक, गहराई 2000 किलोमीटर से भूकेन्द्र तक।
16. नवीनतम मान्यता के अनुसार पृथ्वी के आन्तरिक भाग का वर्गीकरण भूपर्पटी, मैण्टल व भूक्रोड़ के रूप में भी किया जाता है ।

1.7 शब्दावली

1.	अन्तरापृष्ठ	:	जैविक परत
2.	सौरमण्डल	:	सूर्य व उसके ग्रह -उपग्रह
3.	उल्कापात	:	उल्काओं का पृथ्वी पर गिरना
4.	सियाल/भूपर्पटी	:	पृथ्वी की ऊपरी परत
5.	सीमा/मैण्टल	:	पृथ्वी की मध्यवर्ती परत
6.	निफे/भूक्रोड़	:	पृथ्वी की केन्द्रीय परत

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

ए.एन.स्ट्रैहलर	:	इन्ट्रोडक्शन टू फिजीकल ज्योग्राफी, जॉन वाइली एण्ड संस, न्यूयॉर्क
आर्थर होम्स	:	प्रिंसिपल्स ऑफ फिजीकल ज्योग्राफी, थॉमस नैल्सन एण्ड संस, न्यूयॉर्क, 1949
सी बी. मामोरिया व रतन जोशी	:	भौतिक भूगोल,साहित्य भवन, आगरा, 2006
जे .ए. स्टीर्यस	:	अनस्टेबल अर्थ, कैम्ब्रिज, लन्दन
सविन्द्र सिंह	:	भूआकृति विज्ञान, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006

शर्मा व मिश्रा : भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2006

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1.(अ)	2. (स)	3. (ब)

बोध प्रश्न - 2

1. (द)	2. (ब)	3. (अ)

बोध प्रश्न - 3

1. (अ)	2. (द)	3. (अ)

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वायुमण्डल किस कारण पृथ्वी के चारों ओर जकड़ा हुआ हे?
2. भौतिक भूगोल की विभिन्न शाखाओं का विस्तृत वर्णन कीजिए ।
3. जेम्स जीन्स की ज्वारीय परिकल्पना की व्याख्या कीजिए ।
4. सियाल का घनत्व कितना है?
5. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में हमारी जानकारी सीमित क्यों है?
6. मैण्टल की मोटाई कितनी है?
7. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के बारे में घनत्व के आधार पर क्या जानकारी मिलती है?
8. निफे में चुम्बकीय गुण क्यों पाया जाता है?
9. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के स्रोतों का वर्णन कीजिए ।
10. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना का वर्णन कीजिये ।

इकाई -2 महाद्वीपीय विस्थापन तथा प्लेट विवर्तनिकी

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति

2.3 वैगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त

- 2.3.1 पृष्ठभूमि
- 2.3.2 महाद्वीपीय विस्थापन से सम्बन्धित तथ्य
- 2.3.3 महाद्वीपीय विस्थापन के कारण व दिशाएं
- 2.3.4 महाद्वीपीय विस्थापन व उसके प्रभाव
- 2.3.5 महाद्वीपीय विस्थापन के प्रमाण
- 2.3.6 वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त में कमियां

2.4 प्लेट विवर्तनिकी

- 2.4.1 अर्थ तथा व्याख्या
- 2.4.2 प्लेटों के प्रकार
- 2.4.3 प्रमुख प्लेटें
- 2.4.4 प्लेट पार्श्व
- 2.4.5 प्लेट विवर्तनिकी के प्रभाव

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य -

- महाद्वीपों व महासागरों के वितरण की विशेषताओं को उजागर करना है,
- महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति से सम्बन्धित वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त के सभी पहलुओं की विस्तृत जानकारी देना है, तथा
- प्लेट विवर्तनिकी के सभी पहलुओं को समझना है ।

2.1 प्रस्तावना

पृथ्वी की सतह पर स्थल एवं जल दोनों का ही विस्तार है। किन्तु इसका वितरण समान नहीं है। थल (महाद्वीप) एवं जल (महासागर) अपने असमान वितरण एवं विशेष आकृति के कारण सदैव से ही भूगोलवेत्ताओं, भूगर्भशास्त्रियों एवं भूभौतिकविदों की जिज्ञासा का विषय रहे हैं। उनकी

उत्पत्ति के विषय में दी गई अनेकों परिकल्पनाओं को भली-भांति समझने के लिये महाद्वीपों व महासागरों के विन्यास (arrangement) की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानना आवश्यक है। ये प्रमुख विशेषताऐं इस प्रकार हैं -

1. पृथ्वी की सतह के 71 प्रतिशत भाग पर जल व शेष 29 प्रतिशत भाग पर थल का विस्तार है।
2. उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय विस्तार अधिक एवं जलीय विस्तार कम है। इसे स्थल गोलार्द्ध भी कहते हैं क्योंकि इसके 81 प्रतिशत भाग पर स्थल का विस्तार है। दक्षिणी गोलार्द्ध में जलीय विस्तार अधिक है। अत: उसे जल गोलार्द्ध भी कहते हैं।
3. स्थल एवं जल एक दूसरे के विपरीत स्थित हैं। भूगोल में इसे प्रतिध्रुवस्थ (Antipodal) स्थिति कहते हैं। इस तथ्य के समझने के लिये चित्र- 2.1 का ध्यानपूर्वक अध्ययन कीजिये। स्थल-जल की प्रतिध्रुवस्थ स्थिति में कुछ ही अपवाद हैं।

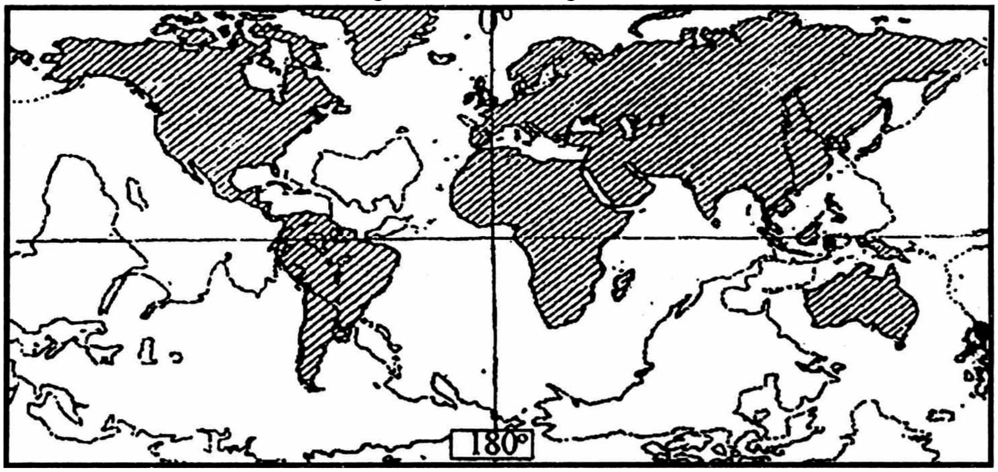

चित्र - 2. 1 : महाद्वीपों व महासागरों की प्रतिध्रुवस्थ स्थिति

4. प्रतिध्रुवस्थ स्थिति के क्रम में एक विलक्षणता ध्रुवों के सन्दर्भ में भी है। उत्तरी ध्रुव आर्कटिक महासागर में स्थित है तो इसके विपरीत दक्षिणी ध्रुव अण्टार्कटिका महाद्वीप पर स्थित है। चित्र-2.2 एवं 2.3 की तुलना करने पर उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों एवं अन्यत्र स्थल - जल की प्रतिध्रुवस्थ स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।

चित्र - 2. 2 : उत्तरी ध्रुव

चित्र-2.3 : दक्षिणी ध्रुव

5. महाद्वीपों व महासागरों की आकृति मोटे रूप से त्रिभुजाकार है। महाद्वीपीय त्रिभुजों के आधार उत्तर में तथा शीर्ष दक्षिण की ओर हैं (चित्र - 2. 4)। इसके विपरीत महासागरों के आधार दक्षिण में तथा शीर्ष उत्तर की ओर हैं।

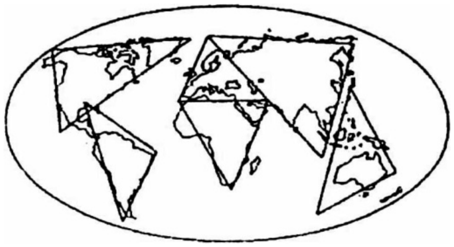

चित्र-2.4 : महाद्वीपों व महासागरों की त्रिभुजाकार आकृति

6. महाद्वीप एवं महासागर ध्रुवों से तीन दिशाओं की ओर फैले हुए हैं। उत्तरी ध्रुव से एशिया, यूरोप (अफ्रीका सहित) व अमेरिका दक्षिण की ओर तथा दक्षिणी ध्रुव से हिन्द, अटलाण्टिक व प्रशान्त महासागर उत्तर की ओर फैले हैं।

2.2 महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति

महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति के विषय में कई परिकल्पनाऐं दी जाती रही हैं। इनमें से अधिकांश अब अमान्य हो गई हैं। अत: इस अध्याय में अपेक्षाकृत अधिक स्वीकृत वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त (Continental Drift Theory) एवं प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics) सिद्धान्त का ही विस्तृत विवेचन दिया गया है।

2.3 वैगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त

महाद्वीपों के विस्थापन की परिकल्पना वैगनर की अपनी मौलिक विचारधारा नहीं है। उनसे पहले स्पाइडर ने सन् 1858 तथा टेलर ने सन् 1908 में महाद्वीपीय विस्थापन सम्बन्धी विचार प्रकट किये थे। किन्तु उन पर उस समय अधिक ध्यान नहीं दिया गया। अत: इस सिद्धान्त का श्रेय अल्फ्रैड वैगनर (Alfred Wegener) को दिया जाता है क्योंकि उन्होंने इसकी पुष्टि के लिये अनेक प्रमाण एकत्रित किये और इसे व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उन्होंने सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1914 में किया, किन्तु उस समय प्रथम विश्व युद्ध की परिस्थितियों के चलते इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। वैगनर ने अपने सिद्धान्त को सन् 1922 में जर्मन भाषा में प्रकाशित किया, जिसका सन् 1924 में अंग्रेजी अनुवाद निकला। तभी से यह सिद्धान्त चर्चित व प्रचलित हुआ।

2.3.1 पृष्ठभूमि

भूगर्भिक अध्ययनों से ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वकाल में जलवायु की परिस्थितियाँ वर्तमान से बिल्कुल भिन्न रही होंगी। उदाहरण के लिये अण्टार्कटिका महाद्वीप में कोयले के जमावों का पाया जाना वहाँ पर पूर्व में उष्ण-आर्द्र जलवायु होने का प्रतीक है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन भूगर्भिक विसंगतियों (anomalies) का स्पष्टीकरण समस्यापूर्वक था। इसके स्पष्टीकरण हेतु दो ही सम्भावनाऐं हो सकती थी -

1. स्थलखण्ड स्थिर रहे एवं जलवायु कटिबन्धों में परिर्वतन होता रहा।

अथवा

2. जलवायु कटिबन्ध स्थिर रहे एवं स्थल खण्डों की स्थिति परिवर्तनशील रही। वैगनर ने अपना सिद्धान्त दूसरी सम्भावना पर आधारित किया।

2.3.2 महाद्वीपीय विस्थापन से सम्बन्धित तथ्य

वैगनर द्वारा प्रतिपादित महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त के सभी पहलुओं को बिन्दुवार अभिव्यक्त किया जा सकता है -

1. स्वैस (Suess) की अवधारणा को आधार बनाते हुए वैगनर ने माना कि पृथ्वी की बाह्य परत या पपडी सियाल (SIAL) है। इसके नीचे दूसरी परत सीमा (SIMA) है तथा पृथ्वी का केन्द्रीय आन्तरिक भाग निफे (NIFE) से बना है।
2. स्वैस के अनुसार सियाल रूपी पपडी एक क्रमिक परत है, जबकि वैगनर ने महाद्वीपों को सियाल निर्मित माना है, तथा अगाध सागरीय तल को सीमा का तल माना है।
3. सियाल की परत को ठोस अवस्था में तथा सीमा की ऊपरी परत को लसीली या चिपचिपी (Viscous) माना गया है।
4. लसीली सीमा की परत में सियाल रूपी महाद्वीप तैर रहे है।
5. वैगनर के अनुसार कार्बोनीफैरस युग में एक विशाल स्थलखण्ड था जिसको उन्होंने **पैन्जिया (Pangea)** कहा। इसके मध्य में **टिथीस सागर (Tethys Sea)** नामक भूसंनति थी। इसके उत्तरी भाग को **लॉरेशिया (Laurasia)** व दक्षिणी भाग को **गौण्डवानालैण्ड (Gondwana Land)** नाम दिया गया।
6. **पैन्जिया** नामक विशाल स्थलखण्ड के चारों ओर **पैन्थालासा (Panthalasa)** नामक महासागर था।

2.3.3 महाद्वीपीय विस्थापन के कारण व दिशाएँ

वैगनर ने महाद्वीपीय विस्थापन के दो कारण बताये हैं। प्रथम कारण सूर्य व चन्द्रमा का गुरूत्वाकर्षण बल है। यह बल सूर्य व चन्द्रमा से निकटता के कारण सियाल (SIAL) पर अधिक प्रभावी रहता है। अत: पश्चिम से पूर्व को परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी पर इस बल के कारण महाद्वीप पश्चिम की ओर पिछड़ते (Dragged Westward) हैं। इससे महाद्वीपों का पश्चिम की ओर विस्थापन होता है। विस्थापन के लिये उत्तरदायी दूसरा बल तैरती हुई किसी वस्तु के गुरूत्व केन्द्र (Centre of Gravity of floating mass) एवं उसी वस्तु के उत्प्लावन केन्द्र (Center of buoyancy) का सम्बन्ध है।

यह भौतिक शास्त्र का एक नियम है। इस बल के कारण महाद्वीपों का विस्थापन भूमध्यरेखा की ओर हुआ। महाद्वीपीय विस्थापन तथा प्लेट विवर्तनिकी

2.3.4 महाद्वीपीय विस्थापन व उसके प्रभाव

वैगनर महाद्वीपीय विस्थापन से सम्बन्धित परिस्थितियों का लेखाजोखा कार्बोनीफैरस युग के बाद से प्रारम्भ करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे इससे पूर्व महाद्वीपीय विस्थापन को नहीं मानते। उनका कहना है कि कार्बोनीफैरस युग से पूर्व की परिस्थितियों के बारे में अधिक जानकारी नहीं होने से निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

अत: वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त में प्रारम्भिक बिन्दु कार्बोनोफैरस युग है। उस समय पैन्थालासा नामक महासागर से घिरा हुआ एक विशाल स्थलखण्ड पैन्जिया था, जिसमें दरारें पड जाने उसे वह कुछ टुकड़ों में विभक्त हो गया। ये टुकड़े कालान्तर में पश्चिम एवं भूमध्यरेखा की ओर प्रवाहित होते-होते वर्तमान रूप में आये। इनके क्रमिक प्रवाह को चित्र- 2.5 में दर्शाया गया है। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका शेष स्थलखण्ड से अलग होकर पश्चिम की ओर विस्थापित हुए। अमेरिका व शेष स्थलखण्ड के मध्य अटलाण्टिक महासागर बना। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी किनारे पर पूरी लम्बाई में एक भूसंनति में जमा हुई तलछट में वलन पड़ते गये। इस प्रकार उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट पर रॉकी तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर एण्डीज पर्वतों की उत्पत्ति हुई। ऐसे ही गोण्डवानालैण्ड के भूमध्यरेखा की ओर विस्थापन से टिथीस सागर में जमा हुई तलछट में वलन पड़ते गये। इसके परिणामस्वरूप मध्य-महाद्वीपीय पर्वतीय श्रृंखला (Mid-Continental mountain system) अर्थात आल्प्स-हिमालय पर्वतीय क्रम का उद्भव हुआ। इस प्रकार वैगनर के प्रवाह सिद्धान्त के द्वारा न केवल महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति बल्कि नवीन मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति के विषय में भी स्पष्टीकरण प्राप्त होते हैं।

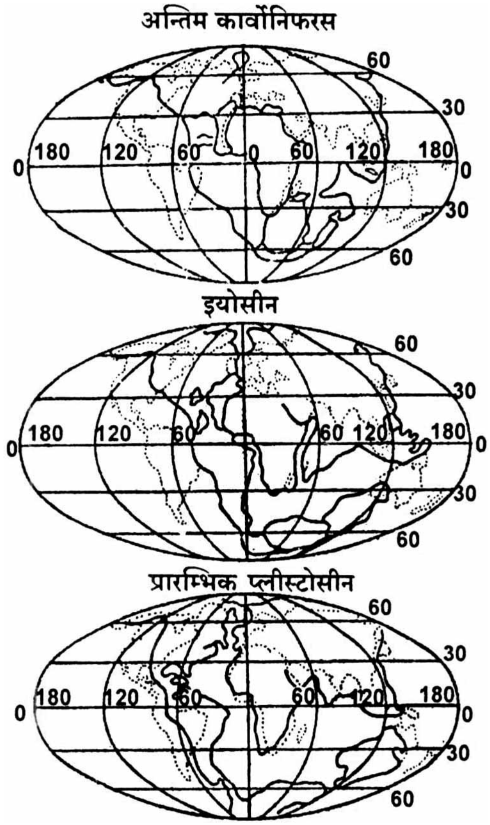

चित्र-2.5 : महाद्वीपीय विस्थापन के क्रम

वैगनर ने ध्रुवों की स्थिति भी बदलती हुई मानी है, जिसे वे ध्रुवों की भ्रमणशीलता (Wandering Poles) कहते हैं। किन्तु ध्रुवों की यह भ्रमणशीलता वास्तविक न होकर भ्रमणशील महाद्वीपों से सापेक्षिक थी। ध्रुवों व भूमध्यरेखा की परिवर्तनशील स्थितियों को चित्र- 2.6 में दर्शाया गया है। कई क्षेत्रों के भूगर्भिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि पूर्वकाल में उन क्षेत्रों की

जलवायु वर्तमान से बिल्कुल भिन्न रही होगी। अत: उनका भी स्पष्टीकरण इस सिद्धान्त में उपलब्ध होता है।

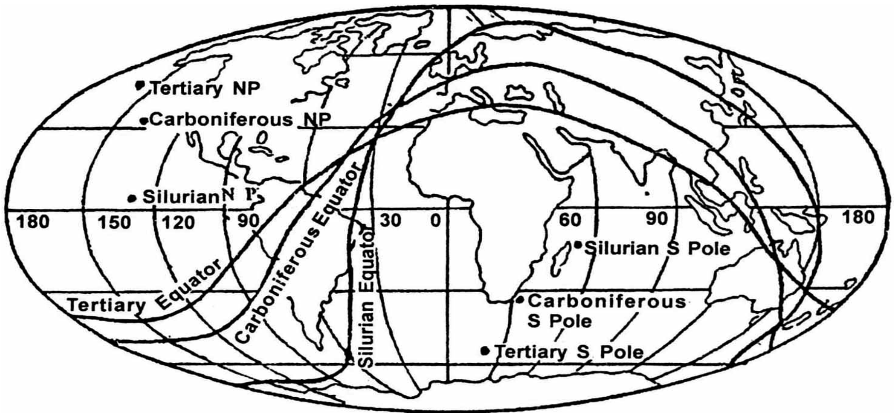

चित्र 2.6 : वैगनर के अनुसार ध्रुवों की भ्रमणशीलता

2.3.5 महाद्वीपीय विस्थापन के प्रमाण

(अ) भौगोलिक प्रमाण (Geographical Evidences)

1. **अटलाण्टिक तटीय साम्य (Atlantic Coastal Similarity)-** अटलाण्टिक महासागर के पूर्वी व पश्चिमी तटों की अद्भुत सामनता ने वैगनर को बहुत आकर्षित किया। चित्र संख्या 2.7 में अटलाण्टिक महासागर के तटों की यह समानता स्पष्ट प्रतीत होती है। यह स्वभाविक ही है कि यदि ये महाद्वीप पृथक होकर विस्थापित हुए हैं तो पृथकता वाले तटों में समानता तो होगी ही। किन्तु एक प्रश्न यह भी उठता है कि इन्हें पुन: परस्पर किस हद तक सटाया जा सकता है। वैगनर का मानना है कि अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों को पुन: परस्पर सटाया जा सकता है, जिसे वे JIG-SAW-FIT कहते हैं। उनके अनुसार पश्चिमी अफ्रीकी उभार कैरीबियान सागर में तथा दक्षिणी अमेरिका का उत्तरी-पूर्वी भाग गिनी की खाड़ी में सट जाता है जिसे चित्र - 2.8 में दर्शाया गया है।

चित्र–2.7: तटीय समानता

चित्र–2.8 : महाद्वीपों का सटना

2. **पर्वतों का संरेखण** (Alignment of Mountains) - विस्थापित महाद्वीपों को सटाकर विस्थापन देखने पर सभी युग की पर्वतमालाओं के संरेखण में काफी समानता देखने को

मिलती है। इसे चित्र संख्या 2.8 में दर्शाया गया है। यह संरेखण कैलीडोनियन, हर्सीनियन, अल्पाइन आदि सभी पर्वतमालाओं में देखने को मिलता है।

3. **नवीन मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण -** विश्व के स्थलाकृतिक मानचित्र को देखने पर स्पष्ट प्रतीत होगा कि अमेरिका महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय क्षेत्रों एवं यूरेशिया के मध्यमहाद्वीपीय क्षेत्रों में ही विश्व के दो सबसे प्रमुख नवीन मोड़दार पर्वत क्रमशः रॉकीज - एण्डीज तथा आल्प्स-हिमालय विस्तृत हैं। वैगनर ने इन्हीं स्थानों पर भूसंनतियाँ होने की कल्पना की है। इनमें जमा हुई तलछट में महाद्वीपों के क्रमशः पश्चिम व भूमध्यरेखा की ओर विस्थापन के कारण इन नवीन मोड़दार पर्वतों की उत्पत्ति हुई।

(ब) भूगर्भिक प्रमाण (Geological Evidences)

1. **संरचनात्मक समानता (Structural Similarities)** - भूगर्भशास्त्रियों ने अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटीय क्षेत्रों की शैल संरचना का अध्ययन किया है। दोनों तटीय क्षेत्रों की शैल संरचना में भी अद्भुत समानता पाई जाती है जैसा कि चित्र संख्या 2.9 में दर्शाया गया है। यह इस बात का प्रमाण है कि ये दोनों तट कभी मिले हुए थे।

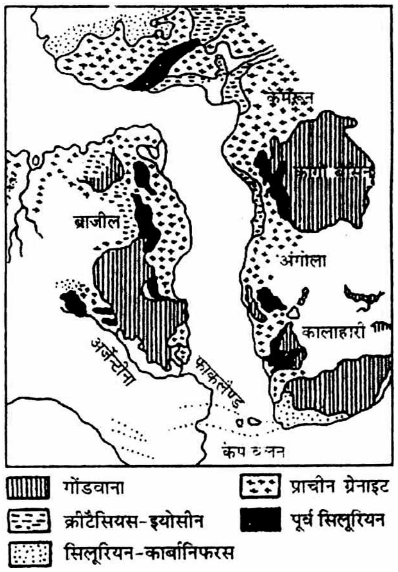

चित्र - 2.9 : संरचनात्मक समानताएँ

2. **स्तर-विन्यास की समानता (Stratigraphical Similarities)-** सरंचना की भांति ही भूगर्भशास्त्रियों ने दोनों तटों की चट्टानों की परतों के क्रम में भी समानता पाई है। यह तथ्य भी वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

3. **विवर्तनिकी समानता (Tectonic Similarities)** भूगर्भशास्त्रियों ने दोनों तटों पर अभिनति कोण (Dip angle) तथा वलन-भ्रंश के रैखिक विन्यास (alignment of fold-fault lines) में भी समानता पाई है।

(स) भू-ज्यॉमितीय प्रमाण (Evidences of Geodesy)

ऐसे प्रमाण मिले हैं कि ग्रीनलैण्ड धीरे-धीरे कनाडा की ओर विस्थापित हो रहा है। यह इस बात का प्रमाण है कि महाद्वीपों में विस्थापन सम्भव है।

(द) जैविक प्रमाण (Biological Evidences)

1. **पुराजीवाष्मीय समानता (Paleontological Similarities)-** पुराजीवाश्म शास्त्र में प्राचीनकाल के जीवों व पादपों के अवशेषों का अध्ययन किया जाता है। प्राचीनकाल के जीवाश्मों का अध्ययन करने से पता चला है कि अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों पर पाये जाने वाले जीवाष्म समान प्रकार के एवं समकालीन जीव जन्तुओं व पादपों के हैं।
2. **जैविक आदतें (Biological habits)-** कई जीव शास्त्रियों ने अपने अध्ययनों में पाया है कि कुछ जीवों की विचित्र आदतें होती हैं। उदाहरण के लिये नॉर्वे से लैमिंग (lemming) पश्चिम की ओर चलते-चलते अटलाण्टिक महासागर में डूब कर मर जाते हैं। प्राणिशास्त्रियों का मानना है कि उनकी यह आदत कदाचित उस समय की है जब उत्तरी अमेरिका यूरोप से जुडा हुआ था। उस समय लैमिंग पश्चिम में उत्तरी अमेरिका की ओर स्थानान्तरण करते होगें। आज भी ठीक वैसे ही साइबेरियन सारस शीत ऋतु में घना पक्षी विहार (भरतपुर) तक आते हैं तथा शीत ऋतु की समाप्ति पर वापसी यात्रा भी करते हैं।
3. **पुराजीवाष्मीय वितरण (Paleontological Distribution)-** भूगर्भिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि कई क्षेत्रों में प्राचीन हिमयुगीन जीवाष्म मिलते हैं। ये क्षेत्र मुख्यत: भारत, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अण्टार्कटिका आदि हैं। लेकिन वर्तमान जलवायु के परिप्रेक्ष्य में हिमयुगीन जीवाष्मों का उक्त क्षेत्रों में पाया जाना आश्चर्यजनक एवं प्रश्नवाचक है। इसका समाधान वैगनर द्वारा कार्बोनीफैरस युग में उक्त क्षेत्रों को दक्षिणी ध्रुवों के निकट सटा कर किया गया है, जैसा की चित्र - 2.10 से स्पष्ट है।

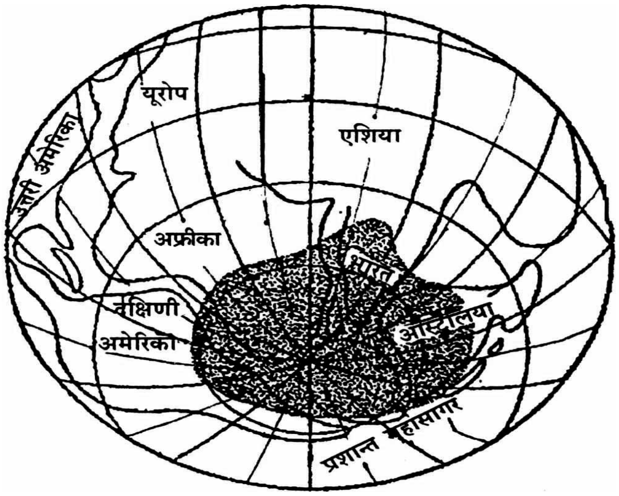

चित्र-2.10: हिमयुगीय जीवाश्मों का स्पष्टीकरण

(य) पुराजलवायु की प्रमाण (Paleoclimatological Evidences)

विश्व के कई भागों में ऐसे जमाव, जीवाष्म व प्रमाण मिलते हैं, जिनको उन क्षेत्रों की वर्तमान जलवायु परिस्थितियों के सन्दर्भ में नहीं समझा जा सकता। वे इस बात का संकेत देते हैं कि उन क्षेत्रों में पूर्व कालीन जलवायु बिल्कुल भिन्न रही होगी। इस अनियमितता को महाद्वीपीय विस्थापन द्वारा हल किया गया है। ऐसा उन्होंने जिह्वापर्णी (glossopteris) जीवाष्म के

ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी भारत, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका व अण्टार्कटिका में वितरण को समझने के लिये किया था।

2.3.6 वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त में कमियाँ

(अ) भौगोलिक कमियाँ (Geographical Weaknesses)

1. अटलाण्टिक तटीय साम्य में कमी - भूगोलवेत्ताओं ने अटलाण्टिक महासागरीय तटों के Jig-Saw-Fit में कमियाँ बताते हुए दर्शाया है कि ये तट परस्पर पूर्णरूपेण नहीं सटाये जा सकते इनके कुछ भागों में दूरियाँ रह जाती हैं तथा कुछ भाग एक दूसरे पर व्याप्त (Overlap) हो जाते हैं। यदि उनके महाद्वीपीय निमग्न तटों को सटाया जाये तो यह अनियमितता और भी अधिक हो जाती है।
2. अटलाण्टिक तटों को सटाने में मध्य-अटलाण्टिक कटक (Mid-Atlantic Ridge) बाधा- वैगनर ने वर्तमान में अटलाण्टिक महासागर के मध्य में उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई मध्य अटलाण्टिक कटक के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। दोनों तटों को सटाने में इस कटक की उपस्थिति बाधक होगी।
3. विस्थापन-वलन विरोधाभास- विस्थापन व वलन परस्पर विरोधाभासी (Drift-Folding Contradiction) हैं। एक ओर वैगनर की मान्यता है कि सियाल रूपी महाद्वीप सीमा में तैर रहे हैं, जबकि दूसरी ओर बताया कि जमा हुई तलछट में विस्थापन के कारण वलन पड़ने से नवीन मोड़दार पर्वत बने। भूगोलवेत्ता इसे विरोधाभासी मानते हैं।
4. भूमध्य रेखा की ओर विस्थापन अप्रमाणित - कुछ भूगोलवेत्ताओं का कहना है कि यदि यह सही होता तो भूमध्यरेखा के निकट महाद्वीपों का एकत्रण हो जाता, जो नहीं हुआ है।

(ब) भूगर्भिक कमियाँ

1. वैगनर ने अटलाण्टिक महासागर तटीय क्षेत्रों में संरचनात्मक स्तर विन्यास व विवर्तनिकी समानता को अपने सिद्धान्त के पक्ष में सशक्त प्रमाण माना है। किन्तु कुछ भूगर्भशास्त्रियों का यह भी मानना है कि ये केवल आंशिक समानताऐं हैं। इन्हें महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में पूर्ण एवं सर्वांगीण प्रमाण नहीं माना जा सकता।
2. कार्बोनीफैरस युग से पूर्व महाद्वीपीय विस्थापन के विषय में कोई जानकारी वैगनर द्वारा उपलब्ध न कराना भी भूगर्भशास्त्रियों की आलोचना का विषय है। कुछ आलोचकों का मत है कि यह सिद्धान्त इस बिन्दु को अनुत्तरित रखता है कि पैंजिया के टूटकर विस्थापित होने की प्रकिया कार्बोनीफैरस युग से ही क्यों शुरू हुई।

(स) भू-ज्यॉमितीय कमियाँ (Geodesical Weaknesses)

वैगनर के अनुसार अमेरिका का पश्चिम की ओर विस्थापन ज्वारीय बल के कारण हुआ। गणितज्ञों ने सिद्ध किया है कि अमेरिका को पश्चिम की ओर विस्थापित करने के लिये जितने बल की आवश्यकता होगी वह वर्तमान बल से दस अरब गुना अधिक होना चाहिए। आलोचकों का कहना है कि अलबत्ता तो इतने बल का होना सम्भव नहीं है, फिर भी यदि इसे सम्भव मान लिया जाये तो उतने अधिक बल के कारण पृथ्वी का परिभ्रमण ही रूक जायेगा।

(द) जैविक कमियाँ (Biological Weaknesses)

1. वैगनर ने अटलाण्टिक महासागर के दोनों तटों पर समान प्रकार के एवं समकालीन जीवाष्म पाये जाने को अपने सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण के रूप में माना था। किन्तु आलोचकों का कहना है कि ये प्रमाण आंशिक हैं।
2. वैगनर ने पुराजीवाष्मीय वितरण का स्पष्टीकरण महाद्वीपों को ध्रुवों के सन्दर्भ में सटाकर दिया है। उदाहरणार्थ जिह्वापर्णी पुराजीवाष्म (Glossopteris Flora) के कई क्षेत्रों जैसे बिहार, कश्मीर, उत्तरी-पश्चिमी अफगानिस्तान, उत्तरी-पूर्वी ईरान, साइबेरिया आदि के विषय में यह सिद्धान्त किसी भी प्रकार का स्पष्टीकरण देने में असफल रहा है।

(य) पुराजलवायुकी कमियाँ (Paleoclimatological Weakness)

स्टीयर्स के अनुसार उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका, यू.एस.ए. में बोस्टन क्षेत्र (जो उस समय भूध्यरेखा पर था) और अलास्का में पाये जाने वाले हिमयुगीन निक्षेप -टाइलाइट, किसी भी प्रकार से वैगनर के महाद्वीपीय पुनर्गठन (Reconstruction) से स्पष्ट नहीं होते।

निष्कर्ष स्वरूप स्टीयर्स (J.A. Steers) का मानना है कि यद्यपि वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त में बहुत कमियों हैं तथापि यह विवेचन रख विचार-विमर्श के योग्य है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि यदि इस सिद्धान्त के सभी बिन्दु गलत हों तो भी भूगोलवेत्ताओं व भूगर्भशास्त्रियों को यह नहीं भूलना चाहिये कि वैगनर के इस सिद्धान्त ने विवर्तनिकी (Tectonics) पर आधारित नवीनतम विचारधारा के लिये आधार प्रदान किया। अत: इस सिद्धान्त के अधिकांश पहलुओं को अस्वीकृत करते हुए भी इसका मूल प्रसंग सुरक्षित रखा गया है। यह मूल प्रसंग **क्षितिजीय विस्थापन (Horizontal Displacement)** से सम्बन्धित है जो महाद्वीप व महासागरों की उत्पत्ति के लिये नवीनतम विचारधारा-प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics) का आधार बना।

बोध प्रश्न1-

1. स्थल गोलार्द्ध है

   (अ) उत्तरी गोलार्द्ध (ब) दक्षिणी गोलार्द्ध

   (स) पूर्वी गोलार्द्ध (द) पश्चिमी गोलार्द्ध ( )

2. उत्तरी ध्रुव की प्रतिध्रुवस्थ स्थिति है-

   (अ) उत्तरी ध्रुव (ब) दक्षिणी ध्रुव

   (स) भूमध्य रेखा (द) कर्क रेखा ( )

3. वैगनर ने महाद्वीपों का जिस दिशा में प्रवाह नहीं माना, वह है।

   (अ) पश्चिम (ब) भूमध्य रेखा

   (स) पश्चिम व भूमध्य रेखा (द) पूर्व ( )

2.4 प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics)

महासागरों की तली पर विस्तारण (Sea-floor Spreading) पुराचुम्बकत्व (Paleomagnetism), ज्वालामुखी व भूकंप की क्रियाओं, आणविक स्रोतों आदि से सम्बन्धित नवीनतम जानकारियों ने महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति से सम्बन्धित एक नई संकल्पना को जन्म दिया, जो प्लेट विवर्तनिकी के नाम से विख्यात हुई।

2.4.1 अर्थ तथा व्याख्या

स्थलमण्डल के दृढ़ व कठोर पिण्डों को प्लेट (Plate) कहा गया है। स्थलमण्डल (Lithosphere) के अन्तर्गत भूपर्पटी (Crust) तथा उसके नीचे स्थित मैंटल (Mantle) का ऊपरी भाग सम्मिलित है। यह स्थलमण्डल दृढ़ व कठोर प्लेटों का एक समुच्चय है जिसके नीचे दुर्बलतामण्डल (Asthenosphere) स्थित है। इन प्लेटों की मोटाई लगभग 100 किलोमीटर आंकी गई है। सभी भूगर्भिक गतिविधियाँ इन प्लेटों के पार्श्वो (Margins) पर होती हैं। भूगर्भिक क्रियाओं को विवर्तनिकी कहा जाता है। अत: **प्लेटों के उद्भव, प्रकृति व गतियों की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं उसके परिणाम प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics) कहलाते हैं।** स्ट्रैलर ने भी इस विषय में लिखा है कि प्लेट विवर्तनिकी प्लेटों के धीरे-धीरे कमजोर दुर्बलतामण्डल (Asthenosphere) पर फिसलने (Glide) की क्रिया है।

प्लेट विवर्तनिकी के दो आधारभूत पहलू हैं - (1) महाद्वीपीय विस्थापन एवं (2) महासागरीय तली का विस्तारण। इन दोनों ही पहलुओं में क्षैतिज गति निहित है। वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त से केवल यही तथ्य प्लेट विवर्तनिकी में लिया गया है।

2.4.2 प्लेटों के प्रकार

इस परिकल्पना में प्लेटों को दो वर्गो में विभाजित किया गया है - (1) **महाद्वीपीय प्लेटें** (Continental Plates) एवं (2) **महासागरीय प्लेटें** (Oceanic Plates)। जिस प्लेट में सम्पूर्ण या अधिकांश भाग स्थली होता है, वह महाद्वीपीय प्लेट कहलाती है। जिस प्लेट में पूर्ण रूपेण अथवा अधिकांश भाग महासागरीय तली का सम्मिलित होता है, वह महासागरीय प्लेट कहलाती है।

2.4.3 प्रमुख प्लेटें

ग्लोबीय स्तर पर छ: बड़ी प्लेटें बताई गई हैं। कुछ भूगोलवेत्ताओं ने अमेरिकी प्लेट को दो भागों में बांटकर (उत्तरी अमेरिकी व दक्षिणी अमेरिकी) इनकी संख्या सात बताई है। इन्हें चित्र संख्या 2.11 में दर्शाया गया है। इसी प्रकार इनके उपविभाजन के द्वारा उपप्लेटों की संख्या कुछ भूगर्भशास्त्रियों ने 14 व कुछ ने 20 बताई है। यहाँ 6 मुख्य प्लेटों का ही वर्णन दिया जा रहा है -

चित्र - 2.11 : विश्व की प्रमुख प्लेटें

1. **अमेरिकन प्लेट (American Plate)-** इसके अन्तर्गत उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका की महाद्वीपीय पर्पटी (Continental Crust) एवं पूर्व की ओर मध्य अटलाण्टिक कटक तक फैली महासागरीय पर्पटी (Oceanic Crust) सम्मिलित हैं। अमेरिकन प्लेट एक इकाई के

रूप में पश्चिम की ओर गतिमान है इसके परिणामस्वरूप अमेरिकी महाद्वीपों के पूर्वी किनारों पर कोई विवर्तनिकी हलचलें नहीं होती। यह प्लेट अमेरिका महाद्वीपों के पश्चिमी तट तक विस्तृत है एवं प्रशान्त महासागरीय प्लेट से मिलती है।

2. **प्रशान्त प्लेट (Pacific Plate)-** पूर्वी प्रशान्त कटक (East Pacific Rise) से पश्चिम की ओर सारे प्रशान्त महासागर पर फैली यह एक मात्र ऐसी प्लेट है जो पूर्णरूप से महासागरीय पर्पटी से निर्मित है। अमेरिकन प्लेट के साथ अभिसारी सीमान्त होने के कारण इस प्लेट को नीचे धंसने के लिये बाध्य होना पड़ता है।
3. **अफ्रीकी प्लेट (African Plate)-** यह प्लेट पूर्व में भारतीय, दक्षिण में अण्टार्कटिका, पश्चिम में मध्य अटलाण्टिक कटक व उत्तर में यूरेशियन प्लेटों के मध्य स्थित एक मिश्रित (महाद्वीपीय व महासागरीय) प्लेट है।
4. **यूरेशियन प्लेट (Eurasian Plate)-** यह एक मात्र ऐसी प्लेट है जो अधिकांशत: महाद्वीपीय पर्पटी से निर्मित है। यह प्लेट पूर्व में द्वीपीय चापों, दक्षिण में आल्प्स-हिमालय पर्वतीय क्रम एवं पश्चिम में मध्य अटलाण्टिक कटक तक विस्तृत है।
5. **भारतीय प्लेट (Indian Plate)-** इसके अन्तर्गत भारतीय उपमहाद्वीप व ऑस्ट्रेलिया की स्थलीय पर्पटी तथा हिन्दमहासागर एवं प्रशान्त महासागर की दक्षिणी-पश्चिमी महासागरीय पर्पटी सम्मिलित की जाती है।
6. **अण्टार्कटिका प्लेट (Antarctica Plate)-** इसका विस्तार अण्टार्कटिका महाद्वीप के चारों ओर मध्यमहासागरीय कटकों तक है। अण्टार्कटिका प्लेट का अधिकांश भाग हिमाच्छदित है।

भूपर्पटी की इन दृढ़ एवं कठोर प्लेटों का समुच्चय दुर्बलतामण्डल के अस्थिर एवं कमजोर क्षेत्र के ऊपर उठ कर दायें-बायें पार्श्वों की ओर प्रसारित होता रहता है जिसके प्रभाव से प्लेटों में हलचल होती रहती है। ये हलचलें प्लेटों के पार्श्व (Margins) पर होती हैं। अत: प्लेट विवर्तनिकी में प्लेटों के पार्श्व क्षेत्र अथवा सीमान्त ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इन पार्श्वो पर ही सभी विवर्तनिकी हलचलें जैसे - भूकम्प व ज्वालामुखी प्रक्रियाऐं, पर्वतनिर्माण, वलन, भ्रंशन आदि होती हैं। अत: प्लेट पार्श्वो या सीमान्तों की व्याख्या अलग से आवश्यक है।

2.4.4 प्लेट पार्श्व या सीमान्त (Plate Margins)

1. **अपसारी पार्श्व या सीमान्त (Divergent Margins)-** ये वे पार्श्व हैं जहाँ से दो प्लेटें एक-दूसरे से विपरीत दिशा में गति करती हैं। अत: वे इस गति के द्वारा एक दूसरे से दूर हटती रहती हैं (चित्र संख्या 2.12)। इनके दूर हटते रहने से जो रिक्त स्थान बनाता है, उसमें मैग्मा बाहर निकलकर लावा के रूप में जमा होता रहता है। स्पष्ट हैं कि ऐसे सीमान्तों पर ज्वालामुखी क्रिया (Vulcanism) अधिक होती है। यह भी स्पष्ट है कि दोनों प्लेटों के एक दूसरे से दूर हटने रख उसके परिणामस्वरूप हुए रिक्त स्थानों पर लावा जमा होते रहने से वहाँ क्षेत्रीय विस्तार होता है इसलिये ऐसे पार्श्वो को **रचनात्मक पार्श्व** (Constructive margins) अथवा **संवर्धनकारी पार्श्व** (Accreting margins) भी कहते है। अटलाण्टिक कटक पर ऐसे ही पार्श्व मिलते। वहाँ हो क्षेत्रीय विस्तार को महासागर-तलीय विस्तारण (Sea-floor Spreading) कहते हैं। ऐसे क्षेत्रों में ज्वालामुखी क्रिया के

कई बार द्वीप बन जाते हैं। मध्य अटलाण्टिक कटक में सर्टसे (Surtsey) द्वीप इसी प्रकार 14 नवम्बर 1963 को बना था।

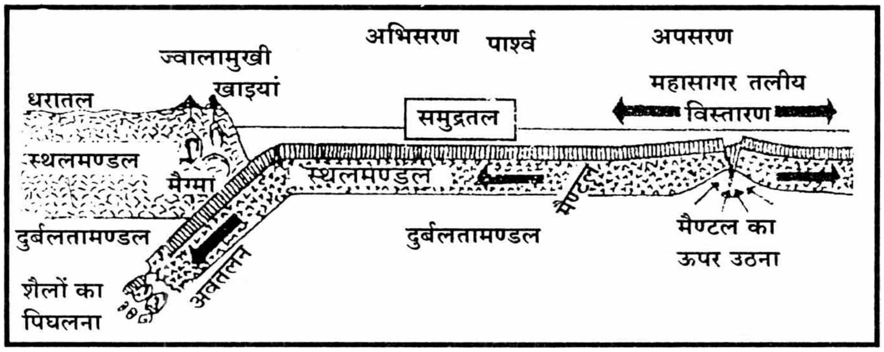

चित्र 2.12 : प्लेट पशर्वों पर क्रियाएँ

2. **अभिसारी पाश्र्व या सीमांत (Convergent margins)-** ये वे पार्श्व है। जिनमें दो प्लेटें एक दूसरे की ओर गति करने के कारण उनका अभिसरण (Convergence) होता है। अभिसरण के कारण एक प्लेट दूसरी के ऊपर चढ़ जाती है तथा दूसरी प्लेट का नीचे की ओर धंसाव या अवतलन होता है, अत: इस पेटी को अवतलन मेखला (Zone of Subduction) कहा जाता है (चित्र-2.13)। अवतलित प्लेट का अग्रभाग मैंटल में प्रवेश करने पर वहाँ की ऊष्मा के कारण पिघल जाता है, अत: इसे **भंजक** (Destructive) या **क्षीणकारी पार्श्व** (Consuming margins) भी कहते है। अभिसारी पार्श्व पर खाइयाँ (Trenches) होती हैं जिनसे होकर अवतलित प्लेट पिघला हुआ पदार्थ पुन: बाहर निकलकर ज्वालामुखियों ज्वालामुखी-श्रृंखलाओं (Volcanic Chain) तथा द्वीपीय चापों (Island arcs) का रूप धारण कर लेता है। महासागरीय प्लेट के पश्चिमी पार्श्व पर एल्यूशियन, क्यूराइल, जापान, मिण्डानाओ, मैरियाना आदि खाइयाँ है, जिनके समीप कई द्वीपीय चाप (Island Arcs) है (चित्र-2.13)।

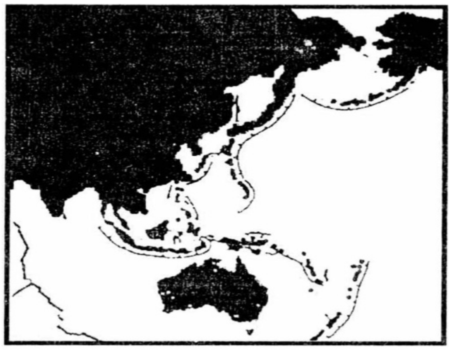

चित्र–2.13 : द्वीपीय चाप

3. **पारवर्ती पार्श्व (Transcurrent Margins)-** जब किसी भ्रंश के सहारे दो प्लेटें भिन्न दिशाओं में सरकती (Slide) है तो उसे **पारवर्ती पार्श्व** कहते है (चित्र-2.14)। प्लेटों की इस गति से न तो क्षेत्रीय संवधर्न (accretion) और न ही भंजन (destruction) होता है। इसे **अपरूण सीमान्त** (Shear Margins) भी कहते हैं।

चित्र–2.14 : पारवर्ती पार्श्व

उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भाग में सैन एण्ड्रियास (San Andreas) भ्रंश के सहारे दो उप-प्लेटों का पारवर्ती सीमान्त ही है। जनवरी 2001 में गुजरात में आये भूकम्प के अध्ययन से कुछ भूगर्भशास्त्रियों ने निष्कर्ष निकाला है कि उस क्षेत्र में भारतीय प्लेट की दो उप- प्लेटों के मध्य ऐसा ही सीमान्त है।

पार्श्वो पर हलचलों के कारण

प्लेट विवर्तनिकी के लिये किसी चालक बल अथवा यान्त्रिकी (Driving Mechanism) की आवश्यकता होती है। यह बल मैंटल में प्रवाहित संवाहनिक धाराओं (Convectional Currents) के रूप में बताया गया है। चित्र संख्या 2.15 में सम्पूर्ण मैंटल को घेरे हुए संवाहन क्रिया का एक प्रतिमान (Model) दर्शाया गया है। मध्य महासागरीय कटकों के क्षेत्र में भीतर से मैग्मा का ऊपर आना एवं अभिसारी पार्श्व पर एक प्लेट का नीचे धंसकर मैंटल में पहुँचना इस संवहन तंत्र की मुख्य गतिविधियाँ हैं। प्लेटों के एकदम नीचे संवहन तरंगों का प्रवाह (चित्र- 2.15) उन्हें क्षितिजीय गति देता है। कुछ भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार यह संवाहन क्रिया केवल दुर्बलतामण्डल तक ही सीमित है (चित्र- 2.16)। कुछ अन्य भूगर्भशास्त्रियों ने एक भिन्न प्रतिमान (चित्र- 2.17) देते हुए बताया है कि दुर्बलतामण्डल में गति प्लेटों में गति के बिल्कुल विपरीत होती है। इस पहलू पर उनका कहना है कि नीचे धंसते हुए सीमान्त अपने गुरूत्वाकर्षण बल के द्वारा स्वयं गतिमान होंगे।

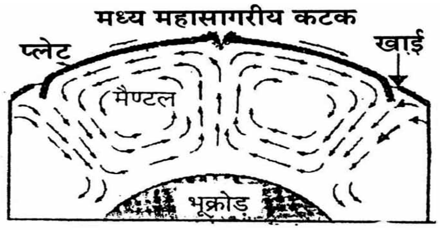

चित्र–2.15: सम्पूर्ण मैण्टल में संवाहन धाराएँ

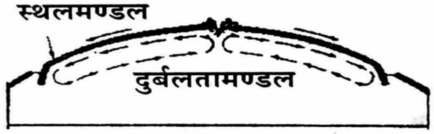

चित्र–2.16 : दुर्बलतामण्डल तक सीमित संवहन धाराए

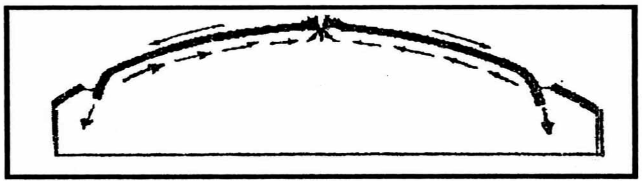
चित्र - 2.17 : संवाहन धाराओं की प्लेटों से विपरीत गति

संवाहनिक धाराओं की उत्पत्ति के लिये आवश्यक ऊर्जा स्रोत के विषय में भी मत भिन्नताएं हैं। रेडियो सक्रिय पदार्थ जनित ऊर्जा के विषय में अधिकांश भूगर्भशास्त्री सहमत हैं।

2.4.5 प्लेट विवर्तनिकी के प्रभाव

1. **महासागर तलीय विस्तारण (Sea-Floor Spreading) -** इस संकल्पना का प्रस्तुतीकरण सर्वप्रथम हैरी हैस (Harry Hess) ने सन् 1960 में किया। मध्य महासागरीय की शैलों में पुराचुम्बकत्व (Paleomagnetism) के शोध ने उनकी इस संकल्पना को जन्म दिया। इस कारण मध्य महासागरीय कटक में हुए रिक्त स्थान में नीचे से संवाहन क्रिया द्वारा लावा ऊपर आकर जमा हो जाने से नई शैलों की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया निरन्तर

चलते रहने से नई शैल पर्पटी बनती रहती है। परिणामस्वरूप महासागरीय तली का विस्तारण होता रहता है।

वास्तव में मध्य महासागरीय कटकों से महासागरीय तली का विस्तारण होता है, इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये पुराचुम्बकीय अध्ययन किये गये। चुम्बकीय धाराऐं निरन्तर प्रवाहित होती रहती है, किन्तु उनका क्रम बदलता रहता है। अत: मध्य महासागरीय कटकों में लावा के बाहर निकलकर शीतल पर्पटी में परिर्वतन होने की प्रक्रिया में शैलों पर उस समय प्रचलित चुम्बकत्व के काल की गणना की जा सकती है। मध्य महासागरीय कटकों के भ्रंश से दोनों ओर समान मात्रा में तली का प्रसारण ही नहीं बल्कि समानान्तर चुम्बकत्व के प्रभाव की धारियाँ भी अध्ययन में पाई गई हैं। पुराचुम्बकत्व की ये धारियाँ महासागरीय तली के निरन्तर प्रसारित होते रहने की प्रतीक हैं (चित्र - 2.18)। तली के विस्तारण की गति सभी स्थानों पर समान नहीं रही है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि तली के विस्तारण की दर मध्य महासागरीय कटक के एक ओर की ही विस्तारण दर होती है। अत: यदि यह कहा जाये कि किसी सागरतली की विस्तारण दर दो से मी. प्रतिवर्ष है तो इसका अर्थ होगा कि वहाँ कुल प्रसारण 2+2 = 4 से मी. हुआ है। नवीनतम खोजों से जानकारी मिली है कि प्रशान्त महासागर में अधिकतम विस्तारण दर 6 से 9 से. मी. प्रतिवर्ष (अत: कुल विस्तारण 12 से 18 से. मी. प्रतिवर्ष) है। हिन्द महासागर में यह दर 1.5 से 3 से. मी. तथा अटलाण्टिक महासागर में दो सेण्टीमीटर प्रतिवर्ष है।

इस प्रकार इन अध्ययनों से महाद्वीपों व महासागरों की अस्थिरता की संकल्पना भी प्रमाणित होती है। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि महाद्वीप व महासागरीय बेसिन सदा से गतिशील रहे हैं। इस तथ्य को स्वीकारने पर महाद्वीपीय विस्थापन की विचारधारा को प्लेट विवर्तनिकी संकल्पना से पुनः बल मिला।

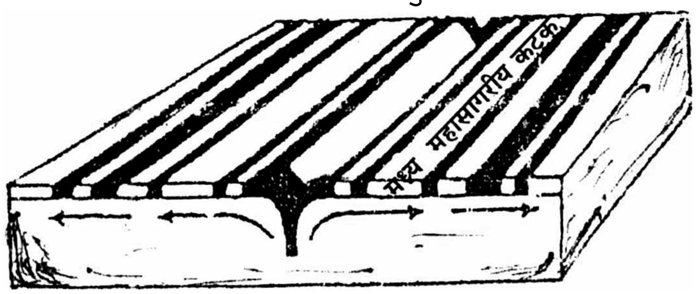

चित्र - 2.18 : विभिन्न चरणों में पुराचुम्बकत्व की धारियाँ

2. **महाद्वीपीय विस्थापन (Continental Drift)-** पुराचुम्बकत्व (Paleomagnetism) व महासागर तलीय विस्तारण से सम्बन्धित नवीनतम खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि महाद्वीप व महासागरीय बेसिन कभी भी स्थिर व स्थाई नहीं रहे हैं। इन खोजों के आधार पर पिछले बीस करोड़ वर्ष की ही अवधि में महाद्वीपीय विस्थापन से सम्बन्धित जानकारियाँ उपलब्ध हुई हैं। लेकिन वैज्ञानिकों ने ऐसी तकनीकें विकसित कर ली हैं जिनके द्वारा इसके पूर्व की अवधि के लिये भी महाद्वीपों व महासागरों की स्थिति का पुनर्गठन (Reconstruction) किया जा सके। ऐसे ही पुनर्गठन का प्रयास वैलेण्टाइन व मूर्स (Valentine & Moors) ने किया। उनके अनुसार 70 करोड़ वर्ष पूर्व एक विशाल

भूखण्ड था जिसे **पैन्जिया प्रथम** (Pangea I) कहा गया। पचास से साठ करोड़ वर्ष पूर्व भूगर्भ से आने वाली तापीय संवाहन धाराओं के कारण उसमें भ्रंशन व विस्थापन हुआ। आज से 20-30 करोड़ वर्ष पूर्व ये विस्थापित भूभाग प्लेट विवर्तनिकी के कारण पुन: मिल गये जिससे **पैन्जिया द्वितीय** (Pangea II) बना। इसे एक प्रतिमान के रूप में चित्र- 2.19 द्वारा दर्शाया गया है। इसके पश्चात पुन: विस्थापन होने लगा एवं पैन्जिया द्वितीय से भ्रंशित स्थलखण्ड वर्तमान महाद्वीपीय विन्यास तक विस्थापित होते रहे हैं। लगभग 8 करोड़ वर्ष पूर्व भारतीय प्लेट के टिथीस सागर को संकुचित करते हुए यूरेशियन प्लेट की ओर बढने के साथ-साथ हिन्द महासागर बनने लगा। लगभग इसी समय अफ्रीकन प्लेट से अलग होकर ऑस्ट्रेलियन-अण्टार्कटिकन प्लेट के दक्षिण की ओर विस्थापित होने से हिन्द महासागर का विस्तार होने लगा था। डीज व होल्डन (Dietz & Holden) ने भी महाद्वीपों के 20 करोड़ वर्ष पूर्व के इतिहास को पुनर्गठित करते हुए प्लेट विवर्तनिकी के आधार पर 65 लाख वर्ष आगे तक की स्थिति को चित्रित किया है (चित्र - 2.20 से 2.25 तक)।

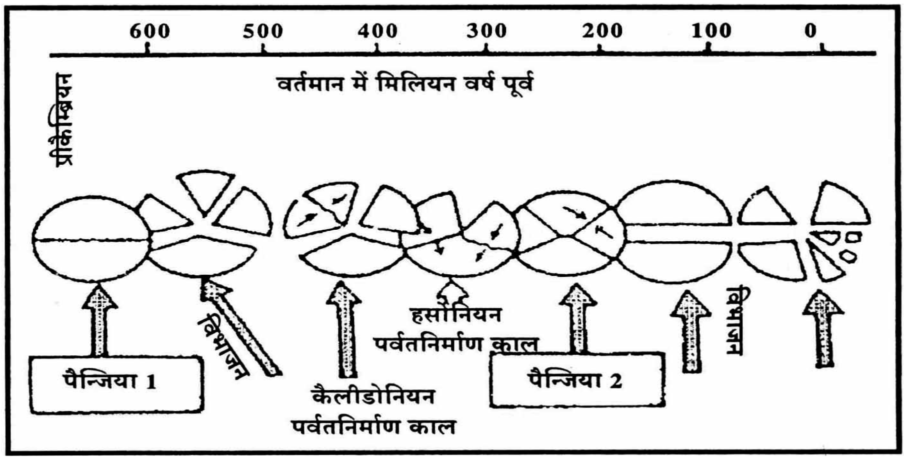

चित्र-2.19 पैन्जिया के विस्थापन व पुनर्गठन की प्रक्रिया का प्रतिमान
(वैलेण्टाइन व मूर्स के आधार पर)

3. **अन्य प्रभाव** - प्लेट विवर्तनिकी के कई अन्य प्रभाव भी हैं जिनका विवरण इस इकाई में अन्य बिन्दुओं के वर्णन में आ चुका है। पर्वत निर्माण, भूकम्प, ज्वालामुखी क्रिया, द्वीपीय चापों (Island arcs/Festoons) का निर्माण (चित्र - 2.16) आदि ऐसे अन्य प्रभाव हैं। जिन प्लेट पार्श्वों पर दरार घटियाँ हैं वे चौड़ी होती जा रही है। लाल सागर व अदन की खाड़ी में विस्तारण की दर 1 से. मी. प्रतिवर्ष है। कैलीफोर्निया की खाड़ी का भी विस्तारण हो रहा है।

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि महाद्वीपीय विस्थापन अब एक सच्चाई है जिसको अधिकांश भूगर्भशास्त्री एवं भूवैज्ञानिक मानने लगे हैं। विवाद मुख्यत: इस बिन्दु पर है कि विस्थापन के लिये सक्षम नोदकबल (Propelling Force) कौनसा है। नवीनतम खोजों ने तापीय संवाहन धाराओं की इस सन्दर्भ में विश्वसनीयता को पुनर्जीवित किया है। खोज कार्य निरन्तर जारी है कि विशिष्ट जानकारियाँ भूगर्भिक गूढ़ संदर्भों को अधिक स्पष्ट कर सकेगी।

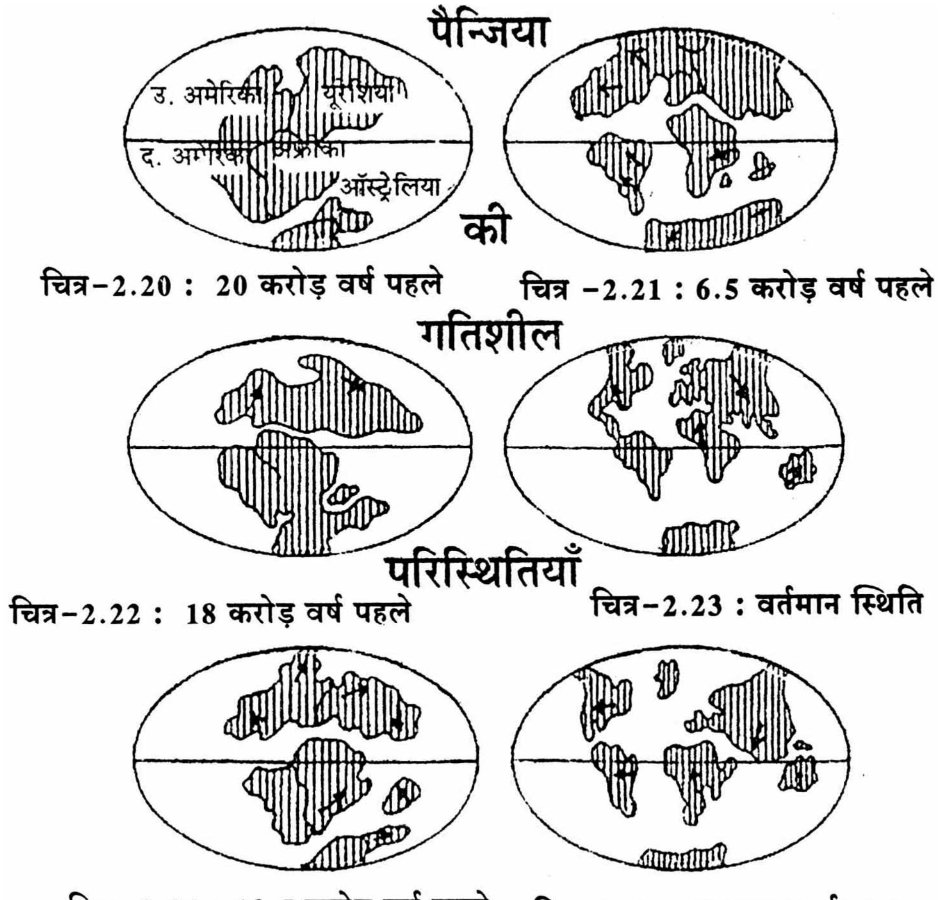

चित्र–2.20 : 20 करोड़ वर्ष पहले

चित्र –2.21 : 6.5 करोड़ वर्ष पहले

चित्र–2.22 : 18 करोड़ वर्ष पहले

चित्र–2.23 : वर्तमान स्थिति

चित्र–2.24 : 13.5 करोड़ वर्ष पहले

चित्र–2.25 :65 लाख वर्ष बाद

बोध प्रश्न-2

1. जो प्लेट पार्श्व नहीं है-

   (अ) अभिसारी (ब) अपसारी

   (स) खण्डित (द) पारवर्ती ( )

2. पारवर्ती पार्श्वो पर प्रधान गतिविधि होती है -

   (अ) ज्वालामुखी (ब) भूकम्प

   (स) महाद्वीपीय विस्थापन (द) भ्रंशन ( )

3. महासागरीय तलों की अधिकतम विस्तारण दर जिस महासागर में है, वह है-

   (अ) हिन्द (ब) प्रशान्त

   (स) अटलाण्टिक (द) अण्टार्कटिक ( )

2.5 सारांश

1. स्थल भूमण्डल का 71 प्रतिशत तथा जल 29 प्रतिशत; स्थल और जल की प्रतिध्रुवस्थ स्थिति।

2. महाद्वीपों व महासागरों का त्रिभुजाकार आकार।
3. महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति के विषय में वैगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त - इस संकल्पना पर आधारित कि जलवायु कटिबन्ध स्थिर रहे तथा स्थल खण्डों की स्थिति परिवर्तनशील रही ।
4. सियाल रूपी महाद्वीपों का सीमा की परत पर तैरना।
5. पैन्थालासा महासागर से घिरे हुए विशाल स्थलखण्ड पैन्जिया का टूटना एवं विखण्डित स्थलखण्डों का भूमध्य रेखा तथा पश्चिम की ओर विस्थापन।
6. पश्चिम की ओर विस्थापन चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति तथा भूमध्य रेखा की ओर विस्थापन उत्प्लावन बल के कारण।
7. विस्थापन सिद्धान्त द्वारा तटीय साम्य, पर्वतों के संरेखण, भूगर्भिक-संरचनात्मक समानता, ज्यॉमितीय प्रमाण, जैविक प्रमाण, पुराजीवाष्मीय एवं पुराजलवायुकी प्रमाण पर आधारित।
8. वैगनर के सिद्धान्त में कमियाँ-भौगोलिक, भूगर्भिक, ज्यॉमितीय, जैविक, पुराजलवायुकी प्रमाण आदि पर आधारित।
9. महाद्वीपों व महासागरों की प्रति ध्रुवस्थ स्थिति, त्रिभुजाकार आकार, उत्तरी गोलार्द्ध में महाद्वीपीय तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागरीय विस्तार की अधिकता आदि विशेषताएं।
10. महाद्वीपों व महासागरों की उत्पत्ति के विषय में वैगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त में सियाल रूपी महाद्वीपों का सीमा की परत पर तैरना, पैन्थालासा महासागर से घिरे हुए विशाल स्थलखण्ड पैन्जिया का टूटना एवं विखण्डित स्थलखण्डों का भूमध्य रेखा तथा पश्चिम की ओर विस्थापन माना गया।
11. वैगनर ने पश्चिम की ओर विस्थापन चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति तथा भूमध्य रेखा की ओर विस्थापन उत्प्लावन बल के कारण माना था, जिसके पक्ष में अनेक प्रमाण जुटाये गये।
12. किन्तु वैगनर के सिद्धान्त में अनेक कमियाँ पाये जाने के कारण इसका स्थान प्लेट विवर्तनिकी ने लिया।
13. प्लेट विवर्तनिकी - स्थलमण्डल दृढ़ व कठोर प्लेटों का एक समुच्चय, जिसके नीचे दुर्बलतामण्डल की स्थिति।
14. प्लेटों के उद्भव, प्रकृति व गतियों की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं उसके परिणाम प्लेट विवर्तनिकी कहलाते हैं।
15. महाद्वीपीय व महासागरीय प्लेटें - अमेरिकन, प्रशान्त, अफ्रीका, यूरेशियन, भारतीय, अण्टार्कटिका प्लेटें।
16. प्लेट पार्थ - अपसारी, अभिसारी एवं पारवर्ती पार्श्व।
17. पार्श्वो पर अनेक हलचलें।
18. पार्श्वो पर गति के फलस्वरूप महासागरीय विस्तारण, महाद्वीपीय विस्थापन, पर्वत निर्माण, भूकम्प, ज्वालामुखी क्रिया, द्वीपीय चापों का निर्माण आदि प्रभाव पड़े।

2.6 शब्दावली

1.	प्रतिध्रुवस्थ	:	अक्षांशीय व देशान्तरीय दृष्टि से ग्लोब पर किसी स्थान से बिलकुल विपरीत स्थिति।
2.	प्लेट	:	स्थलमण्डल के दृढ़ व कठोर पिण्ड
3.	प्लेट पार्श्व	:	प्लेटों के किनारे

2.7 संदर्भ ग्रन्थ

A.N. Strahler	:	Introduction to Physical Geography, John Wiley & Sons, New York
Arthur Holmes	:	Principles of Physical Geography Thomas Nelson & Sons, New York, 1949
सी बी. मामोरिया व रतन जोशी	:	भौतिक भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा,2006
J.A. Steers	:	Unstable Earth, कैम्ब्रिज, लंदन,1961
सविन्द्र सिंह	:	भूआकृति विज्ञान, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006
शर्मा व मिश्रा	:	भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन,जयपुर, 2006

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. (अ) 2. (ब) 3. (द)

बोध प्रश्न- 2

1. (स) 2. (द) 3. (ब)

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कार्बोनीफैरस युग में विशाल स्थल खण्ड का क्या नाम था?
2. वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त में क्या-क्या कमियाँ इंगित की गई हैं?
3. अभिसारी सीमान्त को भंजक क्यों कहते है?
4. पैन्जिया के चारों ओर कौनसा महासागर था?
5. सर्वाधिक ज्वालामुखी क्रिया किस सीमान्त पर होती है?
6. वैगनर के अनुसार महाद्वीपों का विस्थापन किन दिशाओं में हुआ?
7. प्लेट विवर्तनिकी क्या है? यह कैसे कार्य करती है?
8. ग्लोबीय प्लेटों का वर्णन करते हुए प्लेट विवर्तनिकी के प्रभाव बताइये।
9. पैंजिया का रूप रेखाचित्र बताइये।
10. विश्व के मानचित्र पर प्रमुख प्लेटों का विस्तार बताइये।

इकाई - 3 : भूसन्तुलन का सिद्धान्त; भूसंचलन एवं परिणामस्वरूप संरचनात्मक रूप; ज्वालामुखी एवं भूकम्प

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भूसन्तुलन

3.2.1 भूसन्तुलन शब्द का प्रयोग

3.2.2 भूसन्तुलन संकल्पना का प्रादुर्भाव एवं विभिन्न मत

3.3 भूसंचलन एवं परिणामस्वरूप संरचनात्मक रूप

3.3.1 पटल विरूपण

3.3.2 वलन

3.3.3 भ्रंश

3.4 ज्वालामुखी

3.4.1 ज्वालामुखी के कारण

3.4.2 ज्वालामुखी से निकलने वाले पदार्थ

3.4.3 ज्वालामुखी के प्रकार

3.4.4 ज्वालामुखी से निर्मित स्थलाकृतियाँ

3.4.5 ज्वालामुखी क्रिया का मानव जीवन पर प्रभाव

3.4.6 ज्वालामुखी का विश्व वितरण

3.5 भूकम्प - अर्थ एवं परिभाषा

3.5.1 भूकम्प के कारण

3.5.2 भूकम्प का वर्गीकरण

3.5.3 भूकम्पीय तरंगें

3.5.4 भूकम्प का विश्व वितरण

3.5.5 भूकम्प का मानव जीवन पर प्रभाव

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

- इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे -
- भूसन्तुलन से तात्पर्य, 'भूसन्तुलन' शब्द का प्रयोग कब,क्यों व किसने किया,
- महाद्वीपों व महासागरों के घनत्व की विभिन्नता, सन्तुलन सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त
- भूसंचलन- अन्तर्जात एवं बहिर्जात बल, महाद्वीप रख पर्वत निर्माण,
- सम्पीडन एवं तनाव मूलक बल द्वारा वलन एवं भ्रंशन, वलन एवं भ्रंश एवं के प्रकार
- ज्वालामुखी का अर्थ, ज्वालामुखी के प्रकार, ज्वालामुखी द्वारा निर्मित बाह्य एवं आन्तरिक स्थलाकृतियाँ,
- भूकम्प का अर्थ, भूकम्प की उत्पत्ति के कारण, रिक्टर मापक, भूकम्पलेखी, अधिकेन्द्र तथा भूकम्प के प्रभाव।

3.1 प्रस्तावना

धरातल पर उच्च पर्वत, विषम पठार, समतल मैदान, झीलें, सागरीय बेसिन आदि स्थित हैं। इनकी ऊँचाई तथा आकृति समान नहीं है फिर भी भूतल पर समस्त स्थलाकृतियों के मध्य 'सन्तुलन' एवं स्थिरता बनी रहती है, यह निःसन्देह आश्चर्यजनक है।

3.2 भूसन्तुलन

'परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी के ऊपर स्थित क्षेत्रों (पर्वत, पठार एवं मैदान) तथा गहराई में स्थित क्षेत्रों (झील, सागर आदि) के मध्य भौतिक अथवा यांत्रिक स्थिरता की दशा को ही भूसन्तुलन कहते है।'

'Isostasy simply means a mechanical stability between the upstanding parts and lowlying basins on the rotating earth.

"Isostasy" ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'समान खड़ा होना' (Equal standing)। इसे विद्वानों ने 'भूसन्तुलन या 'समस्थिति' नाम दिया है।

3.2.1 भूसन्तुलन शब्द का प्रयोग

भूसन्तुलन शब्द का सर्वप्रथम उपयोग अमेरिका के प्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता सर जॉर्ज डटन ने 1889 में किया। उनका विचार था कि घूमती हुई पृथ्वी पर ऊपर उठे हुए तथा निचले भूभागों के बीच एक सन्तुलन की स्थिति होनी चाहिए। इस सन्तुलन के लिए उन्होंने सोचा कि ऊपर उठे भाग अपेक्षाकृत हल्के पदार्थ द्वारा निर्मित होने चाहिए अन्यथा पृथ्वी पर ऊंचे-नीचे भूखण्ड अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकते।

डटन के अनुसार ऊंचे उठे भूभागों का कम तथा नीचे धंसे भूभागों का घनत्व अधिक होगा, तभी सबका भार एक तल पर बराबर होगा। इस रेखा अथवा आधार तल को समदाब तल /समतोल तल अथवा क्षतिपूर्ति तल कहा जा सकता है।

3.2.2 भूसन्तुलन संकल्पना का प्रादुर्भाव

सन्तुलन का विचार विद्वानों के मस्तिष्क में उस समय आया जब सर्वप्रथम (1735-45) फ्रान्सीसी विद्वान पीयरे ब्रुगैर (Pierre Bruguer) ने एण्डीज पर्वत की चिम्ब्राजो चोटी का उत्तर व दक्षिण दोनों ओर भूसर्वेक्षण किया तथा उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने पाया कि एण्डीज की चिम्ब्राजो चोटी साहु ल को बहु तकम आकर्षित कर रही है।

लगभग एक शताब्दी बाद 1859 में गंगा-सिन्धु के मैदान में हिमाचल के पास अक्षांशों का निर्धारण करते समय सर्वेयर जनरल सर जॉर्ज एवरेस्ट के सामने ऐसी ही गुरूत्व की विसंगति की समस्या आई। इसी समय 1849 में अमेरिका में 'हेफोर्ड, बोवी तथा जर्मनी के हैलमर्ट ने भी अपने भगणितीय सर्वेक्षण के दौरान इसी तरह की विसंगति युक्त परिणाम प्राप्त किए। अत: विद्वानों का ध्यान भूसन्तुलन संकल्पना की ओर गया।

(i) प्राट Pratt) की संकल्पना

सन् 1869 में गंगा-सिन्धु के मैदान में प्राट के निर्देशन में भूगणितीय सर्वेक्षण किया जा रहा था। कल्याण व कल्याणपुर नामक दो स्थानों के अक्षांश निर्धारण हेतु त्रिभुजीकरण एवं खगोलीय विधियों द्वारा किये गये माप के निम्न परिणाम प्राप्त हु ए।

त्रिभुजीकरण विधि द्वारा	$5^0 23'$	42.294"
खगोलीय विधि द्वारा	$5^0 23'$	37.0.58"
	अन्तर	5.236"

उक्त अन्तर को देखकर प्राट के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कल्याण हिमालय के निकट (96 किमी.) स्थित है तथा कल्याणपुर, कल्याण से दक्षिण में 599 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। जब प्राट ने हिमालय की निकटता के कारण साहु ल रेखा पर उसके आकर्षण गणना की शैलों के औसत घनत्व 2.7 के बराबर मानकर दुबाराकी तो कल्याण व कल्याणपुर के मध्य का अन्तर 5.236" से घटने के बजाय 15.885" बढ़कर आया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि साहु ल रेखा का कम झुकाव हिमालय में आकर्षण की कमी के कारण था।

प्राट ने समस्या के समाधान हेतु दो विकल्प दिए

(i) हिमालय पर्वत की शैलों का घनत्व उतना (2.7) नहीं है जितना माना गया।

(ii) पर्वतीय उच्च भाग के अधिक पदार्थ का सन्तुलन उसके नीचे कम घनत्व वाले पदार्थ से होता है।

प्राट ने माना कि पर्वतों का घनत्व पठारों से कम, पठारों का घनत्व मैदानों से कम तथा मैदानों का घनत्व समुद्र तल से कम होता है। स्पष्ट है प्राट ने ऊंचाई तथा घनत्व में उल्टा अनुपात माना है। प्राट ने माना कि पृथ्वी के आंतरिक भाग में एक क्षतिपूर्ति तल (Leavo of compensation) होता है। इस तल के तल ऊपर घनत्व में अंतर होता है परन्तु इस तल पर सभी का घनत्व समान होता है। चित्र में क्षतिपूर्ति तल के सहारे 'अ' तथा 'ब' दो स्तम्भ है। 'अ' का घनत्व कम तथा 'ब' का घनत्व अधिक है। इस प्रकार प्राट ने सिद्ध करने का प्रयास किया कि पृथ्वी पर जो स्तम्भ जितना ऊंचा होगा उसका घनत्व उतना ही कम होगा तथा जो भाग जितना नीचा होगा उसका घनत्व उतना ही अधिक होगा।

प्राट ने स्पष्ट किया की पृथ्वी के विभिन्न उच्चावच स्थिर इसलिए है क्योंकि उनके घनत्व में अंतर होता है परन्तु उनका भार पृथ्वी के आंतरिक भाग में क्षतिपूर्ति तल पर बराबर होता है। अपनी संकल्पना कि पुष्टि के लिए उन्होंने विभिन्न धातुओं के टुकड़े लेकर एक प्रयोग किया। उन्होंने एक टब में पारा भरकर उस पर विभिन्न घनत्व परन्तु समान भार वाले अनेक धातुओं के टुकड़े तैरा दिए। प्रत्येक टुकड़े का पारे में समान गहराई तक प्रवेश था परन्तु पारे के ऊपर टुकड़े की ऊँचाइयां भिन्न-भिन्न थी।

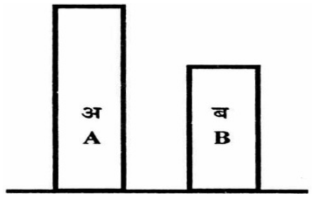

चित्र 3.1 : क्षतिपूर्ति तल

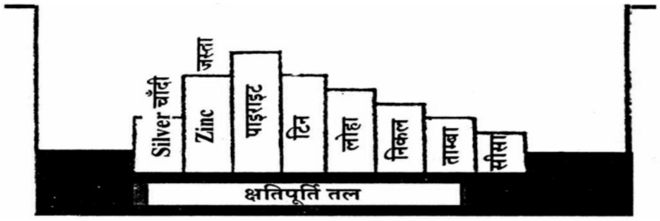

चित्र 3.2 : सन्तुलन की स्थिति (प्राट के मत का स्पष्टीकरण)

प्राट के मतानुसार पृथ्वी अध: स्तर (घनत्व 3.3) रूपी द्रव में पर्वत, पठार, मैदान, समुद्री भाग आदि इन्ही टुकड़ो की भांति तैर रहे है। इनके आधार द्रव में एक निश्चित गहराई पर समान रूप में स्थित है। इस प्रकार प्राट ने समान गहराई किन्तु विभिन्न घनत्व वाले स्तम्भों (Columns of uniform depth and varying density) की कल्पना की।

(ii) एयरी की संकल्पना

एयरी की संतुलन संकल्पना तैराकी के सिद्धांतों पर आधारित है। आर्किमिडीज के तैराव सिद्धांत के अनुसार तैरती हुई वस्तु अपने द्रव्यमान के बराबर अपने नीचे से द्रव्यमान को हटा देती है। यदि प्लावी हिम शैल (Iceberg) जल में तैरता है तो उसका 9वां भाग पानी में डूबा रहता है तथा एक भाग ऊपर उठा रहता है। यदि इस सिद्धांत के आधार पर सियाल (Sial) के सीमा (Sima) पर तैरने की व्याख्या करें तो स्पष्ट होता है कि सियाल का 9वां भाग सीमा के भीतर डूबा रहेगा। इसी आधार पर एयरी ने अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

एयरी के उक्त मतानुसार यदि हिमालय के डूबे हुए भाग की गणना तैराकी के सिद्धान्त के आधार पर करें तो तथ्य स्पष्ट हो जायेगा। हिमालय की ऊँचाई 8848 मीटर है तथा मैरामा (क्षति पूर्ति तल) में डूबा हुआ भाग 8848 x 9 = 79632 मीटर होगा। अधिक डूबे हुए भाग से ऊपर का हिमालय सन्तुलन की अवस्था में रहता है।

एयरी ने स्पष्ट किया कि हिमालय हल्के पदार्थों का बना है। इसकी जड़ काफी गहराई तक ग्लासी मैरामा में प्रवेश किए हुए है। फलस्वरूप सन्तुलन की स्थिति विद्यमान है। हिमालय के आधार पर एयरी ने बताया कि धरातल के सभी ऊँचे भाग अधिक गहराई तक तथा नीचे भाग कम गहराई तक डूबे हैं।

एयरी ने बताया कि पृथ्वी के विभिन्न भूखण्डों की शैले लगभग एक ही घनत्व की है। प्रयोगों से भी एयरी की बात सत्य प्रमाणित होती है। खान खोदने वालों का अनुभव है कि ऊपर से नीचे तक शैलों का घनत्व लगभग एक समान रहता है।

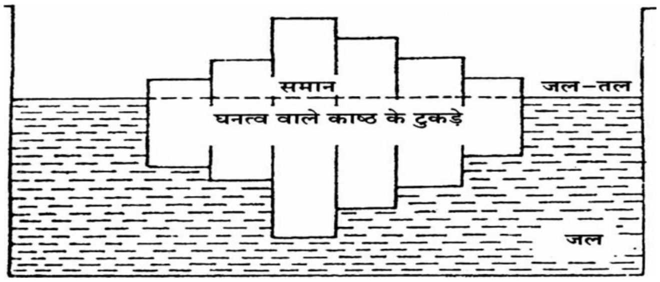

चित्र - 3.3 : एयरी के अनुसार सन्तुलन की स्थिति

एयरी ने अपनी संकल्पना की पुष्टि के लिए समान घनत्व किन्तु विभिन्न ऊँचाई वाले लोहे के टुकड़ों को पारे से भरे बेसिन में डुबोया। ये टुकड़े अपने आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न गहराई तक डूबते गए। प्रयोग के लिए हम लोहे की जगह लकड़ी के भी समान घनत्व एवं विभिन्न मोटाई के टुकड़े ले सकते है वे भी भिन्न-भिन्न गहराई तक डूबते नजर आयेंगे। लगभग यही व्यवस्था स्थल खण्डों के सम्बन्ध में लागू होती है। इस प्रकार एयरी ने विभिन्न गहराई किन्तु समान घनत्व वाले स्तम्भों (columns of uniform density with varying depth) की कल्पना की।

एयरी तथा प्राट की संकल्पना में अन्तर

एयरी के अनुसार धरातल के उच्चावच पर्वत, पठार, मैदान, समुद्र तली आदि सभी का घनत्व समान हैं केवल उनकी ऊंचाई में अन्तर होता है। स्थल भाग जितने अधिक ऊँचे होते हैं उतने ही अधिक गहराई में सीमा (क्षतिपूर्ति तल) में डूबे रहते हैं। जबकि प्राट के अनुसार भूपटल के उच्चवचों के घनत्व में ऊँचाई के अनुसार भिन्नता होती है। जो स्थल भाग अधिक ऊँचे हैं उनका घनत्व कम है। ये क्षतिपूर्ति में समान गहराई पर डूबे रहते हैं।

बोवी (Bowie) ने इन दोनों के विचारों की तुलना सरल शब्दों में की हैं - 'एयरी समान घनत्व और विभिन्न गहराइयों में परन्तु प्राट समान गहराई परन्तु विभिन्न घनत्व में विश्वास करते हैं।

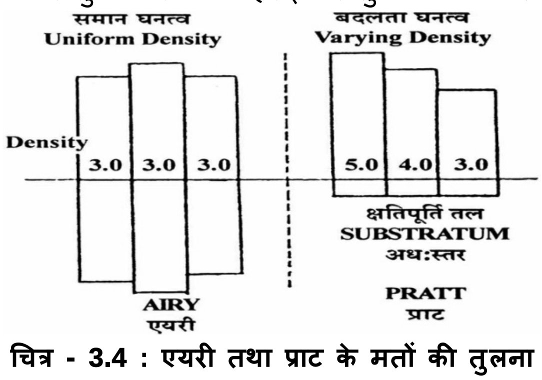

चित्र - 3.4 : एयरी तथा प्राट के मतों की तुलना

(iii) हेफोर्ड एवं बोवी की संकल्पना

हेफोर्ड तथा बोवी का विचार प्राट के विचारों से साम्य रखता है। हेफोर्ड के अनुसार पृष्ठ के नीचे अलग-अलग घनत्व के भाग विद्यमान हैं। परन्तु धरातल के नीचे कुछ गहराई पर एक ऐसा तल

है जिसके ऊपर घनत्व में अन्तर होता है तथा नीचे की तरफ घनत्व समान होता है। इसको हेफोर्ड ने 'क्षतिपूर्ति तल' (Level of compensation) बताया है। इस तल के उपर घनत्व तथा ऊँचाई के साथ उल्टा अनुपात होता है। क्षतिपूर्ति तल 100 किलोमीटर की गहराई पर स्थित है। इस तल के उपर कम घनत्व वाले चट्टानी भागों की ऊँचाई अधिक तथा अधिक घनत्व वाले चट्टानी भागों की ऊंचाई कम होगी।

बोवी (Bowie) ने अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए एक प्रयोग किया। उन्होंने जस्ता, पाइराइट, चांदी, टिन, लोहा, तांबा, सीसा, निकल आदि धातुओं के टुकड़े के लिए जिनकी लम्बाई में भिन्नता तथा मोटाई एवं चौड़ाई समान थी। इनको पारे से भरे बेसिन में डूबोया। जिसका घनत्व अधिक था वे कम ऊँचाई तक तथा जिसका घनत्व कम था वे अधिक ऊंचाई तक स्थित थे। इस प्रयोग के आधार पर उन्होंने भूतल के वर्तमान वितरण को समझाने का प्रयास किया।

बोवी ने स्पष्ट किया कि पर्वत, पठार, मैदान तथा समुद्र तली 100 किलोमीटर की गहराई में एक तल (level) के सहारे बराबर रहते हैं। परन्तु धरातल पर जिनका घनत्व कम है वे अधिक ऊँचाई तक विस्तृत हैं। पर्वतों का घनत्व सबसे कम है अतः वे सबसे ऊँचे उठे हुए हैं, पठार, मैदान तथा समुद्र तली की स्थिति इसके विपरीत है।

हेफोर्ड तथा बोवी की संकल्पना की निम्नानुसार आलोचना हुई -

1. उन्होंने क्षतिपूर्ति तल की कल्पना 100 किलोमीटर की गहराई पर थी, इतनी गहराई पर स्थलरूपों की जड़ें अपनी मूलावस्था में विद्यमान नहीं रह सकती क्योंकि पृथ्वी के आन्तरिक भाग में गहराई के साथ ताप में वृद्धि होती है। अतः 100 किलोमीटर की गहराई पर चट्टानें ठोस अवस्था में नहीं रह सकती।
2. हेफोर्ड तथा बोवी के अनुसार भूतल पर स्थलरूप उर्ध्वाधर अवस्था में है जबकि शैलों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इनमें क्षैतिज स्तरीकरण हुआ है।

(iv) आर्थर होम्स की संकल्पना

आर्थर होम्स का विचार भी सर जॉर्ज एयरी के मत से मिलता जुलता है। जो भाग अधिक ऊँचे हैं उनका घनत्व कम तथा जो भाग नीचे हैं उनका घनत्व अधिक होता है। भूकम्प विज्ञान के आधार पर होम्स ने पृथ्वी के भीतर विभिन्न घनत्व की परतों का पता लगाया। होम्स के अनुसार पर्वतीय क्षेत्र के नीचे सियाल परत की गहराई 110 किलोमीटर, तटवर्ती मैदानों के नीचे 10-12 किलोमीटर तथा समुद्री तली के नीचे सियाल परत बहुत पतली होती है, प्रशान्त महासागर की तल के नीचे सियाल परत नहीं के बराबर है। होम्स के अनुसार सियाल का घनत्व 2.70 सीमा का घनत्व 3.00 तथा सीमा के निचले भाग का घनत्व 3.40 है। होम्स के अनुसार पर्वत, पठार, मैदान आदि का निचला भाग सीमा में प्रवेश किए हुए है। पर्वतों की जड़ें सीमा में काफी गहराई तक स्थित हैं जबकि मैदानों, पठारों एवं समुद्र तली की स्थिति इसके विपरीत है।

होम्स ने बताया कि ऊँचे उठे भाग इसलिए स्थित हैं क्योंकि उनके नीचे अधिक गहराई तक कम घनत्व वाले पदार्थ होते हैं। होम्स के अनुसार व्यवहार में यद्यपि भूतल पर संतुलन की स्थिति पूर्णरूपेण नहीं पाई जाती, तथापि सन्तुलन की दशा दृष्टिगत होती है।

भूतल पर सन्तुलन स्थायी रूप से विद्यमान नहीं है, क्योंकि भूगर्भिक शक्तियों इसमें अव्यवस्था उत्पन्न करती रहती हैं। धरातल पर विद्यमान विषम स्थलाकृतियों में सन्तुलन पृथ्वी की

अभ्यान्तरिक प्रक्रिया पर निर्भर है। इसकी सत्यता का ज्ञान तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक हमें भूगर्भ के विषय में पूर्व ज्ञान न हो।

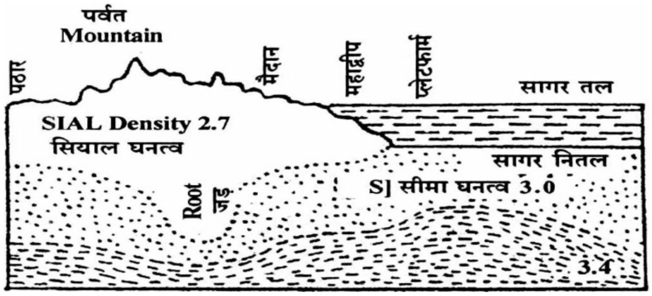

चित्र - 3.5 : सन्तुलन की स्थिति (सियाल तथा सीमा का वितरण)

बोध प्रश्न-1

1. सन्तुलन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने व कब किया?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

2. प्राट ने किन दो स्थानों का सर्वेक्षण कर सन्तुलन सिद्धान्त की कल्पना की?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

3. प्राट ने हिमालय की आकर्षण शक्ति ज्ञात करने के लिए हिमालय का घनत्व कितना माना?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

4. हेफोर्ड तथा बोवी के अनुसार क्षतिपूर्ति तल कितनी गहराई पर उपस्थित है?

………………………………………………………………………………………………

………………………………………………………………………………………………

5. सर जॉर्ज एवरेस्ट के निर्देशन में कल्याण व कल्याणपुर में अक्षांशीय माप का निर्धारण खगोलीय व त्रिभुजन विधि द्वारा ज्ञात करने पर कितना अन्तर आया?

……………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………………

3.3 भूसंचलन एवं परिणाम स्वरूप संरचनात्मक रूप

भूतल पर हर क्षण परिवर्तन होते रहते हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। ये परिवर्तन पृथ्वी तल पर अन्तर्जात एवं बहिर्जात बलों द्वारा होते हैं। अन्तर्जात बल पृथ्वी तल पर असमानताओं को सृजित करते है जबकि बहिर्जात बल समतल स्थापक बल कहलाते है। स्थलरूपों को प्रभावित करने वाले बलों को निम्नानुसार विभाजित किया जा सकता है -

तालिका 3.1 में हमने अन्तर्जात बलों को दो भागों में विभक्त किया है। पटल विरूपण Diastrophic Force) बल तथा आकस्मिक अन्तर्जात बल। (अ) आकस्मिक बल जैसे भूकम्प एवं ज्वालामुखी, द्वारा भूपटल पर अल्पकाल में ही अनेक प्रकार के भूध्श्यों का जन्म हो जाता है। पटल विरूपण को दीर्घकालीन शक्ति कहा जाता है जो दीर्घावधि तक विशाल क्षेत्र में प्रभावी रहती हैं। इन्हें हम महाद्वीप एवं पर्वत निर्माणकारी बल कहते हैं।

तालिका-3.1

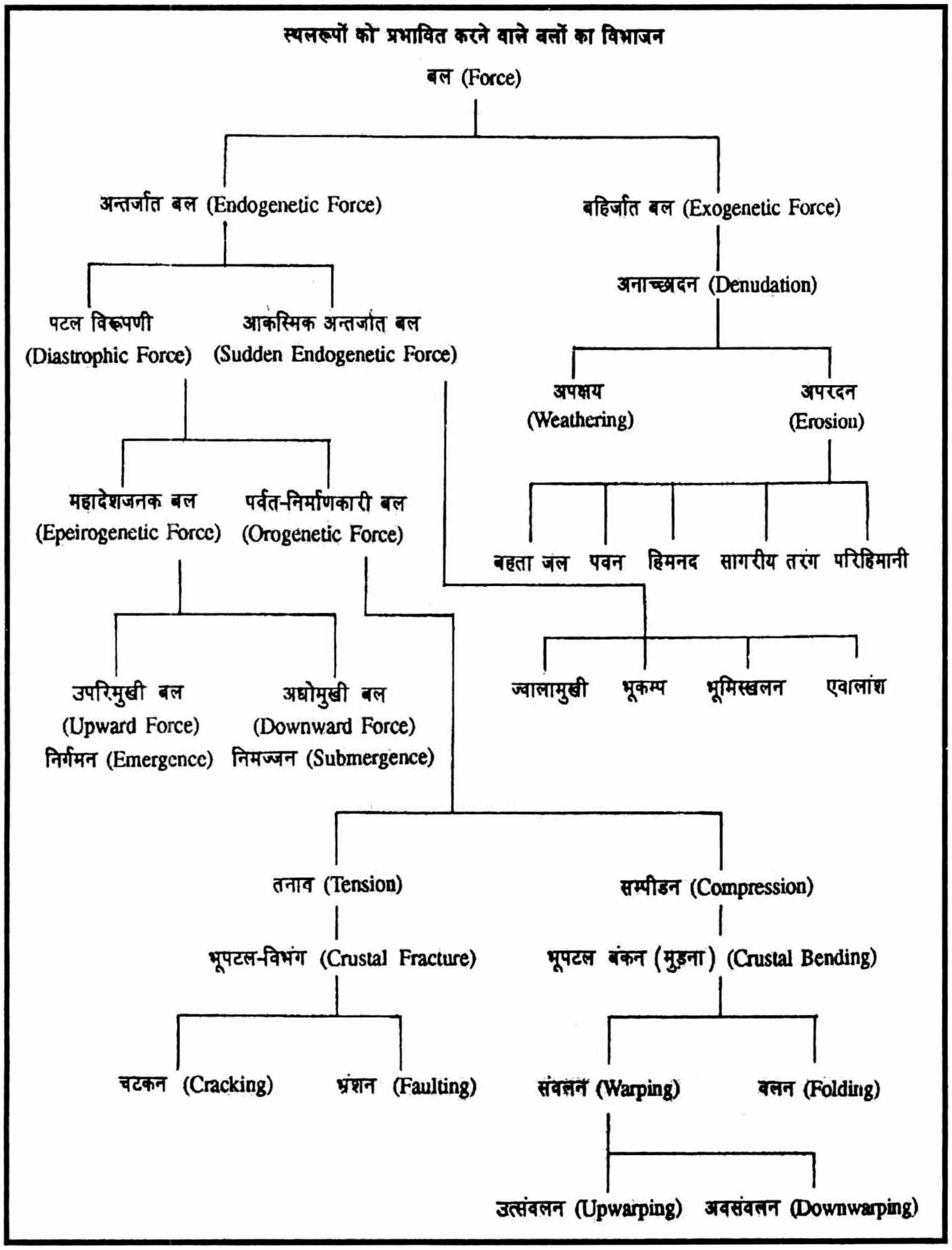

3.3.1 पटल विरूपण (Diastrophism)

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली होता है। यह बल धीमी गति से दीर्घावधि तक कार्य करता है। अत: इसका प्रभाव हजारों वर्षों बाद परिलक्षित होता है। धरातल के नीचे क्रियाशील यह बल विवर्तनिक शक्तियों (tectonic force) के नाम से जाना जाता है। पटल विरुपण बलों को क्षेत्रीय दृष्टिकोण से दो उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

(i) महाद्वीपीय निर्माणकारी बल (Epeirogenetic force)

इस बल को महाद्वीपीय संचलन बल भी कहा जाता है। इससे महाद्वीपों का उर्ध्वाधर उत्थान तथा निम्नवत् पतन होता है। फलस्वरूप अन्यान्य स्थलरूपों का निर्माण होता है। इसके प्रभाव समुद्रतट पर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं जहाँ तटवर्ती भूमि जलमग्न या उन्मग्न होती है। यह बल पृथ्वी की त्रिज्या की दिशा में कार्य करता है। अत: इसे त्रिज्याई बल भी कहते हैं। दिशा की दृष्टि से इसे दो उपवर्गों में विभाजित किया जाता है - ऊर्ध्वगामी बल (Upward Force) तथा अधोगामी बल (Downward force)

(ii) पर्वत निर्माणकारी शक्तियाँ (Orogenetic force)

यह भू-पटल पर क्षैतिज दिशा में कार्य करता है अत: इसे स्पर्श रेखीय बल (Tangential force) भी कहते हैं। यह बल दो रूपों में कार्य करता है। जब बल दो विपरीत दिशाओं में कार्य करता है तो उससे तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसे तनावमूलक बल कहते हैं। तनाव के कारण भू पटल पर भ्रंश (Fault), दरार (Fracture) तथा चटकने (Cracks) पड जाती हैं। जब बल आमने-सामने कार्य करता है तो संपीडन होने लगता है। इसे सम्पीडनात्मक बल कहते हैं। इससे भूपटलीय चट्टानों में वलन तथा संवलन पड़ जाते हैं। भू पटल पर उच्चावच के निर्माण में पर्वत निर्माणकारी संचलन (शक्तियों) बहुत महत्वपूर्ण हैं।

3.3.2 वलन (Folds)

भूपटल जब अवसादी शैलों की रचना होती है तो प्रारम्भ में उसके स्तर समतल होते हैं किन्तु, पृथ्वी की सम्पीडन गति के कारण इन पर विपरीत दिशा में दबाव पड़ता है तो उनमें सिकुड़न पैदा होती है और वे मुड़ जाती हैं। शैल-स्तरों के इस प्रकार बहुत अधिक मुड़ जाने को ही वलन कहा जाता है।

सम्पीडन के कारण भू-पटल की शैलों में पड़ने वाले मोड़ कभी भी सरल रूप में नहीं पाए जाते। प्राय सम्पीड़न और तनाव की गति, दिशा और तीव्रता में बड़ा अन्तर होता है। फलस्वरूप भू-पटल के विभिन्न भागों में शैलों में पढ़ने वाले मोड़ भी विभिन्न आकार, विस्तार एवं झुकाव के देखे जाते हैं। वलन के प्रमुख प्रकार निम्न हैं -

1. **सममित वलन (Symmetrical folds) -** इस प्रकार के वलन में गुम्बदों का आकार सुडौल होता है पार्श्ववर्ती ढाल एवं उनकी भुजाएँ समान होती है।

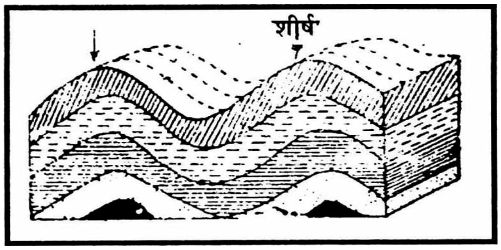

चित्र - 3.7 : सममित वलन

2. **असममित वलन (Asymmetrical folds) -** जिस वलन में गुम्बदों के पार्श्ववर्ती ढाल विभिन्न स्वभाव वाले होते हैं उसे असममित वलन कहते हैं। इस वलन की एक भुजा मन्द ढ़ाल व साधारण झुकाव वाली तथा दूसरी भुजा तीव्र ढाल तथा कम दूरी वाली होती है।

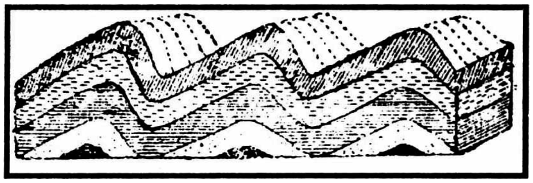

चित्र - 3.8 : असममित वलन

3. **एकनत वलन (Monoclinal folds) -** जिस वलन में एक ढाल समकोण तथा दूसरा ढाल मन्द होता है उसे एकनत वलन कहा जाता है।

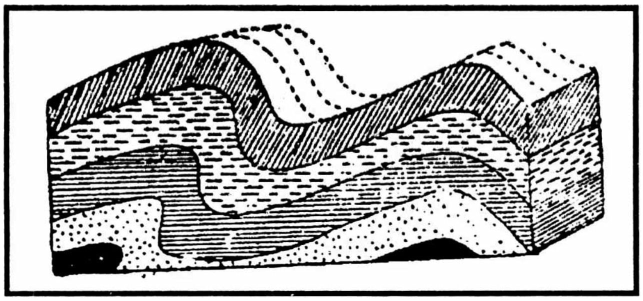

चित्र - 3.9 : एकनत वलन

4. **समनत वलन (Isoclinal folds) -** इस वलन में पार्श्ववर्ती भुजाएँ ऊर्ध्वाधर रूप में समानान्तर होती है। समान सम्पीडनात्मक बल के द्वारा इनका निर्माण होता है। इनकी भुजाएँ एक दूसरे के इतनी निकट होती है कि इनके टूटने की सम्भावना बनी रहती है।

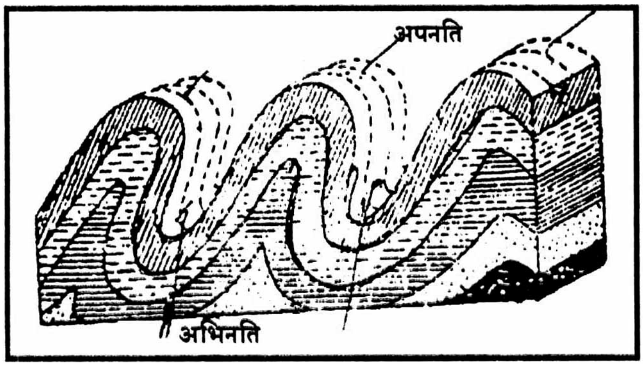

चित्र-3.10 : समनत वलन

5. **परिवलित वलन (Recumbent folds) -** क्षैतिजवत् समानान्तर भुजाओं वाले वलन को परिवलित वलन की संज्ञा दी जाती है।

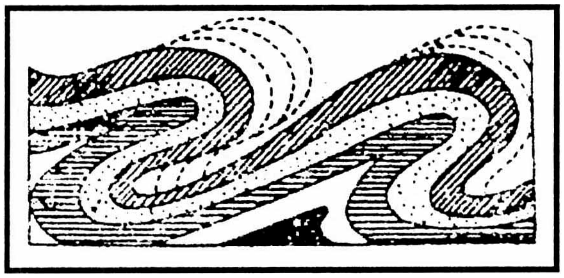

चित्र - 3.11 : परिवलित वलन

6. प्रति वलन (Overturned folds) - सम्पीडन शक्ति अत्यधिक होने पर वलन की एक भुजा दूसरी पर उलट कर चढ़ जाती है तो उसे प्रति वलन कहा जाता है।

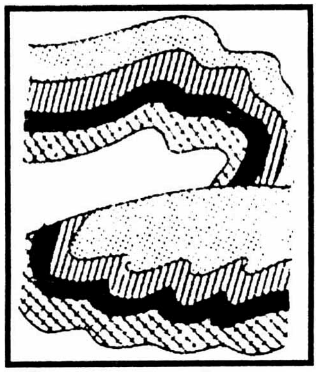

चित्र–3.12 : प्रति वलन

7. **अवनमन वलन (Plunging folds) -** जब वलन के अक्ष समानान्तर न होकर एक दूसरे के कोणिक होते हैं तब इन्हें अवनमन वलन कहा जाता है।

8. **पंखाकार वलन (Fan-shaped folds) -** सम्पीडन बार-बार होने से अपनलियों तथा अभिनतियों में लहर उत्पन्न हो जाती है। फलस्वरूप अनेक छोटी-छोटी अभिनतियाँ एवं अपनतियाँ उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के वलन को पंखा वलन कहते हैं।

9. **खुला वलन (Open folds) -** जब किसी वलन की दो भुजाओं के बीच का कोण 90° से अधिक तथा 180° से कम होता है तो इसे खुला वलन कहते हैं।

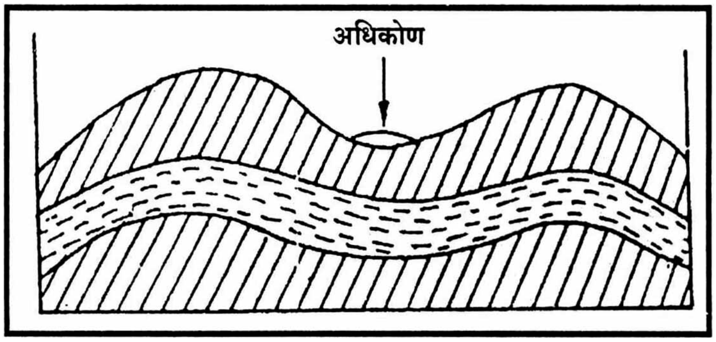

चित्र - 3.13 : खुला वलन

10. **बन्द वलन (Closed folds) -** जब किसी वलन की दो भुजाओं के बीच का कोण 90° से कम होता है तब इसे बन्द वलन कहते हैं। इसमें सम्पीडन शक्ति अधिक तीव्र होती है

जिससे चट्टाने काफी ऊँची उठ जाती है। दोनों भुजाएँ ऊर्ध्वाधर रूप में काफी पास आ जाती है।

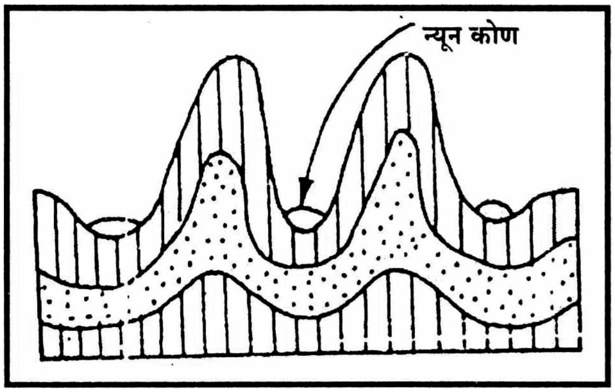

चित्र - 3.14 : बन्द वलन

3.3.3 भ्रंश (Faults)

जब भूपटल पर किसी एक स्थान में सम्पीडन होता है तो दूसरे स्थान में तनाव उत्पन्न होता है। सम्पीडन के कारण भूपटल पर वलन तथा तनाव के कारण भ्रंशन की उत्पत्ति होती है। जब किसी क्षेत्र में कार्यशील उदग्र बल (Horizontal stress) में अन्तर होता है तो भ्रंशन का निर्माण होता है। कभी-कभी चट्टानों में तनाव इतना अधिक और आकस्मिक होता है कि वे न केवल टूट जाती है वरन् इधर उधर खिसक भी जाती हैं। अत: चट्टानों में तोड़-फोड़ की वह सतह जहाँ चट्टानों में आपेक्षिक गति (Relative Movement) तथा विस्थापन (Displacement) होता है, भ्रंश कहलाते हैं।

भ्रंश के प्रकार (Kinds of faults)

1. **सामान्य भ्रंश (Normal fault) -** जब शैलों में तनाव के कारण दरार उत्पन्न हो जाती है और तनाव सक्रिय रहता है तो भ्रंश रेखा के सहारे दोनों कगारों का संचलन होना प्रारम्भ हो जाता है तथा एक भाग नीचे धँस जाता है। इसे सामान्य भ्रंश कहा जाता है। इसमें प्राय: भ्रंश के दोनों किनारे विपरीत दिशा में खिसक जाते हैं

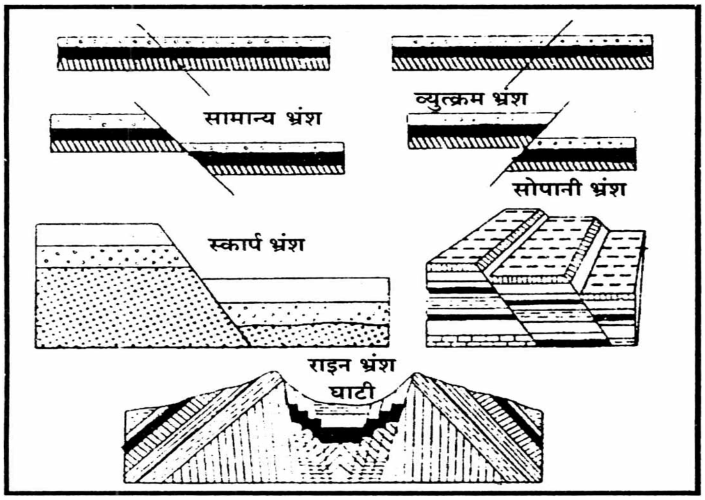

चित्र - 3.6 : भ्रंश के विभिन्न प्रकार

2. **व्युत्क्रम भ्रंश (Reverse fault) -** सामान्य भ्रंश के विपरीत जब भूखण्ड में दरार पड़ने पर दोनों स्थलखण्ड एक दूसरे की ओर खिसकते हैं तो भ्रंश तल के ऊपर वाला भूखण्ड निचले भूखण्ड के ऊपर चढ़ जाता है, इसे व्युत्क्रम भ्रंश कहते हैं। ऐसे भ्रंश सम्पीडन के कारण बनते हैं, अत: इन्हें सम्पीडन भ्रंश (compressional fault) भी कहते हैं।

3. **नतिलम्बी भ्रंश (Strike fault) -** बहुत कम ऊँचे कगार वाला भ्रंश जिसका निर्माण क्षैतिज संचलन द्वारा होता है उसे नतिलम्बी भ्रंश कहते हैं।

4. **सोपानी भ्रंश (step fault) -** जब चट्टानों पर समानान्तर भ्रंश रेखाओं का निर्माण होता है तथा क्षैतिज संचलन होता है तब एक के बाद एक खण्ड नीचे धँस जाते हैं। फलस्वरूप सोपानी भ्रंश का निर्माण होता है।

5. **रिफ्ट घाटी अथवा द्रोणी भ्रंश (Rift Valley) -** भ्रंश क्रिया द्वारा जब दो सामान्य भ्रंश इस प्रकार पड़ते हैं कि मध्य का भाग नीचे धँस जाता है तो एक घाटी का निर्माण होता है जिसे रिफ्ट या भ्रंश घाटी कहते हैं ।

बोध प्रश्न- 2

1. यदि वलन की भुजाओं के मध्य 90° से कम कोण बनता हो तो वह वलन कहलाता है।

   (अ) एकनत (ब) परिवलित

   (स) बंद (द) खुला ( )

2. विभंगित भूखण्डों का एक दूसरे पर आरोपित होना जिस भ्रंश पर होता है, वह है -

   (अ) उत्क्रम (ब) विदारण

   (स) कटक (द) समान्य ( )

3. यदि उपरी वलित शैल नीचे की शैल संरचना में भिन्न हो तो वह जिस प्रकार का वलन होगा, वह,

   (अ) समनत (ब) ग्रीवा खण्ड

   (स) पंखाकार (द) असममित ( )

4. रिफ्ट या दरारी घाटी किसका परिणाम है -

   (अ) वलन (ब) भ्रंशन

   (स) संवलन (द) खुला वलन ( )

5. वलन का विकास होता है -

   (अ) संकुचन से (ब) तनाव

   (स) फैलाव से (द) एकीकरण से ( )

3.4 ज्वालामुखी एवं भूकम्प

3.4.1 ज्वालामुखी के कारण

मौंक हाऊस (Monkouse) के अनुसार "ज्वालामुखी भूपटल के वे छिद्र हैं जिनसे भूगर्भ का मैगमा आदि पदार्थ उदगार के रूप में बाहर निकलता है। "

ज्वालामुखी क्रिया का अभिप्राय उस विनाशकारी तथा हृदय विदारक घटना से है जिसमें भूगर्भ से गर्म तप्त गैसें, जलवाष्प, लावा, धुंआ, राख, ठोस पिण्ड आदि भयंकर गर्जन के साथ भूपटल पर प्रकट होते हैं। ट्रिवार्थ के अनुसार "वे सभी क्रियाएं जिनसे द्रवित शैलें पृथ्वी की गहराई से भूपटल के बाहर निकलती है, ज्वालामुखी क्रिया कहलाती हैं।"

ज्वालामुखी क्रिया के कारण (Causes of Vucanism)

1. **भूगर्भिक असंतुलन (Isostatic Disequilibrium) :** असन्तुलन के कारण शैलों में गति, भूकम्प आदि घटनाएं होती हैं। इनसे भूगर्भिक क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के कारण ज्वालामुखी क्रिया होती है। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश सक्रिय ज्वालामुखी भूगर्भिक दृष्टि से असन्तुलित क्षेत्रों में पाए जाते हैं। परि प्रशान्त महासागरीय मेखला (Circum Pacific Belt) ऐसा ही क्षेत्र है।
2. **गैसों की उत्पत्ति (Formation of Gases) :** भूगर्भ में प्रचुर मात्रा में जल संग्रहीत रहना है। दरारों से होकर यदि जल पृथ्वी के आन्तरिक भाग तक पहुंच जाता है तो वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। वाष्प कुछ अन्य गैसें ज्वालामुखी उदगार में नोदक शक्ति (Propelling force) का कार्य करती है।
3. **भूगर्भ में तापवृद्धि :** भूगर्भ में विभिन्न प्रकार के रेडियो सक्रिय पदार्थ पाए जाते हैं। इनके विखण्डन से काफी ताप निकलता है। तापमान में अधिक वृद्धि हो जाने पर शैलें द्रव अवस्था में आ जाती हैं। इससे उनके आयतन में वृद्धि होती है। अत: पिघला हुआ पदार्थ (मैग्मा) कमजोर दरारों से होकर ज्वालामुखी के रूप में धरातल पर पहुंचता है।
4. **दाब में कमी (Pressure release) :** ऊपरी परतों के दबाव के कारण भूगर्भ की शैलें उच्च तापमान पर भी ठोस अवस्था में बनी रहती है। भूगर्भिक हलचलों के कारण कई बार ऊपरी शैली का दबाव कम हो जाता है। दबाव कम हो जाने से निचली शैलें पिघल जाती है। परिणाम स्वरूप उनके आयतन में वृद्धि होती है और मैग्मा ज्वालामुखी क्रिया को प्रोत्साहित करना है। इसकी प्रायिकता बैसाल्ट शैलों के क्षेत्र में अधिक होता है।

3.4.2 ज्वालामुखी से निकलने वाले पदार्थ (Ejected Material from Volcano)

ज्वालामुखी उद्‌गार के समय भूगर्भ से तीन प्रकार के पदार्थ बाहर निकलनते हैं। (i) ठोस (ii) द्रव एवं (iii) गैस।

1. **ठोस पदार्थ (Solid Material) :** ज्वालामुखी से निसृत ठोस पदार्थो में बारीक राख के कणों से लेकर बड़े-बडे. शिलाखण्ड तक सम्मिलित होते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म कणों का ज्वालामुखी धूल या राख मटर या सुपारी के आकार के दानों को लैपिली (Lapilee) चने के आकार के कणों को स्कोरिया (Scoria) के अंगठित रूप को ब्रेसिया (Breccia) ब्रेसिया के साथ गैस के बुलबुलों से निर्मित छिद्रमय पत्थर के टुकड़े भी निकलते हैं जिन्हें झामक

(Pumice) तथा कई मीटर व्यास के बड़े शिलाखण्डों को ज्वालामुखी बम (Volcanic Bomb) कहते हैं।

2. **द्रव पदार्थ (Lipuid Material) :** भूगर्भ में शैलें अत्यधिक ताप के कारण तरल अवस्था में परिवर्तित हो जाती है जिसे मैग्मा कहते हैं। धरातल पर आने के बाद इसे लावा कहा जाता है। सिलिका की मात्रा के आधार पर लावा दो प्रकार का होता है।

   (i) **अम्लीय लावा (Acid Lava) -** यह बहुत अधिक गाढ़ा होता है क्योंकि इसमें सिलिका की मात्रा 75% से भी अधिक होती है। वायुमण्डल के सम्पर्क में आते ही यह शीघ्र जम जाता है। अधिकांश ज्वालामुखी शंकुओं व उच्च पर्ततों के निर्माण में इसी प्रकार के लावा का योग होता है।

   (ii) **पैठिक लावा (Basic Lava) -** यह लावा पतला होता है अत: यह दूर तक बहकर चला जाता है एवं इससे उच्च पर्वतों के बजाय पठारों की रचना होती है। इसमें सिलिका अंश 40% तक होती है।

   (iii) **गैसीय पदार्थ (Gaseous Material) -** भूगर्भिक उष्णता के कारण कई पदार्थ भूगर्भ में गैसीय रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। ज्वालामुखी के उदगार से जल वाष्प, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, सल्फर, डाइ-ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, अमोनियम क्लोराइड, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसें निकलती हैं।

3.4.3 ज्वालामुखी के प्रकार (Types of Volcanoes)

ज्वालामुखी कई प्रकार के होते हैं । इन्हें मुख्यत: तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है - (i) उद्गार की अवधि (ii) उदगार के स्वरूप, एवं (iii) संरचना। इन आधारों पर ज्वालामुखी के वर्गीकरण को निम्न तालिका से समझा जा सकता है -

ज्वालामुखी का वर्गीकरण

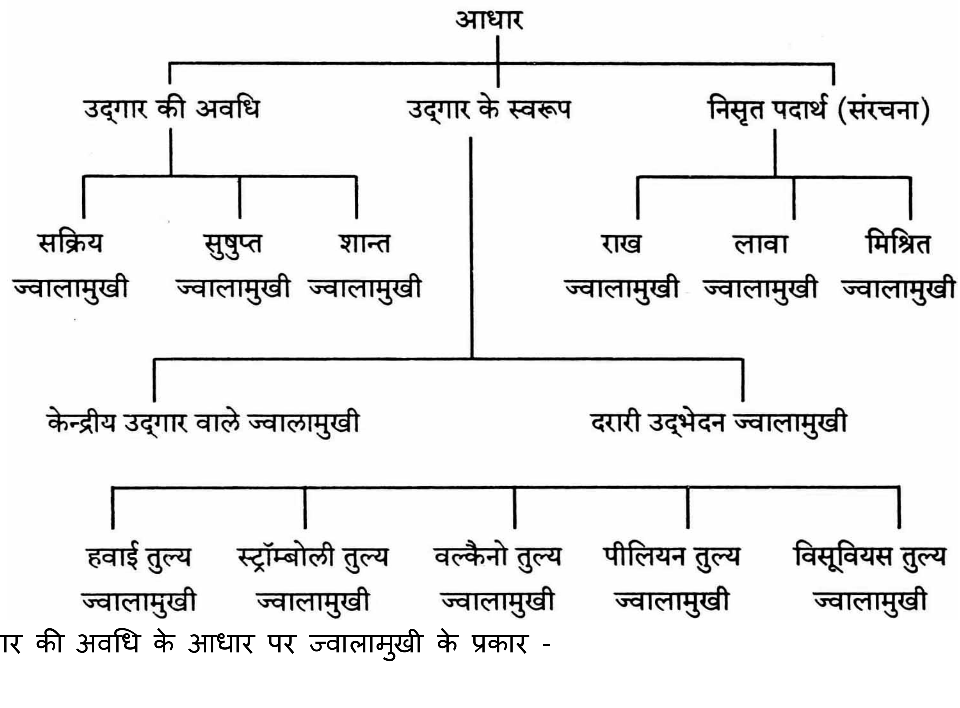

उद्गार की अवधि के आधार पर ज्वालामुखी के प्रकार -

(1) **सक्रिय या जाग्रत ज्वालामुखी (Active Volcano) :** वे ज्वालामुखी जिनसे हर समय उद्गार होते रहते हैं। भूमध्य सागर में स्थित इटली के सिसली व सिसली से उतर में लिपारी द्वीप स्थित एटना व स्ट्रॉम्बोली इसी प्रकार के ज्वालामुखी हैं। भारत में कोई सक्रिय ज्वालामुखी नहीं है। विश्व में आज भी लगभग 500 सक्रिय ज्वालामुखी है।

(2) **सुषुप्त ज्वालामुखी (Dormant volcano) :** ऐसे ज्वालामुखी जो एक बार सक्रिय होने के पश्चात् काफी लम्बे समय तक शांत हो जाते हैं और अचानक फिर सक्रिय हो जाते हैं, उन्हें सुषुप्त ज्वालामुखी कहते हैं। इटली का विसूवियस इसी प्रकार का ज्वालामुखी है जिसमें सन 1631, 1812, 1906 एवं 1943 में उदगार हुए।

(3) **शांत या निर्वाषित ज्वालामुखी (Extinct Volcano) :** जिन ज्वालामुखियों में दीर्घावधि से उदगार नहीं हुए और न आगे होने की संभावना प्रतीत होती है, उन्हें शांत या निर्वाषित ज्वालामुखी कहते हैं। म्यानमार का माउन्ट पोपा, ईरान का देमवंद व कोहे सुल्तान आदि शांत ज्वालामुखी के उदाहरण हैं। इनकी नली मार्ग व मुख अवरूद्ध हो जाने पर इनके क्रेटर में पानी भर जाने से क्रेटर झीलें बन जाती है।

उद्गार के स्वरूप के आधार पर ज्वालामुखी के प्रकार

उद्गार के स्वरूप के आधार पर ज्वालामुखी को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (i) केन्द्रीय उद्गार वाले ज्वालामुखी तथा (ii) दरारी उद्गार वाले ज्वालामुखी।

(i) केन्द्रीय उद्गार वाले ज्वालामुखी (Central eruption type of Volcano(: जिन ज्वालामुखी से उद्गार एक नली या मुख से होता है उन्हें केन्द्रीय उदगार वाले ज्वालामुखी कहते हैं। इसमें उद्गार के समय निकले सभी पदार्थ क्रेटर के पास शंकु के रूप में एकत्रित हो जाते हैं। इटली का स्ट्रॉम्बोली व जापान का फ्यूजीयामा इसके उदाहरण हैं। केन्द्रीय उद्गार वाले ज्वालामुखियों को निम्न उप भागों में विभाजित किया जाता है।

(अ) हवाई तुल्य ज्वालामुखी (Hawaian Type Volcano) : इस प्रकार के ज्वालामुखियों में उद्गार उदगार बहुत ही शांत ढग से होता है। इनके उदगार में लावा पतला एवं गैसें कम होती है। विखण्डित पदार्थ भी कम होते हैं। विखण्डित पदार्थ भी कम होते हैं। इस प्रकार के उद्गार हवाई द्वीप पर स्थित ज्वालामुखियों में होते हैं। हवाई द्वीप का मोनालोवा इसका उदाहरण है।

(ब) स्ट्रॉम्बोली तुल्य ज्वालामुखी (Strombolian type of Volcano) : इटली में सिसली के उतर में लिपारी द्वीप पर स्थित स्ट्रॉम्बोली में भयंकर विस्फोट के साथ उद्गार होते हैं। निस्तृत पदार्थ काफी ऊँचाई तक उछलते हैं। लावा के साथ गैसों की मात्रा अधिक होती है, धूल, झामक, स्कोरिया, बम आदि पदार्थ वेग के साथ वायुमण्डल में ऊपर उठ जाते है तथा पुन: क्रेटर तथा शंकु के ढालों पर गिरते है।

(स) वल्कैनो तुल्य ज्वालामुखी (Vulcano type of Volcano): इस प्रकार के ज्वालामुखी से उद्गार के समय गाढ़ा लावा निकलता है। इस प्रकार प्रत्येक उदगार के बाद इसका क्रेटर मुख अवरुद्ध हो जाता है। अत: पुन: उदगार के समय भयंकर विस्फोट के साथ अवरूद्ध क्रेटर

को तोड़कर एकत्रित गैस, धुआँ व लावा आकाश में फूलगोभी का रूप धारण कर लेते हैं। भूमध्यसागर में लिपारी द्वीप पर स्थित वल्कैनो इसी प्रकार के ज्वालामुखी का उदाहरण है।

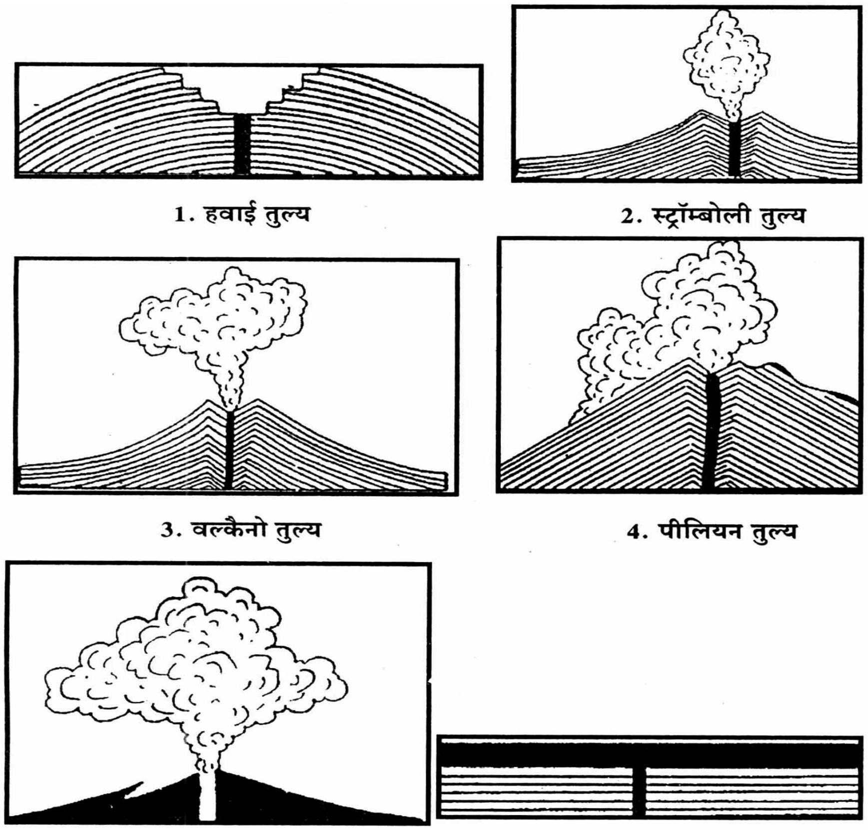

1. हवाई तुल्य
2. स्ट्रॉम्बोली तुल्य
3. वल्कैनो तुल्य
4. पीलियन तुल्य
5. विसूवियस तुल्य तथा
6. आइसलैण्ड तुल्य

चित्र - 3.15

(द) पीलियन तुल्य ज्वालामुखी (Pelean type of Volcano) : इस प्रकार के ज्वालामुखी में विस्फोट सबसे भयंकर आवाज के साथ होता है। सन् 1883 में सुमात्रा व जावा के मध्य सुण्डा जल डमरु मध्य में स्थित क्राकाटोआ द्वीप पर स्थित ज्वालामुखी के विस्फोट से उस द्वीप का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। इसके विस्फोट की आवाज 4800 किलोमीटर दूर ऑस्ट्रेलिया में भी सुनाई दी। इससे विस्तृत गैसें व धूल आकाश में 100 किलोमीटर की ऊँचाई तक छा गई है। ऐसे ज्वालामुखी का दूसरा उदाहरण पश्चिमी द्वीप समूह में स्थित पीली पर्वत है।

(य) विसूवियस तुल्य ज्वालामुखी (Vesuvius type of Volcano) : प्राय: ये ज्वालामुखी वलकेनियन प्रकार के ही होते हैं। उदगार के समय इनमें गैसों के साथ लावा आकाश में काफी ऊंचाई तक चला जाता है। आकाश में फूल गोभी की भांति मेघ छा जाते हैं। इटली में माऊंट विसुवियस का उदगार 79 ई. में हुआ था। अत: इस प्रकार के उदगार वाले ज्वालामुखी को विसूवियत तुल्य कहते हैं।

(ii) दरारी उद्भेदन वाले ज्वालामुखी (Fissure eruption type of Volcanoes) : जब लावा कई दरारों अथवा मुखों से होकर बाहर निकलता है तो उसे दरारी उद्गार कहते हैं। अनेक दरारों से लावा निकलने के कारण वह काफी बड़े क्षेत्र में फैल जाता है। इस कारण

लावा शंकु न बनकर लावा पठार या लावा मैदान बन जाता हैं। प्रायद्वीपीय भारत के उत्तर पश्चिमी भाग एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलम्बिया बेसिन में इसी प्रकार उद्गार हुये थे। सन् 1783 में आइसलैण्ड में तीस किलोमीटर लम्बी दरार से भी ऐसा ही उद्गार हुआ था।

निसृत पदार्थ (संरचना) के आधार पर ज्वालामुखी के प्रकार

ज्वालामुखी पर्वत के निर्माण्या में विभिन्न प्रकार के निसृत पदार्थों का योगदान रहता है। इस आधार पर ज्वालामुखियों को तीन भागों में बांटा जाता है -

(i) **राख ज्वालामुखी (Cinder Volcano) -** इसमें उद्गार के समय प्राय: राख निकलती है। अत: ज्वालामुखी शंकु राख से बना होता है। ऐसे शंकु सामान्यत: नतोदर ढाल वाले होते हैं। फिलीपीन के ल्यूजोन द्वीप पर स्थित कैमखिन, मैक्सिको का होरूल्यो एवं अल साल्वेडोर का ईजाल्को ऐसे ही ज्वालामुखी हैं।

(ii) **लावा ज्वालामुखी (Lava Volcano) -** इनसे निसृत पदार्थो में लावा की प्रधानता होती है। अत: इनसे निर्मित शंकु लावा प्रदान होते हैं। वल्कैनो, मौनालोआ एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के वायोमिंग राज्य में स्थित डैविल्स टावर इसके उदाहरण है।

(iii) **मिश्रित ज्वालामुखी (Composite Volcano) -** इनके शंकुओं के निर्माण में ज्वालामुखी से निसृत सभी पदार्थो का योगदान रहता है। विश्व के अधिकांश ज्वालामुखी इस श्रेणी में आते हैं। फ्यूजीयामा, एटना, विसूवियस आदि इसके उदाहरण है।

3.4.4 ज्वालामुखी से बनी स्थलाकृतियाँ (Volcano Landforms)

ज्वालामुखी के उद्गार के समय कुछ लावा पदार्थ पृथ्वी के आन्तरिक भाग में भी जम जाता है जिससे कुछ स्थलाकृतियों का निर्माण धरातल के नीचे भी हो जाता है। लावा का धरातल पर तथा अभ्यान्तर में जमाव से ज्वालामुखी निर्मित स्थलरूपों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। अभ्यान्तरिक तथा बाहय स्थल रूप जिसे निम्न तालिका से समझा जा सकता है -

ज्वालामुखी से बनी स्थलाकृतियाँ

बाह्य स्थलाकृतियाँ		आभ्यान्तरिक स्थलाकृतियाँ
केन्द्रीय उद्गार से निर्मित	दरारी उद्गार से निर्मित	
(i) राख शंकु	(i) ज्वालामुखी मैदान/लावा मैदान	(i) बैथोलिथ
(ii) लावा शंकु	(ii) लावा पठार/लावा गुम्बद	(ii) लैकोलिथ
(iii) मिश्रित शंकु	(iii) ज्वालामुखी द्वीप	(iii) फैकोलिथ
(iv) परिपोषित शंकु		(iv) सिल
(v) लावा डाट		(v) डाइक
(vi) क्रेटर		(vi) लैपोलिथ
(vii) काल्डेरा		(vii) स्ट्राइक
		(viii) शीट
		(ix) लावा गुम्बद

बाह्य स्थलाकृतियाँ (Extrusive Landforms)

ज्वालामुखी क्रिया के फलस्वरूप जो भू आकार धरातल पर बनते हैं, उन्हें बाह्य स्थलाकृतियों की श्रेणी में रखा जाता है, इन्हें दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

(A) केन्द्रीय उद्गार से निर्मित स्थलाकृतियाँ

(i) **राख शंकु (Cinder Cone)-** कुछ केन्द्रीय उद्गार वाले ज्वालामुखियों से केवल राख निकलती है जिसके क्रेटर के आसपास जमा होते रहने से राख शंकु का निर्माण होता है। इनकी ऊँचाई कम होती है तथा ये नतोदर ढाल युक्त होते हैं। फिलीपीन का कैमग्विन, मैक्सिको का होरूल्यो, अल साल्वेडोर का इजालको इसके उदाहरण हैं।

(ii) **लावा शंकु (Lava Cone)-** इसके निर्माण में लावा की प्रधानता होती है। इनकी ऊँचाई ढाल का स्वरूप एवं फैलाव लावा के गुण पर निर्भर करता है। लावा के गुण के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा जाता है-

(अ) अम्लीय लावा शंकु (Acid lava cone)- यह शंकु अम्लीय लावा से बना होता है जिसमे सिलिका की मात्रा अधिक होती है। यह लावा गाढ़ा एवं चिपचिपा होता है तथा शीघ्र ठंडा होकर ठोस रूप ले लेता है। अत: इन शंकुओं का फैलाव अधिक नहीं होता। स्ट्रॉम्बोली ज्वालामुखी का शंकु इसका उदाहरण है।

(ब) पैठिक लावा शंकु (Basic Lava cone)- पैठिक लावा में सिलिका की मात्रा कम होती है। यह लावा पतला होता है अत: काफी समय तक ठंडा न होने से विस्तृत क्षेत्र पर फैल जाता है। हवाई द्वीप का मौनालोआ ज्वालामुखी का शंकु इसका उदाहरण है।

(iii) **मिश्रित शंकु (Mixed Cone)-** जो शंकु ज्वालामुखी से निसृत विभिन्न पदार्थो लावा, शिलाखण्डों आदि से बने होते हैं, उन्हें मिश्रित शंकु कहते हैं। लावा को साथ शिलाखण्डों का मिश्रण संयोजक तत्वों का कार्य करते हैं। जापान का फ्यूजीयामा, संयुक्त राज्य अमेरिका का माऊंट शास्ता इसके उदाहरण हैं।

(iv) **परिपोषित शंकु (Parasitic Cone)-** कभी-कभी ज्वालामुखी की मुख्य नली मार्ग से उपनली मार्ग भी बन जाते हैं। जिससे मुख्य शंकु के ढालों पर गौण शंकु बन जाते हैं। इनका पोषण मुख्यनली मार्ग से होने के कारण इन्हें परिपोषित शंकु कहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में माऊंट शास्ता के ढाल पर बना शास्तिना शंकु इसका उदाहरण है।

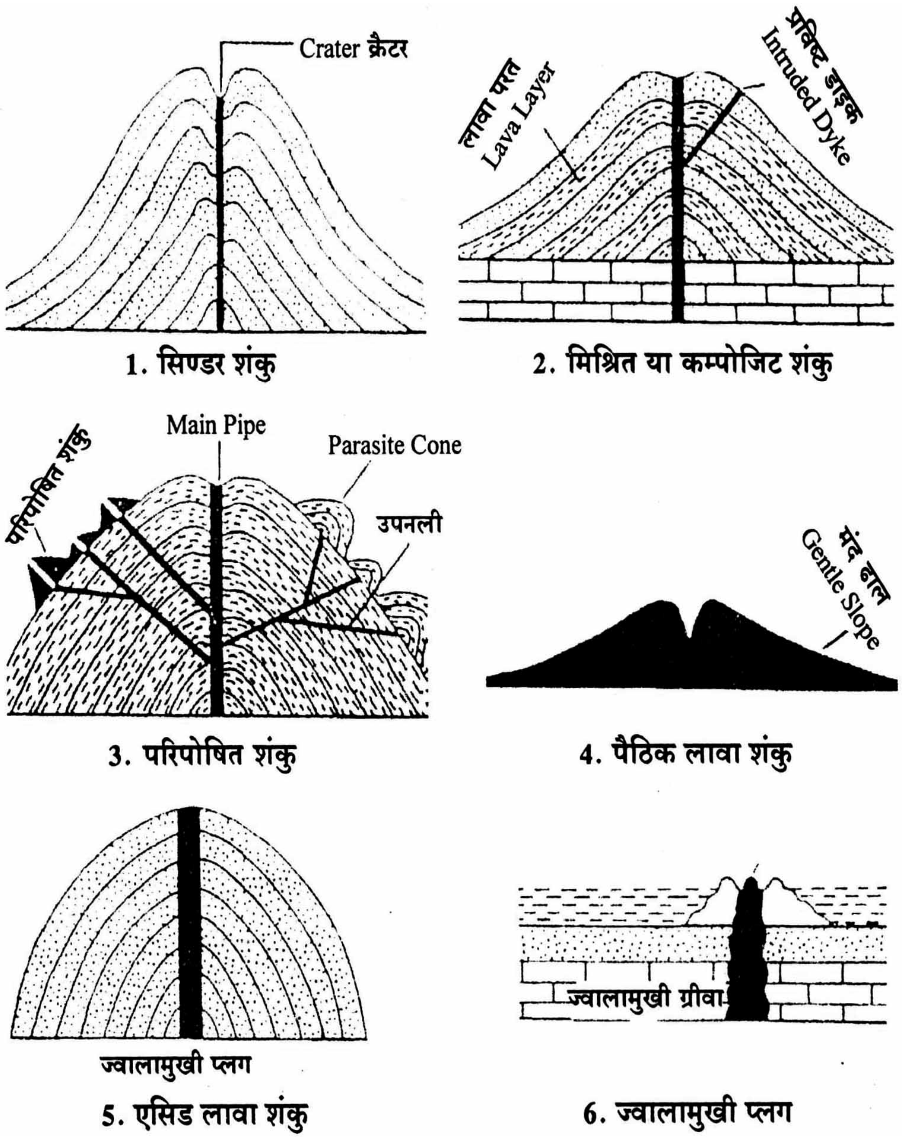

चित्र-3.16

(v) लावा डाट (Lava plug)- ज्वालामुखी के शांत हो जाने पर मुख एवं नली मार्ग में लावा ठोस होकर जमा हो जाता है, इसे लावा डाट कहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्लैक हिल्स, डैविल्स टावर आदि इसके उदाहरण हैं।

(vi) **क्रेटर (Crater)-** ज्वालामुखी के मुख पर बने कीपनुमा गर्त को क्रेटर कहते हैं। ज्वालामुखी के शांत हो जाने पर इनमें पानी भर जाता है जिन्हें क्रेटर झील कहते हैं।

(vii) **काल्डेरा (Caldera)-** वृहत आकार के क्रेटर को काल्डेरा कहते हैं।

(B) **दरारी उद्‌गार से निर्मित स्थलाकृतियाँ**

(i) **ज्वालामुखी मैदान -** ज्वालामुखी उद्‌गार से निसृत राख, लावा शिलाखण्ड आदि के उबड़-खाबड़ क्षेत्र में भर जाने के कारण ज्वालामुखी मैदान बन जाते हैं। इटली मे नेपल्स नगर के समीप उपजाऊ मैदान विसूवियस ज्वालामुखी से निसृत राख, लावा आदि से निर्मित है।

(ii) **लावा पठार-** उच्च प्रदेशों में ज्वालामुखी निसृत पदार्थो के जम जाने से लावा पठार बन जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का कोलाम्बिया पठार इसका उदाहरण है।

(iii) ज्वालामुखी द्वीप- समुद्र तली, पर ज्वालामुखी उदगार से निसृत पदार्थ जमा होते रहते हैं। ये निक्षेप जब समुद्र तल से ऊपर उभर आते हैं तो ज्वालामुखी द्वीप बन जाते हैं। हवाई द्वीप एल्यूशियन द्वीप आदि इसके उदाहरण हैं।

आन्तरिक स्थलाकृतियाँ (Intrusive Londforms)

(i) **बैथोलिथ (Batholith)-** आंतरिक शैलों में मग्सा के विशाल एकत्रण को बैथोलिथ कहते है। ये कई हजार वर्ग किलोमीटर में फैले होते हैं। बैथोलिथ के शीर्ष पर मैग्मा के अतिरिक्त जमाव को स्कंध (Stock) कहते हैं।

(ii) **लैकोलिथ (Lacolith)-** धरातल के निकट कुछ गहराई पर ही मैग्मा के गुम्बादाकार एकत्रण को लैकोलिथ कहते हैं। यह बैथोलिथ की तुलना में छोटा होता है।

(iii) **फैकोलिथ (Phacolith)-** आंतरिक शैलों में अपनति शीर्ष भाग में जमा मैग्मा फैकोलिथ कहलाता है।

(iv) **लैपोलिथ (Lapolith)-** आन्तरिक शैलों में लावा के तश्तरीनुमा जमाव को लैपोलिथ कहते हैं।

(v) **सिल (Sill)-** आन्तरिक शैलों में मैग्मा के क्षितिजीय जमाव को सिल कहते हैं।

(vi) **डाइक (Dyke)-** आन्तरिक शैलों में मैग्मा के लगभग लम्बवत जमाव को डाइक कहते है।

ज्वालामुखी क्रिया के गौण रूपों में गीजर (Geyser), धुंआरे (Fumerols), सोल्फाटारा (Solfatara), उष्ण जल स्रोत (Hot Springs), पंक ज्वालामुखी (Mud flow) आदि भूदृश्यावलियों का भी निर्माण होता है।

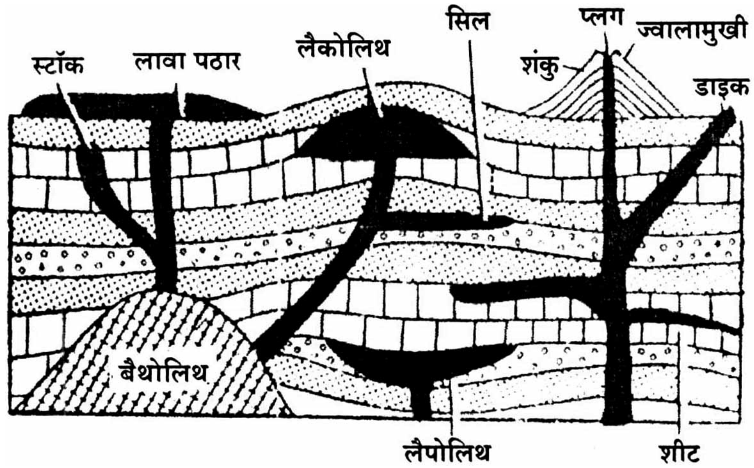

चित्र - 3.18 : ज्वालामुखी निर्मित अभ्यान्तरिक आकृतियाँ

3.4.5 ज्वालामुखी क्रिया का मानव जीवन पर प्रभाव

रचनात्मक प्रभाव- ज्वालामुखी उद्‌गार से निकले लावा के विघटन से निर्मित काली मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ होती है। भारत के प्रायद्वीपीय पठार के उत्तरी पश्चिमी भाग में ऐसी ही उपजाऊ काली

मिट्टी मिलती है। ज्वालामुखी उद्गार के फलस्वरूप निकले लावा, शिलाखण्ड, राख, धूल आदि उबड़ खाबड़ क्षेत्र में जमा होकर उसे समतल मैदान बना देते हैं। समुद्री क्षेत्रों में नये द्वीपों का अविर्भाव भी हो जाता है। ज्वालामुखी क्रिया के फलस्वरूप जमा हुई आग्नेय शैलों में अनेक खनिज पदार्थ मिलते हैं जिनमें लोहा, जस्ता, एण्टीमनी, चांदी, टिन आदि प्रमुख खनिज हैं। कई खनिज गरम जल व गैसों के साथ निकलकर धरातल पर जम जाते हैं।

विध्वंसात्मक प्रभाव- ज्वालामुखी के उद्गार क्षेत्र में जन धन की अपार हानि होती है। बहता हुआ लावा नदियों के मार्ग अवरूद्ध कर देता है। उदगार के फलस्वरूप जहरीली गैसों से भी जीवन को क्षति पहुंचती है। कई बार भीषण विस्फोट से ज्वालामुखी द्वीप नष्ट भी हो जाते हैं, सागरों में भीषण विस्फोट के कारण सुनामी जैसी ऊंची लहरें उठती हैं। इससे तटीय क्षेत्रों में अपार जन धन की हानि होती है।

3.4.6 ज्वालामुखी का विश्व वितरण (World distribution of Volcanoes)

विश्व में लगभग 500 सक्रिय ज्वालामुखी हैं। ज्वालामुखियों के वितरण की दो प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रथम ज्वालामुखी, भूकम्प क्षेत्रों में पाए जाते हैं। द्वितीय महासागरों के तटीय भागों एवं महाद्वीपीय निमग्न तटों पर ज्वालामुखी अधिक पाये जाते हैं, क्योंकि यहां सागरीय जल के भूगर्भ में प्रवेश करने की संभावनाएं अधिक होती हैं। विश्व के प्रमुख ज्वालामुखी क्षेत्र निम्न हैं -

(i) परि-प्रशान्त महासागरीय मेखला (Circum Pacific Belt)

(ii) मध्य महाद्वीपीय मेखला (Mid Continental Belt)

(iii) मध्य अटलाण्टिक कटक मेखला (Mid Continental Ridge Belt)

(iv) पूर्वी अफ्रीकी मेखला (East African Belt)

(v) अन्य क्षेत्र (Other Areas)

(i) **परि-प्रशान्त महासागरीय मेखला (Cricum Pacific Belt) :** विश्व के दो तिहाई से कुछ अधिक ज्वालामुखी केवल इस मेखला में पाए जाते हैं। अतः इस मेखला को अग्नि वलय (Fire Ring of Pacific) कहते हैं। यह मेखला प्रशान्त महासागर के चारों ओर तटवर्ती क्षेत्र में फैली हुई है। इसका विस्तार कमचटका प्रायद्वीप से दक्षिण की ओर पूर्वी एशिया, दक्षिणी पूर्वी एशिया, प्रशान्त महासागरीय द्वीपों व न्यूज़ीलैण्ड होते हुए अन्टार्कटिका महाद्वीप तक है। यहां से उत्तर की ओर इसका क्रमिक विस्तार दक्षिणी व उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भागों में होते हुए एल्यूशियन द्वीपों एवं कमचटका प्रायद्वीप तक है। जापान का फ्यूजीयामा, फिलीपीन का माउण्ट ताल, दक्षिणी अमेरिका का चिम्बरैजो, संयुक्त राज्य अमेरिका का माउण्ट शास्ता आदि इस मेखला के कुछ ज्वालामुखी हैं।

(ii) **मध्य महाद्वीपीय मेखला -** यह मेखला मुख्य रूप से हिमालय अल्पाइन पर्वतीय श्रृंखला के क्षेत्र में फैली हुई है। भूमध्य सागर के ज्वालामुखी इसी मेखला में सम्मिलित किए जाते हैं। इस मेखला के ये क्षेत्र भूगर्भिक दृष्टि से असन्तुलित हैं। इस मेखला का विस्तार दक्षिण पूर्व में इण्डोनेशिया से लेकर मलेशिया, हिन्दचीन, म्यानमार, दक्षिणी

चीन होते हुए भूमध्य सागर के पश्चिमी तट तक है। बैरन, माउण्ट पोपा, अरारान, एलबुर्ज, ऐटना, विसूवियस, स्ट्रॉम्बोली आदि इस मेखला के मुख्य ज्वालामुखी हैं।

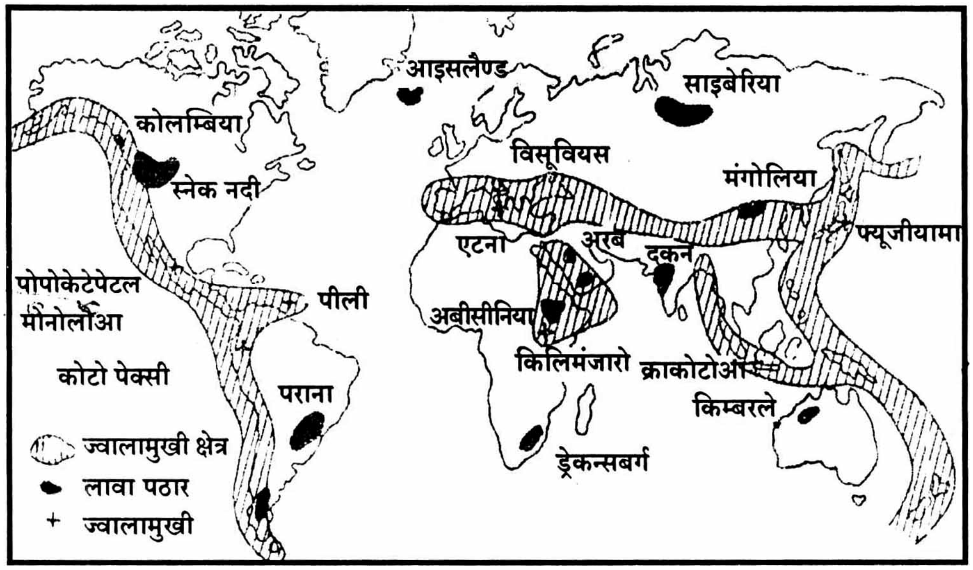

चित्र - 3. 19 : ज्वालामुखी के क्षेत्र

(iii) मध्य अटलाण्टिक मेखला - यह मेखला अटलाण्टिक महासागर के मध्य में S आकृति की समुद्रवर्ती कटक के सहारे-सहारे फैली हुई है। हैक्ला, कटला, एसेन्शियन, सेंट हैलेना इस मेखला के प्रमुख ज्वालामुखी हैं।

(iv) पूर्वी अफ्रीकी मेखला - यह मेखला मुख्यत: पूर्वी अफीका की दरार घाटी के क्षेत्र में फैली हुई है। इसका विस्तार उत्तर में इजराइल से दक्षिण में लाल सागर व पूर्वी अफ्रीका की दरार घाटी क्षेत्र में होते हुए मैडागास्कर तक है। तिबेस्ती, किलीमंजारो आदि ज्वालामुखी इसी मेखला में स्थित है।

(v) अन्य ज्वालामुखी - इनमें प्रशान्त महासागर के हवाईद्वीप व हिन्द महासागर के मॉरीशस, कमेरो, रीयूनियन आदि द्वीपों पर स्थित ज्वालामुखी सम्मिलित हैं।

बोध प्रश्न - 3

1. विसुवियस ज्वालामुखी किस प्रकार का ज्वालामुखी है?
   (अ) सक्रिय (ब) प्रसुप्त
   (स) शान्त (द) इनमें से कोई नहीं ( )
2. विश्व के दो तिहाई से अधिक ज्वालामुखी पाए जाते हैं -
   (अ) मध्य अटलांटिक कटक मेखला में
   (ब) पूर्वी अफ्रीकी मेखला में
   (स) परिप्रशान्त महासागरीय मेखला में
   (द) मध्य महाद्वीपीय मेखला में ( )
3. लावा पठार / लावा मैदान का निर्माण होता है -
   (अ) हवाई तुल्य ज्वालामुखी से

(ब) केन्द्रीय उद्गार वाले ज्वालामुखी से
(स) वल्कैनो तुल्य ज्वालामुखी से
(द) दरारी उद्भेदन वाले ज्वालामुखी से ( )

4. स्ट्रॉम्बोली ज्वालामुखी स्थित है -
(अ) इटली में (ब) सिसली में
(स) लिपारी द्वीप पर (द) क्राकाटोआ द्वीप पर ( )

5. भयंकर आवाज के साथ विस्फोट (लावा उद्गार) होता है -
(अ) हवाई तुल्य ज्वालामुखी में
(ब) पीलियन तुल्य ज्वालामुखी में
(स) दरारी उद्भेदन वाले ज्वालामुखी में
(द) वल्कैनो तुल्य ज्वालामुखी में ( )

3.5 भूकम्प

भूकम्प का अर्थ एवं परिभाषा

भूकम्प का तात्पर्य धरातलीय कम्पन से है जिससे भू-पटल पर विनाशकारी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ए.एन. स्ट्रैलर के अनुसार भूकम्प भूपटल की कम्पन या लहर है जो धरातल के नीचे या उपर शैलों के लचीलेपन या गुरूत्वाकर्षण की स्थिति में क्षणिक विक्षोभ द्वारा उत्पन्न होती है। डॉ. मॉंकहाउस के अनुसार "भूपटल की शैलों में संचलन या समायोजन की क्रिया द्वारा संचार को भूकम्प कहते हैं।"

सैल्सिबरी के अनुसार जिस प्रकार सागर में पत्थर फेंकने से उसके चारों ओर जल में लहरें उठती हैं। इसी प्रकार भूगर्भक शैलों में विक्षोभ के स्रोत से चारों दिशाओं में तरंगों का सक्रमण होता है जिसे भूकम्प कहते हैं।

3.5.1 भूकम्प के कारण (Causes of Earthqukes)

भूकम्प का मूल कारण धरातल पर संतुलन में अव्यवस्था का उत्पन्न होना है फिर भी कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारणों का यहां उल्लेख किया जाना समुचित होगा-

1. **ज्वालामुखी क्रिया (Volcanic activity) -** भूगर्भ में लावा, शिलाखण्ड एवं गैसों के प्रबल वेग से बाहर निकलने के कारण निकटवर्ती क्षेत्र में कम्पन उत्पन्न होता है। ज्वालामुखी क्षेत्रों में मैग्मा के बाहर निकलने के मार्ग में यदि कठोर शैलों का अवरोध आ जाये तो उसके दबाव में भूकम्प उत्पन्न होते हैं। ज्वालामुखी क्षेत्रों में भूकम्प बहुधा आया करते हैं। जापान में ऐसे भूकम्पों की बारम्बारता अधिक है।
2. **भूसन्तुलन समायोजन (Isostatic Adjustment) -** भूपटल पर विभिन्न भू आकार पाए जाते हैं। कहीं ऊँची पर्वत आकारों के बीच संतुलन बना रहना आवश्यक है। अपरदन चक्र के कारण इन भूआकारों के बीच असंतुलन बढ़ता रहता है। उच्च पर्वतीय क्षेत्रों से

अपरदनकारी शक्तियों करोड़ों टन शिलाखण्ड व शिलाचूर्ण बहाकर सागरों में जमा करते रहते हैं। इससे सागर तली पर निक्षिप्त पदार्थ के भार से निरंतर दबाव बढ़ता जाता है। दबाव के कारण सागर तली से नीचे की ओर तरंगें उत्पन्न होती हैं। भूसन्तुलन स्थापित करने हेतु ये तरंगें उच्च क्षेत्रों को ऊपर की ओर धकेलती है। इस प्रक्रिया में भूकम्प की उत्पत्ति होती है।

3. **भ्रंशन (Faulting) -** भ्रंशन क्रिया के कारण उत्पन्न भूकम्पों को विवर्तनिक भूकम्प कहते हैं। उदाहरणार्थ 1906 में सैन फ्रान्सिसको में आये भूकम्प के समय 800 किलोमीटर लम्बी भ्रंक्ष पड़ गई थी। इसे सैन एण्ड्रियास भ्रंश कहते हैं। सन् 1992 में उत्तरकांशी में आया भूकम्प भी भ्रंशज भूकम्प था। ये विवर्तनिक भूकम्प दृष्टि से दुर्बल क्षेत्रों मे गिने जाते हैं।

4. **प्रत्यास्थ प्रतिक्षेप सिद्धान्त (Elastic Rebound theory) -** यह सिद्धांत अमेरिकी भूगर्भशास्त्री रीड (Reid) ने प्रतिपादित किया। इसके अनुसार भू-गर्भिक शैलें प्रन्यास्थ होती है अर्थात् रबड़ की भांति लचीली होने के कारण उनमें घटने बढ़ने का गुण होता है। तनाव पड़ने पर शैलें अपने लचीलेपन की सीमा तक उसे सहन करती रहती है। लचीलेपन की सीमा से अधिक तनाव पड़ने पर शैलों मे दरार पड़ जाती है। दरार के दोनों ओर के शिलाखण्ड विपरीत दिशा में हटते हैं। इससे शैलों मे तनाव समाप्त हो जाता है और चट्टान के दोनों खण्ड पुन: अपने पूर्व स्थान को प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रकार से उत्पन्न गति भूकम्प की प्रक्रिया द्वारा घटित होते हैं।

5. **पृथ्वी का संकुचन (Contraction of the earth) -** पृथ्वी धीरे-धीरे शीतल हुई है। पृथ्वी के शीतल होकर सिकुड़ने से इसकी परतों में अव्यवस्था एवं स्तर भ्रंश होता है जिससे भूकम्प की उत्पत्ति होती है।

6. **गैसों का फैलाव (Expansion of Gases) -** कुछ भूगर्भशास्त्रियों का मानना है कि जलाशयों के अंदर पड़ी दरारों से जल प्रविष्ट होकर भूगर्भ में पहुंचता रहता है। अधिक ताप के कारण मैण्टल में जल वाष्प तथा गैस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है, तब ये ऊपर आने का प्रयास करती हैं। इससे भूपटल में नीचे से धक्के लगते हैं जिससे भूपटल पर कम्पन होने लगता है जिसे भूकम्प कहा जाता है।

3.5.2 भूकम्प का वर्गीकरण

भूकम्प के स्वभाव तथा उत्पत्ति के कारणों की भिन्नता के कारण भूकम्पों में भिन्नता उत्पन्न होती है। इन आधारों पर इन्हें निम्नांकित रूपों में विभाजित किया जाता है -

भूकम्प

1. उत्पत्ति के कारणों के आधार पर	**अप्राकृतिक मानवकृत भूकम्प**	3. भूकम्पों की गहराई के आधार पर
प्राकृतिक भूकम्प	2. स्थिति के आधार पर	(i) साधारण भूकम्प
(i) ज्वालामुखी भूकम्प	(i) स्थलीय भूकम्प	(ii) मध्यवर्ती भूकम्प
(ii) भ्रंशमूलक भूकम्प	(ii) समुद्रीकम्प	(iii) अत्यधिक गहराई वाले भूकम्प
(iii) संतुलनमूलक भूकम्प		

(iv) प्लूटोनिक भूकम्प		

1. भूकम्पों की उत्पत्ति के कारणों के आधार पर

प्राकृतिक भूकम्प (Natural Earthquake)

तब भूकम्प का उद्भव पृथ्वी की बाह्य क शक्तियों द्वारा होता है तो उसे प्राकृतिक भूकम्प कहते हैं। इन्हें चार उपविभागों में बांटा जा सकता है।

(i) **ज्वालामुखीय भूकम्प (Volcanic Earthquake) :** ज्वालामुखी उदगार के समय ज्वालामुखी क्षेत्रों में अनुभव किए जाते हैं। इस प्रकार के भूकम्पों की तीव्रता ज्वालामुखी के उदगार क तीव्रता पर निर्भर करती है। 1883 में क्राकटोआ का ज्वालामुखी भूकम्प बड़ा भयानक था। इस प्रकार के भूकम्प स्थल पर सागर दोनों पर ही अनुभव किए जाते हैं।

(ii) **भ्रंशमूलक भूकम्प (Tectonie Earthquake) :** चट्टानों में तनाव और दबाव के कारण भ्रंश उत्पन्न होते है भ्रंश क्रिया तीव्र होने पर भूकम्प अनुभव किए जाते हैं। जिन्हें भ्रंशमूलक भूकम्प कहते हैं। ये भूकम्प बहुत तीव्र एंव प्रलयंकारी होते हैं। कैलोफोर्निया भूकम्प (1872) जापान सगामी खाड़ी भूकम्प (1923) ऐसे मुख्य भूकम्प हैं।

(iii) **भूसन्तुलनमूलक भूकम्प (Isostatic Earthquake) -** पृथ्वी में थोड़ा-सा असंतुलन उत्पन्न होने पर इनकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के भूकम्प नवीन मोड़दार पर्वतीय क्षेत्रों में आते है। हिन्दूकोह भूकम्प (1949) इस वर्ग के भूकम्प का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

(iv) **प्लूटोनिक भूकम्प (Plutonic Earthquake) -** धरातल से अत्यधिक गहराई पर उत्पन्न होने वाले भूकम्प को प्लूटोनिक भूकम्प कहते हैं। इनका उद्गम क्षेत्र 250 से 700 किलोमीटर की गहराई पर होता है। इस प्रकार के भूकम्प बहुत कम आते हैं।

2. स्थिति के आधार पर भूकम्प

स्थिति के आधार पर भूकम्प के दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(i) **स्थलीय भूकम्प (Earthquake) -** जब भूकम्प स्थल भाग पर आता है तो उसे स्थलीय भूकम्प कहते हैं। इनकी संख्या सागरीय भूकम्प से बहुत अधिक होती है।

(ii) **सागरीय कम्प (Sea quake) -** समुद्र के गर्भ में आने वाले भूकम्प को सागरीय भूकम्प कहते है। इनसे अत्यधिक विनाशकारी सागरीय लहरें उत्पन्न होती है। जिन्हें सुनामी लहर (Tsunamis) कहते हैं। इसमें तटवर्ती भागों पर पर्याप्त क्षति होती है।

3. भूकम्पों की गहराई के आधार पर

ओल्डहम ने स्पष्ट किया कि पृथ्वी के 90 प्रतिशत से अधिक भूकम्प 8 किलोमीटर से भी कम गहराई से उत्पन्न होते हैं। 8 प्रतिशत भूकम्प 8 से 30 किलोमीटर की गहराई से उत्पन्न होते हैं। जबकि शेष 2 प्रतिशत भूकम्प 30 किलोमीटर से अधिक गहराई से उत्पन्न होत हैं। गुटेन बर्ग एवं रिटर ने गहराई में उत्पन्न होने वाले भूकम्पों की वैज्ञानिक व्याख्या की है तथा गहराई के आधार पर भूकम्पों को तीन भागों में विभक्त किया है।

(i) **साधारण भूकम्प -** जब भूकम्प मूल की स्थिति धरातल से 50 किलोमीटर की गहराई तक होती है तो उसे साधारण भूकम्प कहते हैं।

(ii) **मध्यवर्ती भूकम्प -** जब भूकम्प मूल की स्थिति 50 से 250 किलोमीटर गहराई तक होती है तो उसे मध्यवर्ती भूकम्प कहते है।

(iii) **अत्यधिक गहराई वाले भूकम्प (Deep focus earthquake) :** जब भूकम्प मूल 250 से 750 किलोमीटर की गहराई पर स्थित हो तो उसे गहराई वाले भूकम्प कहते हैं।

3.5.3 भूकम्पीय तरंगें (Earthquake waves)

जिस प्रकार किसी जलाशय में पत्थर फैंकने पर उस स्थान (केन्द्र) के चारों और मार्ग में लहरे फैलती है, वैसे ही भूकम्प उत्पत्ति केन्द्र से भी भूकम्पीय तरंगें वृताकार मार्ग में प्रसरण करती है।

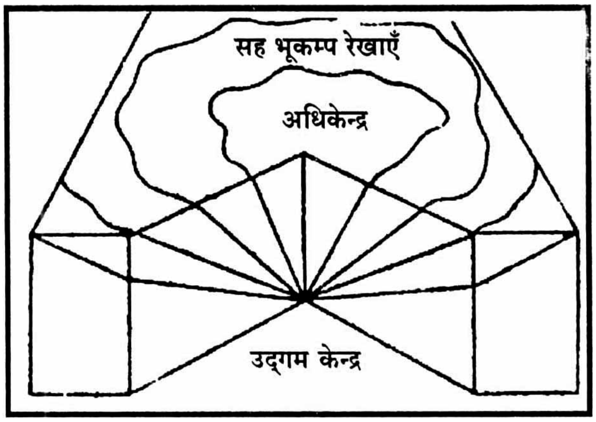

चित्र-3.20 : उद्गम केन्द्र व अधिकेन्द्र

भूकम्प की उत्पत्ति धरातल के नीचे कुछ गहराई में होती है। यह गहराई कुछ किलोमीटर से लेकर कई सौ किलोमीटर तक हो सकती है। भूगर्भ में जिस स्थान पर भूकम्प की उत्पत्ति होती है, उसे भूकम्प मूल (Focus) कहते हैं। भूकम्प मूल के ठीक उपर धरातल पर स्थित बिन्दु अधिकेन्द्र (Epicenter) कहलाता है। भूकम्प मूल से चलने वाली तरंगों का प्रभाव सर्वप्रथम अधिकेन्द्र पर अनुभव किया जाता है। यही पर कम्पन सर्वाधिक होने के कारण जन धन की सर्वाधिक हानि होती है। इसके चारों ओर भूकम्प का प्रभाव कम हो जाता है। धरातल पर समान कम्पन वाले स्थानों को जोड़ने वाली रेखाएं सम कम्पन रेखाएं (Isoseismic lines) कहलाती हैं। समान कम्पन वाले स्थानों पर आघात रेखाऐं भी कहलाती हैं।

भूकम्प तरंगें (Earthquakes Waves) भूकम्प मूल पर आघात उत्पन्न होने से शैलों में कम्पन होता है जिससे तरंगें उत्पन्न होती है । भूकम्पीय तरंगें प्रसार रीति व गति के अनुसार तीन प्रकार की होती है- (i) P तरंगें (ii) S तरंगें,एवं (iii) L तरंगें।

(i) **P-तरंगें (P-Waves) -** ये प्राथमिक तरंगें (Primary WaveS) होती हैं। इन्हें समानान्तर तरंगें भी कहते हैं । भूकम्प मूल से प्रारंभ होकर ये तरंगें धरातल पर सबसे पहले पहुंचती हैं। इनकी औसत गति 8 - 10 किलोमीटर प्रति सैकण्ड होती है। ये तरंगें शैलों में सम्पीडन के कारण उत्पन्न होती है। इन तरंगों के शैलों से होकर गुजरने पर शैल कणों में कम्पन होता है। यह कम्पन तरंगों की गति की दिशा में आगे पीछे होता है। आगे पीछे गति होने के कारण इन्हें धक्का की तरंगें या क्षितिजीय तरंगें

(Longitudinal Waves) भी कहा जाता है। क्षितिजीय गति होने के कारण इन तरंगों द्वारा अधिक हानि नहीं होता।

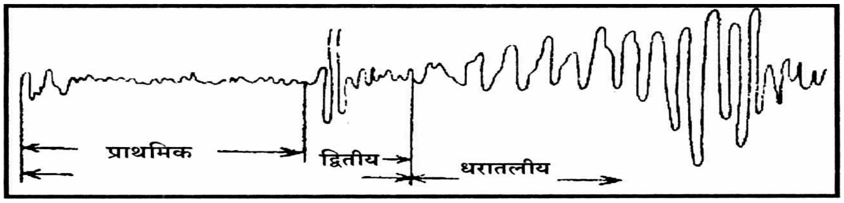

चित्र - 3.21 : भूकम्पीय तरंगें

(ii) S तरंगें (S Waves) - ये समानान्तर तरंगों के साथ समकोण बनाती हुई आगे बढ़ती है। इन्हें द्वितीयक (Secondary Waves) तरंगों की उत्पत्ति शैलों पर पड़ने वाले अपरूपण बल (Shear Force) के कारण होती है। इनकी गति 5 किलोमीटर प्रति सैकण्ड होती है। P तरंगों की अपेक्षा इनकी गति कम होने के कारण ये धरातल पर देर से पहुंचती है। इन तरंगों के शैलों से होकर गुजरने पर शैल कणों में तरंगों की दिशा से लम्बवत राति होती है अत: इन तरंगों से भूकम्प क्षेत्र में अधिक क्षति होती है।

(iii) L तरंगें (L Waves) **-** ये बाह्य तरंगें हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति अधिकेन्द्र से होती है तथा ये केवल धरातल पर अधिकेन्द्र से चारों ओर फैलती हैं। अत: इन्हें धरातल तरंगें भी कहते हैं ये तरंगें तीन किलोमीटर प्रति सैकण्ड की गति से चलती हैं। इन तरंगों से भूकम्प क्षेत्र में सर्वाधिक क्षति होती है।

भूकम्प विज्ञान के बारे में जानकारी

भूकम्प माप (Measurement of earthquake) भूकम्प की तीव्रता मापने के अनेक पैमाने हैं। उनमें प्रमुख मरकेली (Mercali) तथा रिक्टर मापक (Richter Scale) मुख्य है। इनमें रिक्टर पैमाना सबसे अधिक मान्य है। विश्व के सर्वाधिक तीव्र भूकम्प (सैन्फ्रन्सिसको 1906) का परिमाण रिक्टर मापक पर 8.3 था। पीरु के विनाशकारी भूकम्प (1970) का परिमाण केवल 7.8 था।

भूकम्प लेखी (Seismograph) - यह एक यंत्र होता है जिससे हम PS और L तरंगों के पहुंचने का समय नापते हैं। अधिकेन्द्र पर तीनों तरंगों का अभिलेखन (Rcording) एक साथ होता है। अत: इनमें भिन्नता मालूम नहीं होती। किन्तु इनकी गति भिन्न-भिन्न होने के कारण अधिकेन्द्र से दूर इनके पहुंचने का समय अलग-अलग होता है जिससे इन्हें स्पष्ट किया जा सकता है।

अधिकेन्द्र ज्ञात करने की विधि - P व S तरंगों के पहुंचने के समय के अन्तरों को तीन विभिन्न स्थानों पर ज्ञात करते हैं। इन समयान्तरों द्वारा अधिकेन्द्र की दूरी ज्ञात करते हैं। प्रत्येक केन्द्र की दूरी को त्रिज्या (Radius) मानकर तीनों बिन्दुओं पर तीन वृत खींचते हैं। जिस बिन्दु पर यह वृत परस्पर मिलते हैं वह बिन्दु अधिकेन्द्र (Epicenter) होता है।

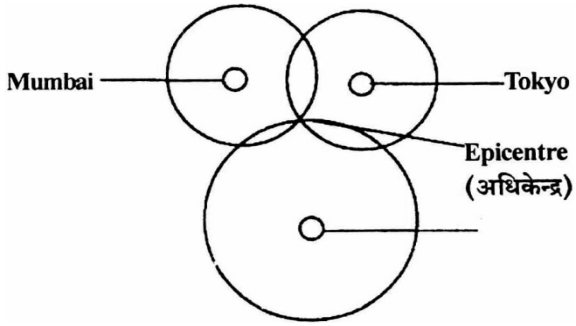

चित्र - 3.22 : अधिकेन्द्र ज्ञात करने की विधि

3.5.4 भूकम्प का विश्व वितरण (World distribution of Earthqukes)

यद्यपि हल्का धरातलीय कम्पन कई क्षेत्रों में होता रहता है, परन्तु भूकम्पीय अधिकेन्द्र विशिष्ट क्षेत्रों में ही केन्द्रित है। ये क्षेत्र अधिकांशत: ज्वालामुखी प्रवत्त हैं अथवा भूगर्भिक दृष्टि से दुर्बल क्षेत्र है। यदि विश्व के मानचित्र को देखें तो पायेंगे कि प्रमुख भूकम्प प्रवृत क्षेत्रों को निम्न मेखलाओं में बांटा जाता है -

1. परि-प्रशान्त महासागरीय मेखला (Cricum Pacific Belt)
2. मध्य महाद्वीपीय मेखला (Mid Continental Belt)
3. मध्य अटलाण्टिक कटक मेखला (Mid Allantic Ridge Belt)
4. पूर्वी अफ्रीकी मेखला (East African Belt)
5. अन्य (Others)

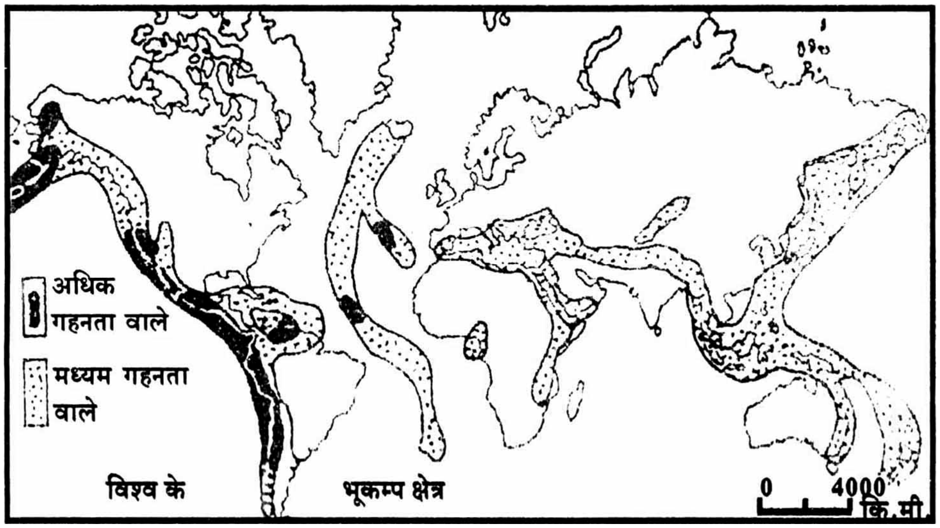

चित्र - 3.23 : भूकम्प का विश्व वितरण

1. **परि-प्रशान्त महासागरीय मेखला -** इस मेखला का विस्तार क्यूराइल द्वीपों व कमचटका प्रायद्वीप से दक्षिण में पूर्वी एशिया, पूर्वी द्वीप व न्यूजीलैण्ड होते हुए अन्टार्कटिका महाद्वीप तक है। उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों में होते हुए एल्यूशियन द्वीप समूह तक है। इस प्रकार यह मेखला प्रशान्त महासागर के चारों ओर तटीय क्षेत्र में विस्तृत है। विश्व के दो- तिहाई से अधिक भूकम्प इसी मेखला में आते हैं।

2. **मध्य महाद्वीपीय मेखला -** इस मेखला का विस्तार हिमालय -अल्पाइन पर्वतीय क्रम के क्षेत्र में है। यह मेखला दक्षिण पूर्व में इण्डोनेशिया से लेकर मलेशिया, हिन्दचीन, म्यानमार, हिमालय एवं आल्प्स पर्वतीय क्षेत्र में होते हुए भूमध्य सागर के पश्चिमी सिरे तक फैली है। इस मेखला में भूकम्पों की औसत तीव्रता परिप्रशान्त महासागरीय मेखला की तुलना में कम रहती है।

3. **मध्य अटलाण्टिक कटक मेखला -** अटलाण्टिक महासागर के मध्य में S आकार की समुद्रवर्ती कटक पाई जाती है। इसके कुछ उच्च भाग द्वीपों के रूप में विद्यमान हैं। यह मेखला उत्तर में आइसलैण्ड से लेकर मध्य अटलाण्टिक कटक के सहारे सहारे दक्षिण में अण्टार्कटिका महाद्वीप तक विस्तृत है।

4. **पूर्वी अफ्रीका मेखला -** इस मेखला का विस्तार पूर्वी अफ्रीका की दरार घाटी के क्षेत्र में है जो उत्तर में इजराइल से दक्षिण में लाल सागर व पूर्वी अफ्रीका की दरार घाटी में विस्तृत है। यहां अधिकांशत: विवर्तनिक भूकम्प आते हैं।

5. **अन्य क्षेत्र -** उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त हिन्द महासागर व प्रशान्त महासागर के कुछ द्वीप भी भूकम्प प्रवृत्त क्षेत्रों में सम्मिलित किए जाते हैं।

3.5.5 भूकम्प का मानव जीवन पर प्रभाव

भूकम्प एक आकस्मिक घटना है जिससे जन, धन की अपार हानि होती है। मानव जीवन एवं उसके सांस्कृतिक पर्यावरण को इस आकस्मिक घटना से क्षति पहुंचती है। भूकम्प के विनाशकारी प्रभाव अधिक और रचनात्मक कम है।

विनाशकारी प्रभाव

(1) **प्राकृतिक प्रकोप -** भूकम्प के कारण भूस्खलन होता है। बड़े-बड़े शिलाखण्ड टूटकर कई बार नदियों के मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं जिससे बाढ़े आती हैं। 1950 में असम में आए भूकम्प के कारण बह्मपुत्र व उसकी सहायक नदी दिहांग का मार्ग अवरूद्ध हो गया हैं। तटीय क्षेत्रों में भूकम्प आने पर ऊँची-ऊँची तरंगों चलने लगती हैं जिससे जहाजों, तटीय बस्तियों आदि को अपार क्षति होती है।

(2) **जैविक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण को क्षति -** भूकम्पों का सबसे पहला शिकार मकान होते हैं, कारखाने, रेलमार्ग, सड़कें, बांध, नहरें आदि टूट जाते हैं। कई लोग व जीव जन्तु मर जाते हैं। अक्टूबर 1993 के लातूर (Latur) नामक स्थान पर आये भूकम्प में सरकारी आकड़ों के अनुसार तीस हजार से अधिक व्यक्ति मारे गए। अनेक मकान ध्वस्त हो गए एवं भूमि में दरारें पड़ गई।

रचनात्मक प्रभाव

भूकम्प के रचनात्मक प्रभाव बहुत कम हैं। इनसे अचानक कई बार सोते फूट पड़ते हैं। भूमि के उत्क्षेण से सागरीय द्वीप उभरते हैं। हिन्दमहासागर में मालद्वीप तथा लक्षद्वीप सागर तल से उत्थित प्रवाल द्वीप हैं। धरातल पर दरारें खुलने पर नीचे के खनिज धरातल पर आ जाते हैं। नदी मार्गो के अवरूद्ध होने से झीलों की उत्पत्ति होती है।

भूकम्प एक आकस्मिक आन्तरिक प्रक्रिया है जिसका शाब्दिक अर्थ भूपटल का कांपना है। ए. एन. स्ट्रैलर के अनुसर भूकम्प भूपटल की कम्पन या लहर है जो धरातल के नीचे या ऊपर शैलों के अल्पकालिक विक्षोभ द्वारा उत्पन्न करती है।

पृथ्वी पर भूकम्प आना सामान्य प्राकृतिक घटना है। इसमें भूमिगत उद्देश्य के कारण किसी एक या अधिक केन्द्रों से ऊपर नीचे दाऐं-बाऐं प्रसारक तरंगें उठती हैं जो अपनी गति या उद्वेग की प्रबलता के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों तक पहुंचती हैं। महासागरीय भागों में इन तरंगों के पहुंच जाने पर ऊंची ज्वारीय लहरें उठती हैं, जिन्हें सुनामी (Tsunami) कहते हैं।

बोध प्रश्न - 3

1. विसुवियस ज्वालामुखी किस प्रकार का ज्वालामुखी है?
   (अ) सक्रिय (ब) प्रसुप्त
   स) शान्त (द) इनमें से कोई नहीं ( )
2. विश्व के दो तिहाई से अधिक ज्वालामुखी पाए जाते हैं -
   (अ) मध्य अटलांटिक कटक मेखला में
   (ब) पूर्वी अफ्रीकी मेखला में
   (स) परिप्रशान्त महासागरीय मेखला में
   (द) मध्य महाद्वीपीय मेखला में ( )
3. लावा पठार / लावा मैदान का निर्माण होता है -
   (अ) हवाई तुल्य ज्वालामुखी से
   (ब) केन्द्रीय उद्गार वाले ज्वालामुखी से
   (स) वल्कैनो तुल्य ज्वालामुखी से
   (द) दरारी उद्भेदन वाले ज्वालामुखी से ( )
4. स्ट्रॉम्बोली ज्वालामुखी स्थित है -
   (अ) इटली में (ब) सिसली में
   (स) लिपारी द्वीप पर (द) क्राकाटोआ द्वीप पर ( )
5. भयंकर आवाज के साथ विस्फोट (लावा उद्गार) होता है -
   (अ) हवाई तुल्य ज्वालामुखी में
   (ब) पीलियन तुल्य ज्वालामुखी में
   (स) दरारी उद्भेदन वाले ज्वालामुखी में
   (द) वल्कैनो तुल्य ज्वालामुखी में ( )

3.6 सारांश

वास्तव में, सन्तुलन व्यवस्था एक प्रकार की दशा है। अपरदन तथा निक्षेप, हिम -चादर, भूगर्भिक हलचलों आदि के कारण सन्तुलन की स्थिति अव्यवस्थित हो जाती है। गुरुत्वाकर्षण की शक्तियाँ

इस असन्तुलन को दूर करने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर देती है। इससे भूपटल में सन्तुलन बना रहता है।

परिवर्तन-प्रकृति का नियम है। भूपटल पर परिवर्तन मुख्यत: दो बलों द्वारा होता है। (1) अन्तर्जात बल एवं (2) बहिर्जात बल। अन्तर्जात बल से पृथ्वी में दो तरह के संचलन उत्पन्न होते हैं- (1) क्षैतिज संचलन एवं (2) लम्बवत संचलन। अन्तर्जात बल को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बांट गया है- (1) पटल विरूपण बल तथा (2) आकस्मिक अन्तर्जात बल। पटल विरूपण बल मन्द गति से कार्य करता है परन्तु दीर्घकाल के पश्चात् इनके द्वारा वृहद् स्थलरूपों का निर्माण होता है। क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से पटल विरूपण बल को दो भागों में विभक्त किया गया है-

(1) महाद्वीप निर्माणकारी एवं (2) पर्वत निर्माणकारी बल।

महाद्वीप निर्माणकारी बल मूलत: ऊर्ध्वाधर शक्तियों द्वारा धरातल को प्रभावित करता है। फलत: भूखण्ड ऊपर उठते हैं या नीचे धँसते हैं।

पर्वत निर्माणकारी बल क्षैतिज शक्तियों द्वारा धरातल को प्रभावित करते हैं। क्षैतिज संचलन से तनाव एवं सम्पीडन द्वारा पर्वत निर्माण होता है। पर्वत निर्माण अकस्मात नहीं होता। केवल ज्वालामुखी पर्वत निर्माण ही आकस्मिक घटना है। क्षैतिज संचलन में सम्पीडन द्वारा चट्टानों में वलन एवं तनाव द्वारा धरातल पर भ्रंश उत्पन्न होते हैं।

आकस्मिक अन्तर्जात बलों में ज्वालामुखी एवं भूकम्प को शामिल किया जाता है । ज्वालामुखी उद्गार के फलस्वरूप धरातल पर अकस्मात ही लावा शंकु, लावा गुम्बद लावा निर्मित पर्वतों का निर्माण हो जाता है। जब कभी लावा उद्गार के समय गैसों की मात्रा कम होती है तो दरारी उदभेदन होते हैं जिससे लावा पठार, लावा मैदान का निर्माण होता है। इसी तरह भूकम्प भी आकस्मिक अन्तर्जात बल द्वारा घटित होती जो क्षण भर में ही पृथ्वी तल पर अनेक परिवर्तन ला देते हैं। पृथ्वी तल पर वास्तव में भूकम्प तब महसूस किए जाते हैं जब आकस्मिक विक्षोभ शैलों की प्रतिरोधक क्षमता से अधिक हो जाता है। भूकम्प आने पर इमारतें गिरना, रेल की पटरियों का उखड़ना, सड़क मार्ग का क्षतिग्रस्त होना आदि घटनाओं के साथ-साथ यदि गहरे समुद्री भागों में भूकम्प तरंगें प्रकट होती है तो उनसे सुनामी लहरों का प्राक्य्य होता है जिससे अपार जन-धन की हानि होती है।

3.7 शब्दावली

Crustal Fracture	:	भूपटल विभंरा
Endogenetic force	:	अन्तर्जात बल
Epeirogenetic force	:	महाद्वीप निर्माणकारी बल
Exogenetic force	:	बहिर्जात बल
Isostatic earthquake	:	सन्तुलन मूलक भूकम्प
Law of Floatation	:	तैराव सिद्धान्त
Level of compensation	:	क्षतिपूर्ति तल
Sudden endogenetic force	:	आकस्मिक अन्तर्जात बल

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.	Monkhouse, F.J.	:	Principles of Physics Geography,University of London Press. 1962
2.	Wooldridge, S.W. and	:	An outline of Geomorphology,Oxford,1959 Morgan, R.S.
3.	Lobeck,A.K.	:	Geomorphology. McGraw- Hill book Co., New York, 1939
4.	Longwell and Flint	:	An Introduction to Physical Geology, JhonWiley & Sons, Inc., New York, 1961
5.	Holmes,A	:	Principles of Physical Geology, Thomas Nelson & Sons, New York, 1949
6.	Tikha,R.N.	:	Physical Geography, Kedar Nath Ram Nath, 132, R.T. College Road, Meerut, 2006

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. डटन, 1889 में 2. कल्याण व कल्याणपुर 3. 2.75 4. 140 किलोमीटर 5. 5.236

बोध प्रश्न-2

1. (स) 2. (अ) 3. (ब) 4. (ब) 5. (अ)

बोध प्रश्न-3

1. (ब) 2. (स) 3. (स) 4. (स) 5. (ब)

बोध प्रश्न-4

1. (अ) 2. (अ) 3. (स) 4. (अ) 5. (स)

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भूसन्तुलन से क्या अभिप्राय है? उससे सम्बन्धित सभी विचारों की सचित्र विस्तृत व्याख्या कीजिये।
2. भूसन्तुलन की परिभाषा देते हुए एयरी तथा प्राट के मतों की तुलनात्मक व्याख्या कीजिये।
3. पटल विरूपण से क्या तात्पर्य है? इससे संबंधित भूआकारों का विवरण दीजिये।
4. पटल विरूपण की परिभाषा देते हुए विभिन्न प्रकार के भ्रंशों का वर्णन कीजिए।
5. वलन किसे कहते हैं? विभिन्न प्रकार के वलनों को सचित्र समझाइये।
6. ज्वालामुखी क्रिया से आप क्या समझते हैं? इनकी उत्पत्ति के कारण बताते हुए ज्वालामुखी का वर्गीकरण कीजिये।

7. ज्वालामुखी द्वारा निर्मित बाह्य एवं आभ्यान्तरित स्थलाकृतियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
8. ज्वालामुखी क्रिया को समझाते हुए, ज्वालामुखी का विश्व वितरण सचित्र बताइये एवं इनका मानव जीवन पर प्रभाव बताइये।
9. भूकम्प की उत्पत्ति के कारण बताते हुए विभिन्न भूकम्पीय तरंगों की व्याख्या कीजिये।
10. भूकम्पों का वर्गीकरण करते हुए भूकम्प विज्ञान को समझाइये।
11. भूकम्प का विश्व वितरण बताते हुए इसका मानव जीवन पर प्रभाव स्पष्ट कीजिये।

इकाई-4 : चट्टानें एवं अनाच्छादन (Rocks and Denudation)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 चट्टानें
4.2.1 चट्टानों का वर्गीकरण
4.2.2 आग्नेय चट्टानें
4.2.3 अवसादी चट्टानें
4.2.4 कायान्तरित चट्टानें
4.3 अनाच्छादन
4.3.1 अपक्षय के प्रकार एवं प्रभाव
4.3.2 अपक्षय को नियंत्रित करने वाले कारक
4.3.3 भौतिक अपक्षय
4.3.4 रासायनिक अपक्षय
4.3.5 प्राणिवर्गीय अपक्षय
4.4 अपरदन
4.2.1 अपरदन चक्र की संकल्पना
4.2.2 अपरदन चक्र का मूल्यांकन
4.5 बहते हुए जल के कार्य
4.5.1 अपरदनात्मक स्थलरूप
4.5.2 निक्षेपात्मक स्थलरूप
4.6 हिमनद
4.6.1 हिमनद के प्रकार
4.6.2 हिमनद के कार्य
4.6.3 अपरदनात्मक स्थलरूप
4.6.4 निक्षेपात्मक स्थलरूप
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस अध्याय में भौतिक भूगोल के दो महत्वपूर्ण पक्षों-चट्टानों एव अनाच्छादन पर चर्चा की गयी है। इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- चट्टानों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा चट्टानों का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाता है तथा वे कितने प्रकार की होती हैं एवं उनकी विशेषताएँ क्या होती हैं इस बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे।
- अनाच्छादन एवं इसके अन्तर्गत सम्मिलित प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे।
- भौतिक भूगोल में अपक्षय किसे कहते हैं, अपक्षय कितने प्रकार का होता है तथा इसका प्रभाव क्या होता है आदि के बारे में जानकारी हो जायेगी।
- डेविस द्वारा दी गयी अपरदन चक्र की संकल्पना तथा इसकी विभिन्न अवस्थाओं की जानकारी हो जायेगी।
- अपरदन के कारकों के अन्तर्गत बहते जल तथा हिमनद के कार्यो के बारे में आपको जानकारी हो जायेगी।

4.1 प्रस्तावना

पृथ्वी सतह पर अनेक प्रकार के चट्टानीय कण एवं टुकड़े पाये जाते हैं, जो साधारण व्यक्ति के लिए महत्वहीन हैं लेकिन भौतिक भूगोल के विद्यार्थियों को चट्टानों की उत्पत्ति, भिन्नता एवं प्रकारों के बारे में पूरी जानकारी रहती है। विभिन्न स्थलाकृतियों के निर्माण में अनेक शक्तियाँ एवं प्रक्रम सक्रिय रहते हैं तथा स्थलाकृतियों का स्वरूप निर्धारित करने में चट्टानों की संरचना का किसी भी क्षेत्र की स्थलाकृतियों के विकास पर मुख्य रूप से नियंत्रण रहता है, क्योंकि स्थलाकृतियों का विकास आधारभूत चट्टानों के ऊपर ही होता है। विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ भिन्न संरचना वाले क्षेत्रों में विकसित होती है।

अपक्षय, अपरदन एवं निक्षेपण आदि द्वारा निर्मित स्थलरूपों की आकारिकी, विकास एवं उत्पत्ति का गहन अध्ययन बहिगति प्रक्रमों के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के स्थलरूपों का निर्माण, उन्हें प्रभावित एवं परिमार्जित करने वाले प्रक्रमों को सम्मिलित रूप से अनाच्छादनात्मक प्रक्रम (Denudational Processes) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से अपक्षय एवं अपरदन प्रक्रियाओं को रखा जाता है। सर्वप्रथम डेविस ने विभिन्न स्थलरूपों के निर्माण तथा विकास से सम्बन्धित अपना सिद्धान्त अपरदन चक्र के नाम से प्रतिपादित किया, जिसमें उन्होंने स्थलरूपों की तीन अवस्थाओं के बारे में विस्तार से जानकारी प्रदान की। स्थलरूपों की चक्रीय संकल्पना का प्रतिपादन करते हुए डेविस ने बताया कि विभिन्न प्रक्रमों द्वारा एक निश्चित क्रम में स्थलरूपों का चक्रीय रूप में विकास होता है तथा वह तीन अवस्थाओं युवा, प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था से होकर गुजरता है।

इस अध्याय को मुख्य रूप से छः खण्डों में विभाजित कर उससे सम्बन्धित चर्चा की गयी है। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत चट्टानों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी हैं, जिसमें इनका वर्गीकरण भी प्रस्तुत कर विभिन्न प्रकार की चट्टानों के बारे में जानकारी दी गयी है। द्वितीय खण्ड में अनाच्छादन चट्टानें एवं अनाच्छादन के बारे में चर्चा की गयी है।

तृतीय खण्ड में अपक्षय के बारे में जानकारी प्रदान करते हुए अपक्षय के प्रकार एवं उसके प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। चौथे खण्ड अपरदन प्रक्रिया के सन्दर्भ में चर्चा की गयी है। पांचवे खण्ड में डेविस द्वारा दिये गये अपरदन चक्र की संकल्पना पर प्रकाश डाला गया है। अन्तिम खण्ड में अपरदन के अभिकर्ता अथवा कारक के रूप में बहते हुए जल के कार्यों एवं हिमनद के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की गयी है।

4.2 चट्टानें

पृथ्वी के बाहरी मण्डल को क्रस्ट, भूपर्पटी अथवा पपड़ी के नाम से जाना जाता है, जो कि ठोस अवस्था में है। स्थल को प्रदर्शित करने वाले क्रस्ट का ऊपर उठा भाग स्थल मण्डल (Lithosphere) तथा जल प्लावित भाग जल-मण्डल (Hydrosphere) कहलाता है। साधारण रूप में स्थलमण्डल से आशय "चट्टान मण्डल" से ही है, क्योंकि 'लिथोस' (Lithos) का शाब्दिक अर्थ ही चट्टान होता है। पपड़ी की रचना अनेक तत्वों से मिलकर हुई है। किन्तु चार तत्व ऐसे हैं जो उसके 98 प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं, जबकि शेष दो प्रतिशत भाग का निर्माण लगभग 90 तत्वों से हुआ है। पपड़ी के पदार्थों को चट्टान कहा जाता है। साधारण अर्थों में चट्टान से आशय किसी कठोर अथवा दृढ़ भाग से लिया जाता है, किन्तु भूगोल एवं भूगर्भशास्त्र में चट्टान शब्द का उपयोग व्यापक अर्थो में किया जाता है। इसके अन्तर्गत पपड़ी के कठोर अथवा कोमल सभी पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि पपड़ी की चट्टानें लगभग 2000 खनिजों से बनी हैं, किन्तु इनमें केवल छः खनिजों-फेल्सपार, क्वार्ट्ज, पायरोप्सीन, एम्फीबोल्स, अभ्रक या ओलिवीन का भाग अधिक रहता है। भूपर्पटी की चट्टानों के गुण, संगठन, आकार आदि भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे कुछ चट्टानें कठोर एवं संगठित होती हैं, तो कुछ चट्टानें कोमल ढीली तथा असंगठित होती हैं, जबकि कुछ चट्टानें आकार में बड़ी, कुछ छोटी तो कुछ एक समान तो कुछ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। पृथ्वी सतह पर पाये जाने वाले विभिन्न स्थलरूपों का स्वरूप और आकार मुख्य रूप से चट्टानों की बनावट पर आधारित होता है। अत: कहा जा सकता है कि चट्टानों के स्वभाव एवं बदलते रूपों के कारण ही विभिन्न स्थलरूपों का निर्माण एवं विकास, समयानुसार उनके आकार एवं रूप में परिवर्तन, स्थान-स्थान पर उनमें भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। लोबेक के अनुसार चट्टान अपने पर्यावरण का प्रतिफल होती हैं। जब पर्यावरण विशेष परिवर्तित होता है, तो चट्टान भी परिवर्तित हो जाती है। (A rock should be conceived as a product of its environment. When environment is changed the rock changes.- Lobeck)

4.2.1 चट्टानों का वर्गीकरण (Classification of Rocks)

सामान्य रूप में चट्टानों की रचना पपड़ी के ऊपर अथवा भूपृष्ठ के नीचे इन दो रूपों में होती है। वैसे चट्टानें अनेक प्रकार की होती हैं किन्तु अध्ययन के लिए संरचना के आधार पर चट्टानों के निम्न प्रमुख प्रकार हैं -

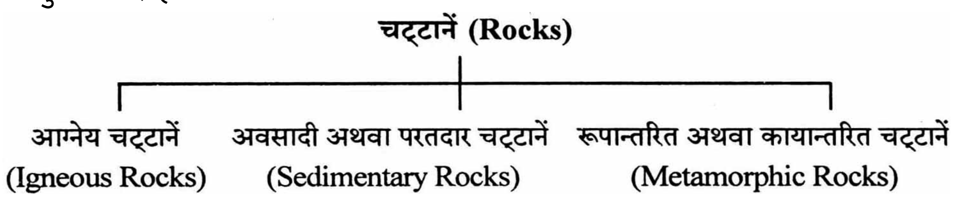

ऐसा माना जाता है कि अवसादी तथा रूपान्तरित चट्टानों की उत्पत्ति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आग्नेय चट्टानों से ही होती है। सबसे पहले आग्नेय चट्टानों का निर्माण पृथ्वी के तरल अवस्था से ठोस होने के परिणामस्वरूप हुआ। तत्पश्चात् अपरदन के विभिन्न कारकों द्वारा आग्नेय चट्टानों के अपरदित पदार्थों के दूसरे स्थान पर जमा करने के परिणामस्वरूप संगठित होने के कारण अवसादी चट्टानों का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् बाद में ताप एवं गति व परिवर्तनों के कारण आग्नेय एवं अवसादी चट्टानों का रूप परिवर्तित होने से तीसरे प्रकार की रूपान्तरित अथवा कायान्तरित चट्टानों का निर्माण हुआ।

4.2.2 आग्नेय चट्टानें (Igneous Rocks)

लेटिन भाषा के 'Iginis' शब्द से आग्नेय लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'अग्नि' है। इन चट्टानों का निर्माण गर्म एवं द्रव पदार्थों के ठण्डा होकर जमने के कारण हुआ है। इन चट्टानों में रवे (Crystals) भी होते हैं, इसीलिए इन्हें रवेदार चट्टानें (Crystalline Rocks) भी कहा जाता है।
आग्नेय चट्टानों को भूपृष्ठ की प्राचीनतम चट्टानें माना जाता है किन्तु इनका निर्माण वर्तमान में भी हो रहा है, ज्वालामुखी क्रिया द्वारा इन शैलों का निर्माण भूपटल पर सदैव होता रहता है। इन चट्टानों के अपक्षय क्रिया एवं रूपान्तरण के कारण ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अन्य चट्टानों का निर्माण होता है। अत: आग्नेय चट्टानों को मौलिक अथवा प्राथमिक चट्टानें (Primary rocks) भी कहा जाता है। आग्नेय चट्टानों के प्रमुख उदाहरण ग्रेनाइट, साइनाइट, मोनोजाइट, डायोराइट, रायोलाइट, गेब्रो, बैसाल्ट, पोरफिरी, ऑब्सीडियन आदि हैं। ये चट्टानें परतहीन, रंध्रहीन एवं सघन होती हैं। इस प्रकार चट्टानों की कठोरता के कारण इन पर अपरदन बहुत धीमी गति से होता है।

4.2.3 अवसादी अथवा परतदार चट्टानें (Sedimentary Rocks)

ऐसा माना जाता है कि धरातल का लगभग 75 प्रतिशत भाग अवसादी चट्टानों से बना हुआ है। शेष 25 प्रतिशत भाग पर आग्नेय एवं कायान्तरित चट्टानें पायी जाती हैं। अवसादी चट्टानें भूपटल के केवल ऊपरी भाग पर देखने को मिलती हैं। अवसादी चट्टानों का निर्माण शैल पदार्थों के इकट्ठा होकर परतों के रूप में जमा होने से होता है। वॉर्सेस्टर के अनुसार परतदार चट्टानों का निर्माण पुरानी चट्टानों एवं खनिजों के अवसादों के परत के रूप में संगठित होने से हुआ है। (Sedimentary rocks,as the sediment implies, are composed largely of fragments of older rocks and minerals that have been more or less thoroughly consolidated and arranged in layers or strata - Worcester).
अपक्षय एवं अपरदन की क्रियाओं द्वारा चट्टानों के विघटन, अपघटन तथा टूट-फूट होने से अवसादी चट्टानों का निर्माण होता है। अवसादी चट्टानों के उदाहरण के रूप में बालुका पत्थर (Sandstone), काँग्लोमरेट (Conglomerate), चीका (Clay), सिल्ट (Silt), चूना पत्थर (Limestone), शैल लवण (Rock salt), लोयस, ट्रैवरटाइन, डोलोमाइट, जिप्सम, चॉक, पीट, लिग्नाइट, कोयला, आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। ये चट्टानें स्तरों के रूप में (Stratified) पायी जाती हैं तथा कई प्रकार के असंगठित छोटे-बड़े कणों से निर्मित होने के कारण अधिकांशत सरन्ध्री (Porous) होती है। इन चट्टानों में रवे (crystals) तथा जीवावशेष (Fossils) पाये जाते है, तथा कोमल होने के कारण इनमें अपक्षय तथा अपरदन सरलतापूर्वक होता है। इन

चट्टानों पर अन्तर्जात बलों (तनाव एवं सम्पीडन) का प्रभाव अधिक पड़ने से वलन सरलतापूर्वक पड़ जाते हैं। इन चट्टानों का निर्माण जल, हिम एवं पवन जैसे अपरदन के साधनों द्वारा मुख्य रूप से होता है।

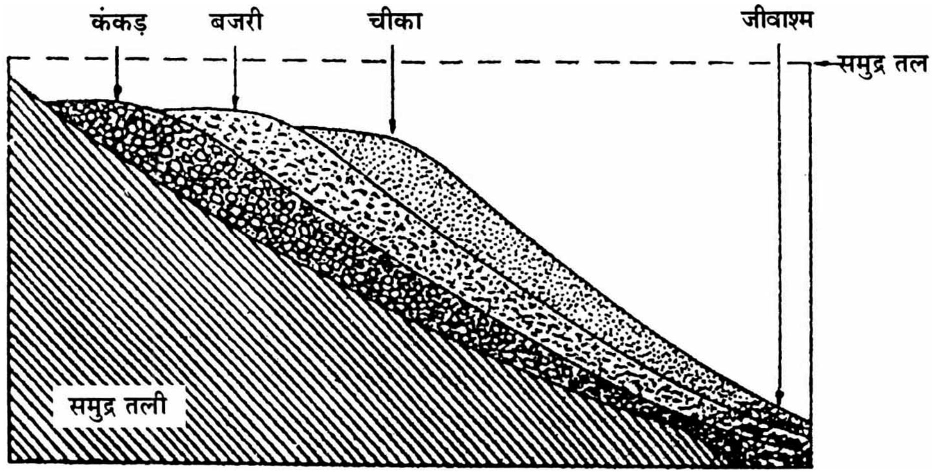

चित्र - 4.1 अवसादी चट्टानों की उत्पत्ति

4.2.4 रूपान्तरित अथवा कायान्तरित चट्टानें (Metamorphic Rcoks)

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि अन्य चट्टानों के रूप परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही रूपान्तरित चट्टानों का निर्माण होता है। आग्नेय तथा परतदार चट्टानों के रूप परिवर्तन के कारण ही इनका निर्माण होता है। इस प्रकार का रूप परिवर्तन मुख्यत: ताप के अधिक होने अथवा भूगर्भिक हलचलों के कारण भार एवं दबाव अधिक होने से होता है। चट्टानों का रूपान्तरण दो रूपों-भौतिक रूपान्तरण अथवा रासायनिक रूपान्तरण के रूप में होता है, किन्तु कभी-कभी ये दोनों रूपान्तरण साथ-साथ भी होते हैं। ये चट्टानें परतदार एवं आग्नेय चट्टानों से अधिक कठोर तथा संगठित होती हैं। इनकी बनावट भी पैतृक चट्टानों से भिन्न होती है तथा इनके रंग, रूप, गन्ध रण चमक आदि में भी भिन्नता दिखायी देती है। रूपान्तरित शैलों के प्रमुख उदाहरण नीस (Gneiss), फाइलाइट (Phyllite), शिष्ट (Schist), क्वार्टजाइट (Quartzite), संगमरमर (Marble), स्लेट आदि हैं। इन शैलों में बहुमूल्य खनिज एवं धातुएँ पायी जाती हैं तथा रूपान्तरण की प्रक्रिया के द्वारा विभिन्न एवं विशिष्ट भूआकृतियों का निर्माण होता है।

बोध प्रश्न- 2

1. पृथ्वी के बाहरी मण्डल को जिस नाम से जाना जाता है, वह है -
   (अ) क्रोड (ब) मैण्टल
   (स) क्रस्ट (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
2. चट्टानें मुख्य रूप से कितने प्रकार की होती हैं -
   (अ) दो (ब) तीन
   (स) चार (द) पाँच
3. आग्नेय चट्टानों का निर्माण किस प्रकार हुआ है?
   ………………………………………………………………………………………………..

……………………………………………………………………………………..

4. रूपान्तरित शैलों के कोई तीन उदाहरण दीजिये।

……………………………………………………………………………………..

……………………………………………………………………………………..

4.3 अनाच्छादन (Denudation)

पृथ्वी के आन्तरिक भाग में अन्तर्जात बलों के सक्रिय होने से भूपटल पर अनेक विषमताएँ उत्पन्न होती हैं, जबकि भूपटल पर बाह्य शक्तियाँ इन विषमताओं को दूर करने का प्रयास लगातार करती रहती है। इस प्रकार के बलों को विनाशकारी बल कहा जाता है, क्योंकि ये धरातल पर स्थित स्थलरूपों को घिसकर तथा काट-छाँट कर सपाट बनाने का लगातार कार्य करते हैं। इसके प्रमुख अभिकर्ता या कारक (Agent) बहता हुआ जल, पवन, हिम आदि हैं। गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) तथा पृथ्वी का घूर्णन (earth's rotation) भी इसमें अपना योगदान देते हैं। किसी न किसी गतिशील साधन का योग बाहिर्जात बलों को सक्रिय बनाने में अवश्य होता है। इन गतिशील साधनों में बहता जल, पवन, हिम आदि धरातल पर काँट-छाँट करने का कार्य करते हैं इस प्रकार चट्टानों को काटने-छाँटने, उन्हें घिसने तथा क्षीण बनाने की क्रियाओं को ही अनाच्छादन (denudation) कहा जाता है।

मॉंकहाउस (Monkhose) के अनुसार अनाच्छादन के अन्तर्गत उन सभी साधनों के कार्यों को सम्मिलित किया जाता है, जिनके द्वारा भूपटल के किसी भाग का पर्याप्त विनाश, अपव्यय तथा हानि होती है। इस उपलब्ध पदार्थ का अन्यत्र निक्षेप होता है तथा इनसे अवसादी शैलों का निर्माण होता है। भूपटल पर अनाच्छादन में दो प्रक्रम या शक्तियाँ स्थैतिक एवं गतिशील प्रमुख हैं। चट्टानों के अपने ही स्थान पर टूटने-फूटने की प्रक्रिया को स्थैतिक प्रक्रिया (Static Process) कहा जाता है, जिसके कारण चट्टानों का चूर्ण बन जाता है। वे ढीली हो जाती हैं, जिसे अपक्षय (Weathering) की क्रिया के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार चट्टानों को बहता जल, पवन, हिमानी, लहरें आदि साधन तोड़ते-फोड़ते हैं तथा इस अपक्षयित पदार्थ को उठाकर अन्यत्र निक्षेपित कर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत वृहत् क्षरण (Mass movement) तथा अपरदन (Erosion) को सम्मिलित किया जाता है। अत: अनाच्छादन मुख्य रूप से अपक्षय एवं अपरदन क्रियाओं का सम्मिलित प्रभाव कहलाता है। परिवहन एवं निक्षेप भी अपरदन से ही सम्बद्ध है।

4.3.1 अपक्षय के प्रकार एवं प्रभाव (Weathering-Types and Effects)

स्पार्क्स के अनुसार "पृथ्वी सतह पर प्राकृतिक साधनों द्वारा चट्टानों के अपने ही स्थान पर यांत्रिक विधि द्वारा टूटने अथवा रासायनिक अपघटन की प्रक्रिया अपक्षय कहलाती है।" (Weathering may be defined as the mechanical fracturing or chemical decomposition of rocks, in situ by natural at the surface of the earth''-Sparks)

अपक्षय के अन्तर्गत चट्टानें अपने ही स्थान पर टूट-फूट कर अथवा ढीली पड़कर बिखर जाती हैं,) जिसमें दो प्रकार के प्रक्रम मुख्य रूप से सक्रिय रहते है। प्रथम, भौतिक प्रक्रम (Physicsal Processes) के अन्तर्गत चट्टानों का मौलिक रूप से विघटन (Disintegration) तथा अपदलन

(Exfoliation) मुख्य रूप से तापीय परिवर्तन, तुषार क्रिया, जीव-जन्तु एवं वनस्पति आदि द्वारा होता है, किन्तु उसमें कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं होता है। द्वितीय रासायनिक प्रक्रम (Chemical processes) होते हैं, जिसके अन्तर्गत जल, ऑक्सीजन, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड आदि द्वारा चट्टानों में रासायनिक परिवर्तन होते हैं तथा शैल कण ढीले हो जाते हैं। इसे अपघटन (decomposition) की क्रिया कहा जाता है।

4.3.2 अपक्षय को नियंत्रित करने वाले कारक (Factors controlling weathering)

अपक्षय को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, जिनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है -

1. **चट्टानों का संगठन एवं उसकी संरचना (Rock composition and structure) :** अपक्षय की क्रिया उन शैलों पर अधिक प्रभावकारी होती है जो कोमल, सरन्ध्र (Porous), सन्धियुक्त, असंगठित एवं ढीली होती है।
2. **वनस्पति की मात्रा (Quantity of Vegetation) :** कम वनस्पति वाले क्षेत्रों में ताप की अधिकता के कारण शैलों में अपक्षय अधिक होता है जबकि अधिक वनस्पति वाले स्थानों पर सूर्य की किरणें कम मात्रा में पहुँचने के कारण चट्टानों में विखण्डन का कार्य कम हो पाता है।
3. **भूमि का ढाल (Slope of Land) :** कम ढाल वाले स्थानों पर अपक्षय क्रिया कम होती है, क्योंकि चट्टानों का संगठन शीघ्रता से कमजोर नहीं हो पाता है जबकि खड़ा ढाल होने पर ढीली शैलों का स्थानान्तरण सरलता से होने के कारण अपक्षय अधिक होता है।
4. **जलवायु दशाएँ (Climatic conditions) :** अपक्षय की तीव्रता के लिए जलवायु की भिन्नता उत्तरदायी है। रासायनिक अपक्षय की अधिक सक्रियता उष्णार्द्र जलवायु में देखने को मिलती है, जबकि दूसरी ओर यांत्रिक अपक्षय की क्रिया उष्ण एवं शुष्क जलवायु दशाओं में तापान्तर की अधिकता के कारण शैलों के प्रसार एवं संकुचन के कारण देखने को मिलती है।

अपक्षय (Weathering)

भौतिक अथवा यांत्रिक अपक्षय		रासायनिक अपक्षय		प्राणिवर्गीय अपक्षय	
कारक	प्रकार	कारक	प्रकार	कारक	प्रकार
सूर्यताप	ताप परिवर्तन द्वारा पिण्ड विघटन (Block disintegration due to temperature change)	ऑक्सीजन	ऑक्सीकरण (Oxidation)	वनस्पति	वनस्पति अपक्षय (Weathering due tc vegetation)
जल	ताप के कारण शैलों का कणदार विघटन (Granular disintegration of rocks due temperature)	कार्बन-डाइ-ऑक्सीजन	कार्बोनेशन (Carbonation)	जीव-जन्तु	जैविक अपक्षय (Weathering due to vegetation)
वायु	वर्षा, जल तथा ताप के कारण शैलों का भंजन (Shattering due to rain water and temperature)	हाइड्रोजन	सिलिका पृथक्कीकरण (Desilication)	मानव	मानव द्वारा अपक्षय (Weathering due to man)
दाब	तुषार द्वारा पिण्ड विघटन (Block disintegration due to frost)		जल योजन (Hydration)		
	ताप एवं वायु द्वारा अपशल्कन या अपपत्रण (Exfoliation due to				

4.3.3 अथवा यांत्रिक अपक्षय (Physical or Mechanical Weathering)

भौतिक अपक्षय में शैलों का विघटन सूर्यातप, तुषार, जल, वायु, दबाव एवं गुरुत्व के कारण होता है। ताप के बढ़ने पर शैल के कण फैलते हैं तथा ताप के घटने पर संकुचित होते हैं। इस प्रकार शैलों में तनाव के कारण बार-बार प्रसार एवं संकुचन से सन्धियाँ विकसित होती हैं। इन संधियों के सहारे बड़ी चट्टानें पिण्डों के रूप में टूटती हैं जिसे पिण्ड विघटन कहा जाता है। इसी प्रकार ऊष्ण मरूस्थलों में दैनिक तापान्तरों की अधिकता के कारण एक ही शैल के भीतर तनाव उत्पन्न होता है तथा शैल का छोटे टुकड़ों में विघटन होने लगता है, जिसे शैलों का कणदार विघटन कहा जाता है।

मरुस्थलों में आकस्मिक वर्षा के कारण गर्म शैलों पर पानी के छीटें पड़ते हैं, तो वे चटकने लगती हैं तथा छोटे कणों में टूटकर बिखरने लगती हैं, जिसे शैलों का भंजन कहा जाता है। उच्च अक्षांशीय एवं उच्च पर्वतीय शीत प्रधान हिमाच्छादित प्रदेशों में जब जल बार-बार जमता तथा पिघलता है तो तुषार की क्रिया से बड़े-बड़े शिला खण्डों का विघटन हो जाता है। जिसे तुषार द्वारा पिण्ड विघटन कहा जाता है। शुष्क, अर्द्धशुष्क तथा मानसूनी मरुस्थलों में वायु एवं ताप के कारण रवेदार शैलों में क्षैतिज परतें ढीली होकर प्याज के छिलकों की भाँति उखड़ती रहती है। तापान्तरों के कारण शैलों में प्रसार एवं संकुचन की क्रिया से ऊपरी परत ढीली हो जाती है, जिसे अपपत्रण कहा जाता है। दाब मुक्ति के कारण भी शैलों में दरारें तथा चटकने पड़ जाती हैं एवं शैलें विघटित हो जाती हैं।

4.3.4 रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering)

वायुमण्डल के निचले स्तर में ऑक्सीजन, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैसों तथा जलवाष्प की प्रधानता होती है। इनके सहयोग से जल सक्रिय घोलक साधन हो जाता है तथा चट्टानों में रासायनिक परिवर्तन होने प्रारम्भ हो जाते हैं। पृथ्वी की सतह के ऊपर तथा नीचे दोनों क्षेत्रों में रासायनिक अपक्षय का कार्य होता रहता है। शैलों के खनिजों को ऑक्सीजन जल से मिलकर ऑक्साइड में परिवर्तित करती है जिससे शैलों में अपघटन होता है। इसे ऑक्सीकरण कहा जाता है। इसी प्रकार जल के साथ मिश्रित होकर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस कार्बोनेट उत्पन्न करती है जिससे शैलों के घुलनशील तत्व अलग हो जाते हैं। इसे कार्बोनेशन क्रिया कहा जाता है। जल द्वारा रासायनिक विधि से सिलिका युक्त शैलों में सिलिका तत्व के पृथक होने की क्रिया को सिलिका पृथक्कीकरण कहा जाता है। जल से जब चट्टानों का सम्पर्क होता है तो चट्टानों के खनिजों में हाइड्रेशन की क्रिया होती है। क्योंकि चट्टानों के जल सोख लेने से उनके आयतन में वृद्धि हो जाती है।

4.3.5 प्राणिवर्गीय अपक्षय (Biological Weathering)

चट्टानों के विघटन में वनस्पतियों तथा जीव-जन्तु सहयोग प्रदान करते हैं। वनस्पतियों द्वारा भौतिक तथा रासायनिक दोनों प्रकार से अपक्षय होता है। प्रथम वनस्पति की जड़ें भूमि में गहराई में प्रविष्ट होकर फैलती हैं तथा शैलों की दरारों में विस्तार करती हैं जिससे शैलों में तनाव तथा विघटन होता है। द्वितीय वनस्पतियों की जड़ों में जीवाणु होते हैं जो शैल खनिजों को ढीला करते हैं। वनस्पतियों के सड़ने से भी रासायनिक अपक्षय होता है।

इसी प्रकार अनेक प्रकार के कीड़े-मकोड़े एवं बिलकारी जीव पृथ्वी की ऊपरी परत में रहते हैं, जो भूमि को खोदकर उसे ढीला व पोला बना देते हैं, जिसके कारण जैविक अपक्षय की क्रिया होती है। शैलों के अपक्षय में मनुष्य भी अपनी विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के द्वारा सहयोग देता है। वनों के काटने से मानव द्वारा वानस्पतिक अपक्षय किया जाता है। सुरंगे, खदानें तथा सड़क खोदकर भी मानव अपक्षय में अपना योगदान देता है।

बोध प्रश्न 2-

1. अनाच्छादन की क्रिया में सहयोग देते हैं-
   (अ) अन्तर्जात बल (ब) बाहिर्जात बल
   (स) परिर्वतनकारी बल (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
2. अपक्षय मुख्य रूप से कितने प्रकार का होता है-
   (अ) दो (ब) तीन
   (स) चार (द) पाँच
3. अपक्षय को प्रभावित करने वाले कोई दो कारक लिखिये।
   ……………………………………………………………………………………
   ……………………………………………………………………………………
4. प्राणिवर्गीय अपक्षय के तीन कारक अथवा अभिकर्ता लिखिये।
   ……………………………………………………………………………………
   ……………………………………………………………………………………

4.4 अपरदन (Erosion)

धरातल के ऊपर बहता हुआ जल, भूमिगत जल, पवन, हिमानियाँ, लहरें आदि गतिशील साधन ऊपरी परतों पर काट-छाँट और घर्षण करते हैं एवं उन पदार्थों का परिवहन भी करते हैं। इस क्रिया को अपरदन (Erosion) कहा जाता है।

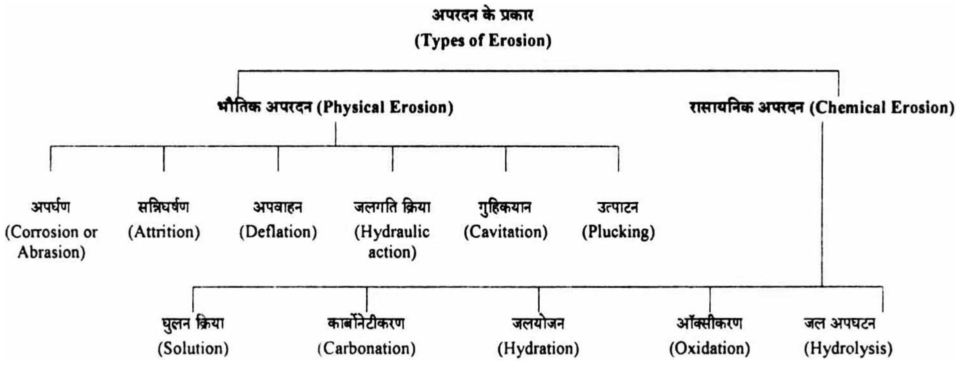

1. **भौतिक अपरदन (Physical Erosion) :** विभिन्न आकार के शिलाखण्ड, गोलाष्म, कंकड़, पत्थर, बालू कण गतिशील साधनों के साथ धरातलीय शैलों को काटते, घिसते और छाँटते हैं, इस क्रिया को अपघर्षण कहा जाता है। जब ये पदार्थ आपस में टकराकर

टूटते हैं तो उसे सन्निघर्षण की क्रिया कहा जाता है। इसी प्रकार पवन के कार्य के अन्तर्गत शुष्क अथवा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में ढीले व बारीक कण पवन द्वारा उड़ाकर दूर ले जाने की क्रिया को अपवाहन की क्रिया कहा जाता है। गुहिकायन क्रिया में जल की तीव्र तरंगों से भंवर उत्पन्न होने पर नदी तल में विशाल छिद्र बन जाते हैं, जैसे जल गर्तिकाऐं (Pot holes) एवं अवनमित कुण्ड (Plunge pools) आदि। उत्पाटन क्रिया के अन्तर्गत अपने मार्ग में पड़ने वाले शिलाखण्डों को हिमानी उखाड़ कर अपने साथ प्रवाहित करके ले जाती है।

2. **रासायनिक अपरदन (Chemical Erosion) :** जल के कारण रासायनिक क्रिया होती है जिसमें पाँच प्रक्रम घुलन क्रिया, कार्बोनेटीकरण, जलयोजन, ऑक्सीकरण, जल अपघटन आदि सम्मिलित हैं। इन क्रियाओं से शैल खण्ड ढीले पड़ जाते हैं तथा शैलों के मूलभूत खनिजों में परिवर्तन होता है।

4.4.1 अपरदन चक्र की संकल्पना (Concept of Cycle of Erosion)

अमेरिकी भूगोलविद् विलियम मौरिस डेविस ने 1899 में 'सामान्य अपरदन चक्र' (Concept of Normal Cycle of Erosion) की संकल्पना प्रस्तुत की। उनका विचार था कि स्थलाकृतियों का निर्माण व विकास पृथ्वी की सतह पर ऐतिहासिक क्रम में होता है। पृथ्वी की सतह पर नवीन स्थलाकृतियों का निर्माण अन्तर्जात बलों द्वारा होता है, जबकि उन्हें समाप्त करने का कार्य बाह्य अपरदनकारी शक्तियाँ करती हैं। इन दोनों में अनवरत संघर्ष चलता रहता है एवं अन्ततः ऊँचा उठा हुआ भाग अपक्षय एवं अपरदन की शक्तियों द्वारा समतल प्राय मैदान के रूप में परिवर्तित हो जाता है। डेविस ने इसे ही सामान्य अपरदन चक्र अथवा भौगोलिक चक्र (Geographical Cycle) कहा। अपरदन के कारकों में नदियाँ सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं, क्योंकि इनके द्वारा ही धरातल पर अपरदन का अधिकांश कार्य सम्पन्न होता है।

डेविस के अनुसार 'अपरदन चक्र अथवा भौगोलिक चक्र समय की वह अवधि है, जिसके द्वारा एक उत्थित स्थलरूप अपरदन के प्रक्रम द्वारा अपरदित होकर एक निम्न आकृतिविहीन समप्राय मैदान में प्रवर्तित होता है।" (The cycle of erosion or geographical cycle is a period of time during which an uplifted landmass undergoes its transformation by the process of landsculpture ending into a low featureless plain or peneplain). डेविस ने अपनी संकल्पना में स्थल रूपों को संरचना, प्रक्रम तथा अवस्था का सम्मिलित परिणाम बताया है। (Landscape is a function of structure, process and stage). डेविस ने अपनी संकल्पना में बताया कि जब कोई भू-भाग समुद्रतल से ऊपर उठता है तो अपरदन के कारक अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं, तथा यहीं से अपरदन चक्र का प्रारम्भ हो जाता है। डेविस का विचार था कि जब तक स्थल रूप का उत्थान समाप्त नहीं हो जाता है तब तक अपरदन प्रारम्भ नहीं होता। उनका विचार था कि उत्थान की अवधि छोटी होती है और अपरदन का क्रम लम्बे समय तक चलाता है। उनका यह भी विचार था कि स्थल रूपों के विकास में संरचना, प्रक्रम एवं अवस्था तीनों आवश्यक तथ्य हैं जिनके विश्लेषण द्वारा ही स्थलरूपों के विकास को समझा जा सकता है। बहते जल का कार्य सबसे अधिक व्यापक होने के कारण इसके अपरदन चक्र ही सामान्य अपरदन चक्र (Normal cycle of erosion) कहलाता है। डेविस का विचार था कि कोई

भी स्थलखण्ड निरन्तर अपरदन के द्वारा क्रमशः अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। धरातल की समस्त विषमताएँ अन्त में समाप्त हो जाती है तथा उत्थित भूखण्ड एक समप्राय मैदान के रूप में बदल जाता है। उन्होंने अपरदन चक्र की तीन अवस्थायें बतायी हैं जिसको उन्होंने ग्राफ द्वारा भी प्रदर्शित किया है।

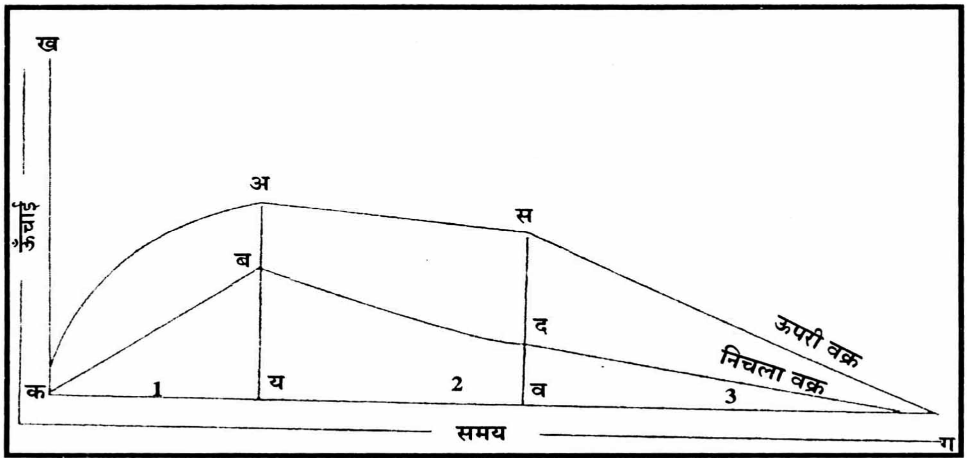

चित्र - 4.2 : डेविस का अपरदन चक्र

1. **प्रथम अथवा युवावस्था (Youth Stage) :** इस अवस्था में स्थल खण्ड का उत्थान समाप्त होने के पश्चात् अपरदन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस अवस्था में पहाड़ियों के शिखर अपरदन द्वारा अधिक प्रभावित नहीं होते, इसलिए सरितायें छोटी तथा दूर-दूर होती हैं। ऊँचे स्थित भागों पर न्यूनतम विषमताएँ देखने को मिलती हैं तथा नदी तली में कटाव द्वारा अपनी घाटी को गहरा करती है। नदियों का प्रवाह इस अवस्था में तीव्र ढाल के कारण तेज होता है। नदियों की घाटियाँ अत्यन्त संकरी तथा गहरी होती हैं। 'V' आकार की घाटियों का निर्माण होता है तथा जल प्रपात बनते हैं।
2. **द्वितीय अथवा प्रौढ़ावस्था (Mature Stage) :** ऊँचे उठे भाग अपरदन की अधिकता के कारण क्रमशः नीचे होते जाते हैं। नदी इस अवस्था में अपनी घाटी की चौड़ाई बढ़ती जाती है। किनारों पर अपरदन प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ होते ही प्रारम्भ हो जाता है। नदी घाटी का गहरा होना कम हो जाता है। इस अवस्था में मन्द ढाल होने के कारण नदियों की परिवहन क्षमता भी कम हो जाती है।
3. **तृतीय अथवा वृद्धावस्था (Old age) :** इस अवस्था में भूपटल की विषमताएँ कम हो जाती हैं। तथा जहाँ-तहाँ केवल कठोर शैलों के टीले अवशिष्ट के रूप में दिखायी देते हैं। पूरा क्षेत्र समप्रदाय मैदान के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था में घाटियाँ अधिक चौड़ी और उथली हो जाती हैं। नदियाँ निम्न उच्चावच के कारण विसर्पो (Meanders) एवं विस्तृत बाढ़ के मैदानों का निर्माण करती हैं।

4.4.2 अपरदन चक्र का मूल्यांकन

डेविड की संकल्पना को प्रारम्भिक वर्षों में व्यापक ख्याति मिली। किन्तु वर्तमान में इस संकल्पना के आलोचकों की संख्या में वृद्धि हुई हैं। डेविस द्वारा स्थलरूप के उत्थान को कम समय में

त्वरित रूप से होना बताया है जबकि यह प्रक्रिया मन्द सतत् है। इसी प्रकार डेविस का विचार था उत्थान के पश्चात् ही अपरदन प्रारम्भ होता है जो कि भ्रामक है क्योंकि उत्थान की समाप्ति की अपरदन प्रतीक्षा नही करता। डेविस की संकल्पना को जर्मन विद्वान पैंक ने गलत, असंगत एवं निरुद्देश्य बताते हुए इस संदर्भ में अपने भिन्न विचार प्रस्तुत किये। उनका विचार था कि उत्थान एवं अपरदन साथ-साथ सक्रिय होते हैं, तथा अपरदन चक्र को उन्होंने 'उत्थान एवं निम्नीकरण की दर एवं दोनों के आपसी सम्बन्धों की अवस्था का योग' बताया।

बोध प्रश्न-3

1. अपरदन चक्र की संकल्पना दी-
   (अ) हम्बोल्ट ने (ब) रिटर ने
   (स) डेविस ने (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
2. डेविस ने अपरदन चक्र की संकल्पना दी वह वर्ष था-
   (अ)1899 (ब)1999
   (स)1750 (द)1860
3. अपरदन के दो मुख्य प्रकार लिखिये ।
   ....
   ....
4. डेविस के अपरदन चक्र की तीन अवस्थायेँ लिखिये।
   ....
   ....

4.5 बहते हुए जल के कार्य (Working of Running Water)

पृथ्वी की सतह पर समतल स्थापक बलों के अन्तर्गत बहते हुए जल का कार्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। नदी मुख्य रूप से तीन प्रकार के कार्य करती है - अपरदन, परिवहन एव निक्षेपण। नदी की अपरदन क्षमता जलोढ़कों की मात्रा अधिक होने से बढ़ जाती है नदी के अपरदन का कार्य मुख्य रूप से अपघर्षण (Abrasion or Corrasion), सन्निघर्षण (Attrition), जलीय क्रिया (Hydraulic Action), घोलीकरण अथवा सक्षारण (solution or corrosion) आदि क्रियाओं द्वारा होता है। अपरदन को नियंत्रित करने वाले कारकों के अन्तर्गत मुख्य रूप से शैलों की सरंचना (Structure of rocks), जल का आयतन (Volume of water) नदी का वेग (Velocity of river), जलोढ़कों की मात्रा (Load) आदि को रखा जा सकता है।

4.5.1 अपरदनात्मक स्थलरूप (Erosional Landforms)

(i) **गॉर्ज या महाखड्ड (Gorge) :** यह वी आकार की घाटी का ही विशिष्ट रूप है, जिसके पार्श्व तीव्र होते हैं तथा इनकी रचना प्राय: कठोर चट्टानों युक्त क्षेत्रों में होती है। यह अत्यन्त संकड़ी व गहरी घाटी होती है। यू एस. ए. में इसे कैनियन (Canyon) कहा जाता है।

(ii) **V-आकार की घाटी (V-Shaped Valley) :** नदी के अपरदन के कारण वी आकृति की घाटी का निर्माण होता है।

(iii) **क्षिप्रिकाएँ तथा जलप्रपात (Rapids and Waterfalls) :** तली में शैलों की संरचना असमान होने पर नदी का जल जब कहीं मन्द रख कहीं तीव्र गति से बहता है तो क्षिप्रिकाओं की उत्पत्ति होती है। दूसरी ओर नदी का ढाल जब खड़ा होता है तो जल ऊंचाई से गिरता है, जिसके कारण प्रपात उत्पन्न होते हैं।

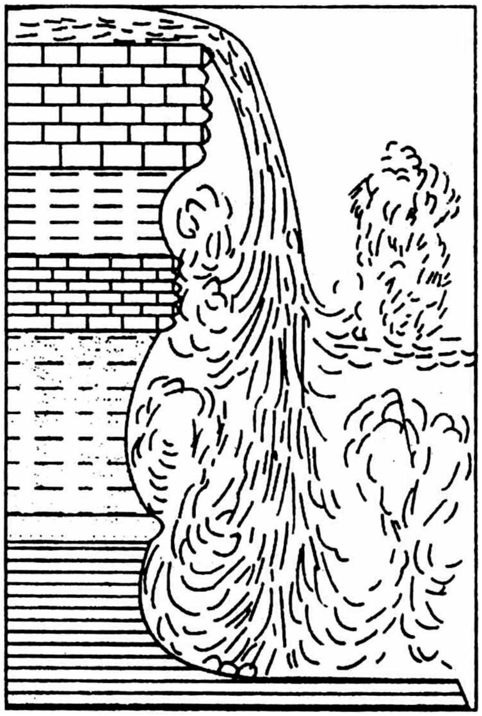

चित्र - 4.3 : जल प्रपात

(iv) **जल गर्तिकाएँ (Pot Holes) :** जब नदी की तली में विभिन्न संरचना वाली कठोर एवं कोमल शैलें पायी जाती हैं तो बड़े शिलाखण्डों तथा विभिन्न आकार की शैलों के घिसटने व लुढ़कने से कोमल शैलों के स्थान पर विभिन्न प्रकार के गड्डों का निर्माण हो जाता है बाद में इन गड्डों के स्थान पर जलोढ़कों की छेदन (drilling) क्रिया द्वारा भंवर उत्पन्न होते हैं जो गर्तों को ओर गहरा कर देते हैं, इन गर्तों को जल गर्तिका कहते हैं ।

(v) **नदी वेदिकाएँ (River Terraces) :** नदी घाटी के क्षेत्र में उत्क्षेपण होने से घाटी का तल ऊपर उठने के कारण वह फिर से गहरी होने लगती है। इस प्रकार पुरानी घाटी के भीतर एक और संकरी घाटी बन जाती है और पुरानी घाटी के पार्श्व सोपान की तरह दिखायी देते हैं। अत ' किसी घाटी में अनेक बार पुनर्यौवन से अनेक सोपानी पार्श्व बन जाते हैं।

(vi) **शैल सोपान (Rocks Benches) :** यद्यपि नदी वेदिकाएँ एवं संरचनात्मक सोपान एक समान दिखायी देते हैं किन्तु इनमें अन्तर यह है कि संरचनात्मक

सोपानों का निर्माण नदी मार्ग में पार्श्वों पर कोमल व कठोर शैलों की क्षैतिज परतें बिछी होने पर होता है, क्योंकि कोमल शैलें शीघ्र अपरदित हो जाती हैं तथा कठोर शैलें उभरी रहती हैं।

(vii) **नदी अपहरण (River Capture) :** इससे आशय एक नदी द्वारा दूसरी नदी के जल का अपहरण करने से है, यह अवस्था प्राय: नदी की युवावस्था में शीर्ष अपरदन (Headward erosion) के कारण होती है।

(viii)नदी विसर्प (River meanders) : 'मियेन्डर' शब्द की उत्पत्ति तुर्की में बहने वाली इस नाम की नदी के कारण हुई है क्योंकि इस नदी का मार्ग सर्पाकार है। प्रौढ़ावस्था में नदी मैदानी भाग में सीधे मार्ग से नहीं बहकर टेढ़े-मेढ़े मार्ग से तथा बल खाती हुई प्रवाहित होती है जिसके कारण नदी मार्ग में अनेक छोटे - बडे मोड़ पड़ जाते हैं। इन्हीं मोड़ों को नदी विसर्पों की संज्ञा दी गयी है।

(ix) समप्राय मैदान (Peneplain) : नदी की अन्तिम अवस्था में समप्राय मैदान का निर्माण तब होता है जब नदी द्वारा क्षैतिज अपरदन करके सतह की असमानताएँ दूर कर दी जाती हैं। यह कार्य क्षैतिज अपरदन तथा निक्षेप दोनों के द्वारा किया जाता है। सामान्यत: प्रतिरोधी शैलों के भाग अवशेष के रूप में यत्र-तत्र ऊँचे उठे रहते हैं, जिन्हें मोनाडनॉक (Monadnocks) कहा जाता है।

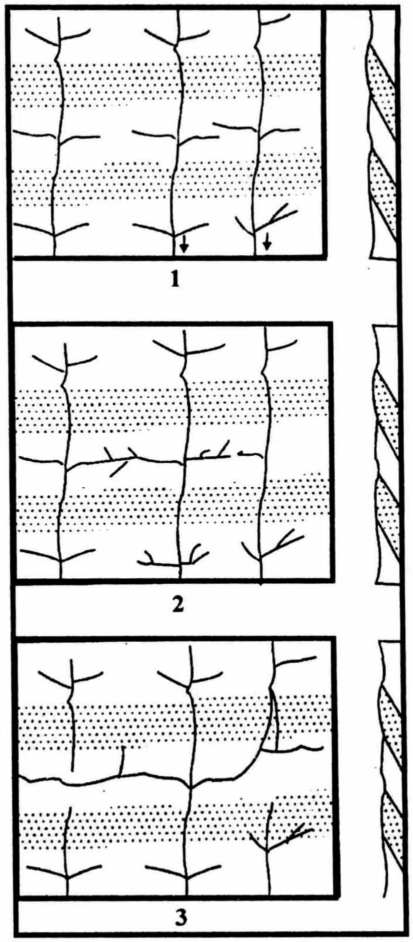

चित्र–4.4 : नदी अपहरण की अवस्थाएँ

4.5.2 निक्षेपात्मक स्थलरूप (Depositional Landforms) '

(i) **जलोढ़ पंख तथा जलोढ़ शंकु (Alluvial fans and alluvial cones) :** पर्वतीय ढाल से जब नदियाँ जलोढ़कों के साथ समतल भाग में प्रवेश करती हैं तो उनका वेग अचानक कम हो जाता है जिससे जलोढ़क पर्वतीय ढाल के आधार के पास अर्द्धवृत्ताकार रूप में निक्षेपित हो जाते हैं, इन्हें जलोढ़ पंख कहते हैं। यदि निक्षेपण शंकु के आकार में होता है तो उसे जलोढ़ शंकु कहते हैं।

(ii) गिरीपदीय जलोढ़ **मैदान (Piedmont alluvial plain) :** कई जलोढ़ पंख परिधि की ओर विस्तार होने पर परस्पर रूप से मिल जाते हैं जो संयुक्त जलोढ़ पंख की रचना करते है।

परिणामस्वरूप एक विस्तृत मैदान की रचना कई विस्तृत पंखों के मिलने से होती है, उसे ही गिरीपदीय जलोढ़ मैदान (Piedmont alluvial plain) कहा जाता है।

(iii) **गोखुर झील (Ox-how Lake) :** बाढ़ के समय विसर्प की ग्रीवा अत्यन्त सँकरी हो जाने पर कट जाती है, जिससे नदी सीधा मार्ग ग्रहण कर लेती है। कटे हुए विसर्पों में जल भरा रह जाता है, जिन्हें गोखुर झील कहते हैं।

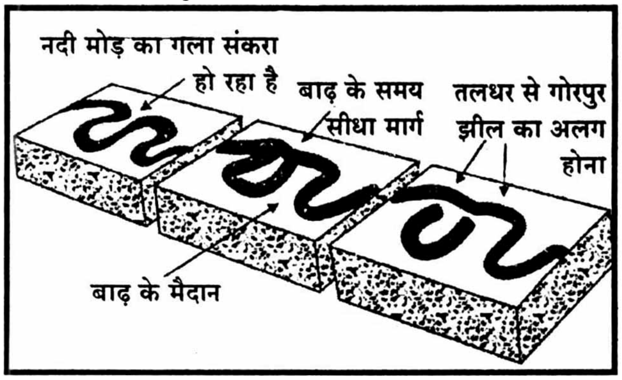

चित्र - 4.5 : नदी मोड़ गोखुरनुमा झील का निर्माण

(iv) **प्राकृतिक तटबंध (Natural Levees) :** मिट्टियों के जमाव के कारण नदी के दोनों पार्श्वों पर कम ऊँचाई वाले कटक के समान लम्बे -लम्बे बन्धों का निर्माण हो जाता है, जिन्हें तटबंध कहते हैं। ये कगार प्राकृतिक रूप से बनते हैं, अत : इन्हें प्राकृतिक तटबंध कहा जाता है।

(v) **बाढ़ के मैदान (Flood Plains) :** नदी की प्रौढ़ावस्था में वर्षा के समय जब बाढ़ का जल प्राकृतिक तटबंधों को तोड़कर विस्तृत भागों में फैल जाता है। इन बाढ़ों से कांप मिट्टी का विस्तृत क्षेत्र में निक्षेपण हो जाता है, तो उससे उर्वर मैदानों की रचना होती है। इसी प्रकार के मैदानों को बाढ़ का मैदान कहा जाता है।

(vi) **डेल्टा (Delta) :** कांप मिट्टी के निक्षेप से निर्मित नदी की वृद्धावस्था में निर्मित यह महत्वपूर्ण स्थलाकृति है। लेटिन भाषा के Δ (डेल्टा) वर्ण के नाम पर त्रिभुजाकार आकृति का नामकरण किया गया है।

4.6 हिमनद (Glaciers)

हिम का योगदान स्थलाकृतियों के निर्माण में बहुत ही महत्वपूर्ण है। वॉरसेस्टर महोदय के अनुसार "हिमदन अथवा हिमानी हिम की एक ऐसी राशि है जो धरातल पर अपने संचय के स्थान से धीरे-धीरे खिसकती है।" (A glacier is mass of snow and ice that moves slowly over the land away from its place of accumulation.” Worcester) हिम क्षेत्रों से गुरुत्व के कारण बहुत धीमे सरकने वाले हिम के समूह को हिमनद कहा जाता है। हिम रेखा (snow line) हिम क्षेत्र की निचली सीमा को कहा जाता है, इस रेखा के ऊपर सदैव हिम जमी रहती है। हिम क्षेत्र के विकास तथा उत्पत्ति के लिए जो तथ्य आवश्यक हैं, उनमें मुख्य हैं - हिमपात वर्ष पर्यन्त अथवा पर्याप्त अवधि में हो, हिम पिघल न जाये इसलिये वर्ष भर तापमान कम रहने चाहिये, हिम के संचित रहने के लिए स्थल का ढाल सामान्य सूर्यातप तथा तीव्र पवनों से सुरक्षित होना चाहिये।

4.6.1 हिमनद के प्रकार (Types of Glaciers)

हिमनद आकार, निर्माण, प्रक्रिया, स्वरूप आदि की दृष्टि से कई प्रकार के होते हैं। हिमनद रूप एवं आकार के आधार पर चार प्रकार के होते हैं जैसे हिमटोपी, हिमचादर, घाटी तथा गिरीपदीय।

4.6.2 हिमनद के कार्य (Work of Glaciers)

हिमनद अपरदन के साथ-साथ परिवहन एवं निक्षेपण का कार्य भी करते हैं।

4.6.3 अपरदनात्मक स्थल रूप (Erosional Landforms)

(i) **यू आकार की घाटी (U-shaped valley):** घाटी हिमनद पर्वतीय भागों में इस प्रकार की घाटियों से होकर प्रवाहित होते हैं, जिनके पार्श्व खड़े ढाल वाले होते हैं तथा तली चौरस एवं सपाट होती है। अंग्रेजी के 'यू, अक्षर से हिमनदों की ये घाटियाँ मिलती हुई होती है। इसी कारण इन्हें 'यू, आकार की आकार की घाटियाँ कहा जाता है।

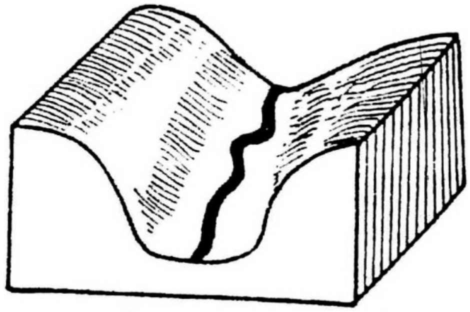

चित्र–4.6 : U आकार की घाटी

(ii) **लटकती घाटी (Hanging Valley) :** हिमनद की मुख्य घाटी गहरी तथा यू आकार की होती है। मुख्य घाटी में ऊँचाई से मिलने वाली सहायक घाटी लटकती हुयी दिखाई देती है। इसलिये ऐसी सहायक हिमनदी की घाटियों को लटकती घाटियाँ कहा जाता है।

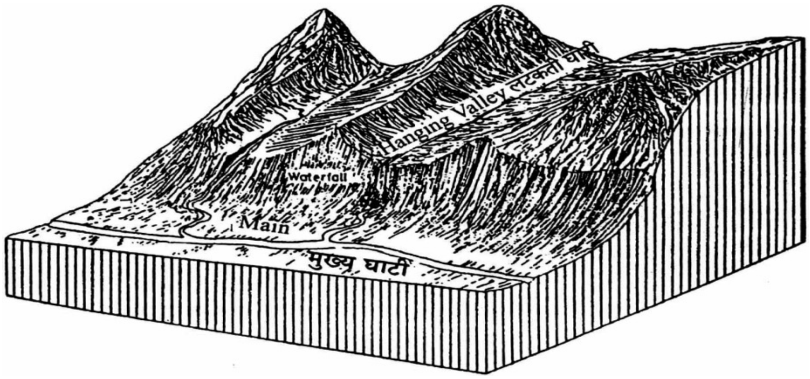

चित्र- 4.7 : लटकती या निलम्बित घाटी (Hanging Valleys)

(iii) **सर्क अथवा हिमगह्वर (Cirque or Corrie) :** एक अर्द्धवृत्ताकार या कटोरे के आकार का विशाल गहरा गर्त हिमनद की घाटी के शीर्ष भाग पर सर्क के रूप में दिखाई देता है। इसका पार्श्व या किनारा खड़े ढाल वाला होता है। गहरी सीट वाली आरामकुर्सी के समान

इसका आकार होता है। ये प्राय: हिम से भरे हुए होते हैं। इसी कारण इन्हें हिमगह्वर या हिमगर्त कहते हैं।

चित्र–4.8 : सर्क तथा उसके विभिन्न अंग

(iv) **टार्न (Tarn) :** जल भरने पर सर्थ रूपी बेसिन एक लघु झील के रूप में बदल जाता है, जिसे सर्थ झील या टार्न कहा जाता है।

(v) **हॉर्न या गिरिश्रृंग (Horn) :** किसी पहाड़ी के दोनों ओर जब सर्क एक-दूसरे की ओर पीछे की तरफ कटने लगते हैं, तो उनके मध्य का भाग अपरदित होकर नुकीला होने लगता है। धीरे-धीरे पूर्ण रूपेण विकसित चोटी का निर्माण हो जाता है।

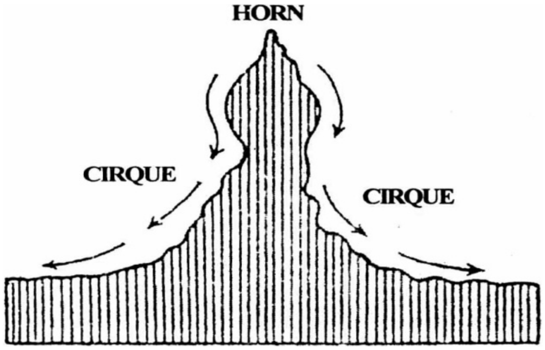

चित्र - 4.9 : हॉर्न या गिरिश्रृंग (Horn)

(vi) **नुनाटक(Nunatak) :** विस्तृत हिम क्षेत्रों में उभरे हुए टीले जो द्वीप के समान दिखायी देते हैं, नुनाटक कहलाते हैं।

(vii) **श्रृंग व पुच्छ (Crag and Tail) :** ज्वालामुखी प्लस, बेसाल्ट या अन्य कोई शिला के सम्मुख ढाल पर हिमानी के प्रवाह मार्ग में हिम की घर्षण क्रिया से उबड़-खाबड़ ढाल बन जाता है, जिसे श्रृंग कहा जाता है। मन्द व सम विमुख ढाल पर हिम सरलता से उतर जाता है, उसे पुच्छ कहा जाता है।

चित्र - 4.10 : श्रृंग व पुच्छ (Crag and Tail)

(viii) **मेष शिला या रॉश मुटाने)Roche moutonne) :** हिमनद के मार्ग में टीले के सामने वाले ढाल पर अपघर्षण क्रिया से चिकना व सपाट ढाल बन जाता है। लेकिन दूसरे ढाल पर ऊबड़-खाबड़ ढाल बना रहता है। दूर से देखने पर इस प्रकार की आकृति भेड़ की पीठ के समान दिखायी देती है।

चित्र–4.11 : मेष शिला या रॉश मुटाने

(ix) **हिम सोपान (Glacial Steps) :** शैल संरचना की भिन्नता के कारण हिमनद के अपरदन द्वारा उत्पन्न स्थल रूप हिमसोपान होता है। इन सोपानों को वृहदाकार रूप के कारण दैत्याकार सोपान (Giant Staircases) भी कहते हैं।

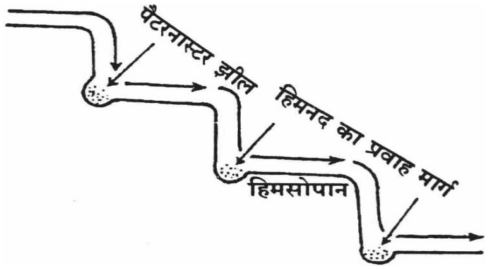

चित्र - 4.12 : हिम सोपान (Glacial Steps)

(x) **फियोर्ड (Fiords):** जलमग्न हिमानीकृत घाटियों को फियोर्ड कहा जाता है। फियोर्ड एक तरह का यू आकार का तट होता है। ये गहरे जल के सागरीय भाग होते हैं जिनके पार्श्व खड़े ढाल वाले होते हैं।

4.6.4 निक्षेपात्मक स्थलरूप (Depositional Landforms)

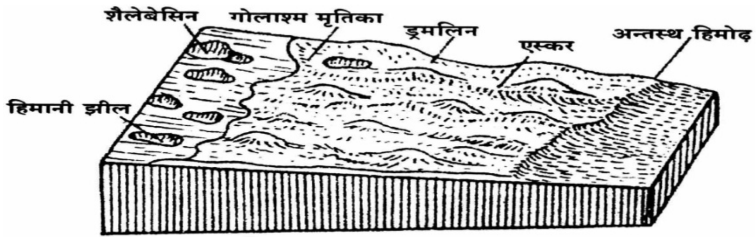

चित्र- 4.13 : ग्लेसियर द्वारा निक्षेपित स्थलरूप

1. **हिमोढ़ (Moraines)** : हिम नदी द्वारा निक्षेपित पदार्थ को हिमोढ़ों कहते हैं। हिमानी के विभिन्न भागों में के अनुसार इनका नामकरण किया जाता है, जैसे पार्श्विक हिमोढ़, मध्यस्थ हिमोढ़, तलवर्ती हिमोढ़, अन्तिम हिमोढ़ आदि।

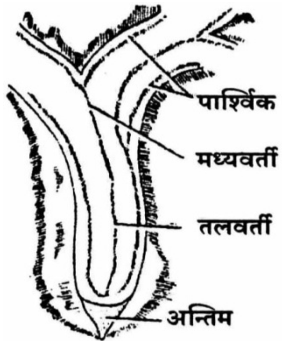

चित्र-4.14 : हिमोढ़ों के प्रकार

2. **ड्रमलिन (Drumlin) :** ड्रमलिन गोलाष्म मृत्तिका (Boulder clay) द्वारा निर्मित एक प्रकार के टीले हैं जो हिमनद के निक्षेप द्वारा निर्मित स्थलरूप हैं। इनका आकार कटे हुए उल्टे अण्डे या उल्टी नौका की तरह होता है।

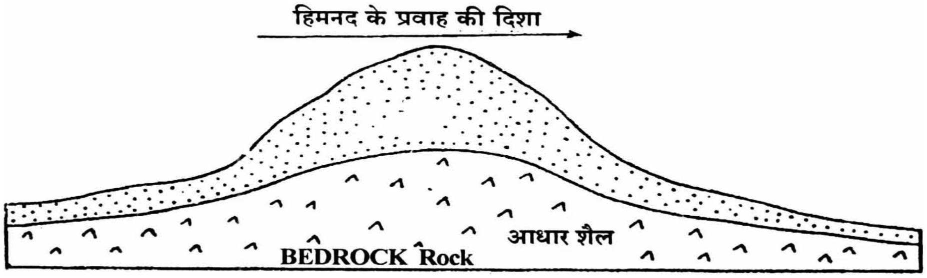

चित्र - 4. 15 : ड्रमलिन (Drumlin)

3. **एस्कर (Esker) :** ये लहरदार तीव्र ढाल वाले लम्बे, संकरे तथा सर्पिल आकार वाले कटक होते हैं, जिनकी रचना बजरी, रेत, कंकड़-पत्थर आदि से होती है।

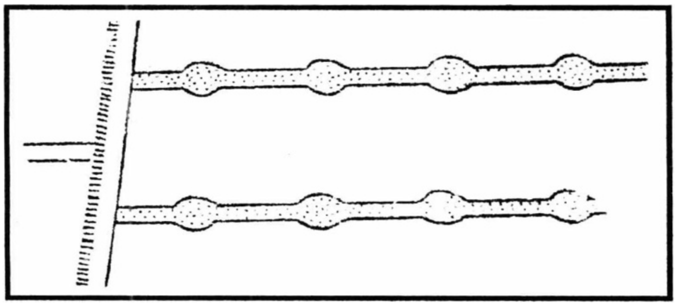

चित्र-4.16 : मालाकार एस्कर

4. **केम (Kame) :** रेत व बजरी से निर्मित हिमानी के अग्रभाग में तीव ढाल युक्त टीलों को केम कहा जाता है।
5. **केटिल (Kettle) :** बड़े हिमखण्डों के पिघलने से इनकी रचना होती है ये केम के विपरीत गर्त रूप मे होते हैं।

बोध प्रश्न-4

1. बहते जल द्वारा निर्मित अपरदनात्मक स्थलरूप है-

(अ) दैत्य सोपान	(ब) रॉशमुटाने
(स) नदी विसर्प	(द) ड्रमलिन

2. हिमनद द्वारा निर्मित निक्षेपात्मक स्थल रूप है-

(अ) फियोर्ड (ब) हिमोढ़

(स) गॉर्ज (द) प्राकृतिक तटबंध

3. बहते हुए जल द्वारा निर्मित दो निक्षेपात्मक स्थलरूपों के नाम लिखिये।

4. हिमनद द्वारा निर्मित दो अपरदनात्मक स्थलरूपों के नाम लिखिये।

4.7 सारांश

स्थलाकृतियों के निर्माण में अनेक शक्तियाँ एवं प्रक्रम सक्रिय रहते हैं। शैल संरचना एवं विकास की अवस्था स्थलाकृतियों का स्वरूप निर्धारित करने में विशेष योगदान देती हैं भूपटल पर अन्तर्जात प्रक्रियाओं द्वारा स्थलरूपों की रचना होती है तथा बाहिर्जात बल विभिन्न साधनों एव प्रक्रमों द्वारा धरातल की काँट-छाँट में संलग्न रहते हैं। धरातल पर स्थलरूपों का विकास चक्रीय रूप में अपरदनात्मक प्रक्रम करते हैं। डेविस ने अपनी संकल्पना में स्थलरूपों के विकास की चक्रीय संकल्पना प्रस्तुत करते हुए बताया कि प्रत्येक स्थलखण्ड विकास की तीन अवस्थाओं - युवा, प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था से गुजरता है। नदियाँ व हिमनदियाँ अपरदन, परिवहन व निक्षेपण द्वारा विविध स्थलाकृतियों का निर्माण करती हैं।

4.8 शब्दावली चट्टानें

चट्टानें(rocks)	:	शैलें
स्थलमण्डल (Lithosphere)	:	पृथ्वी की सतह का ऊपरी भाग
अवसादी (Sedimentary)	:	परतों से बनी
अनाच्छादन (Denudation	:	चट्टानों के काटने, छाँटने, घिसने तथा क्षीण बनाने की क्रिया
अपक्षय (Weathering))	:	चट्टानों का अपने ही स्थान पर टूटना-फूटना
सूर्यातप (Insolation)	:	सूर्य से प्राप्त होने वाला ताप

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Holmes, A. : Principles of Physical Geology, Thomas Nelson and Sons, Newyork.
2. Mohkhouse, F.J. : Principles of Physical Geology, University of London Press, 1962
3. Steers, J.A. : The Unstable Earth, Metheu & Company Limited, London, 1961
4. Strahler, A.N. : Physical Geography, John Wiley & Sons, New York.
5. Thornbury : Principles of Physical Geomorphology.
6. Savindra Singh : Physical Geography, Prayag Pustak Mandir, Allahabad, 2006

7. शर्मा एवं मिश्रा : भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005
8. चौहान एवं गौतम : भौतिक भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 2003

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. स 2. ब

1. गर्म एवं द्रव पदार्थों के ठण्डा होकर जमने के कारण हुआ
2. नीस, क्वार्टजाइट, शिस्ट, संगमरमर

बोध प्रश्न-2

1. ब 2. ब

1. अ चट्टानों का संगठन व संरचना, ब. वनस्पति की मात्रा
2. अ वनस्पति, ब. जीवजन्तु

बोध प्रश्न-3

1. स 2. अ

1. अ भौतिक अपरदन, ब. रासायनिक अपरदन
2. अ युवावस्था, ब. प्रौढ़ावस्था, स वृद्धावस्था

बोध प्रश्न-4

1. स 2. ब

1. अ जलोद, ब. बाढ़ के मैदान
2. अ यू - आकार की घाटी, ब. सर्क अथवा हिमगह्वर

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अवसादी चट्टानों से क्या आशय है?
2. समप्राय मैदान किसे कहते हें?
3. अपक्षय से क्या तात्पर्य है?
4. सत्रिघर्षण किसे कहते हैं?
5. शैलों में कायान्तरण से आप क्या समझते हैं?
6. अपघर्षण के बारे में जानकारी दीजिये।
7. अपरदन चक्र की अवस्थायें क्या हैं?
8. जल-प्रपात किसे कहते हैं?
9. सर्क अथवा हिमगहवर की जानकारी दीजिये।
10. चट्टानों का वर्गीकरण करते हुए आग्नेय चट्टानों की विशेषताऐं बताइये।
11. अपक्षय से क्या आशय है? अपक्षय को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये।
12. डेविस द्वारा दिये गये अपरदन चक्र की व्याख्या कीजिये।
13. बहते हुए जल के कार्य एवं उससे निर्मित स्थलरूपों का वर्णन कीजिये।
14. हिमानी के अपरदन द्वारा निर्मित विभिन्न स्थलाकृतियों का वर्णन कीजिये।

इकाई - 5 : पवनों, लहरों एवं भूमिगत जल के कार्य, भूअपरदन व संरक्षण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 पवनों के कार्य
5.2.1 पवनों द्वारा अपरदन
5.2.2 अपरदन जन्य भूआकार
5.2.3 पवनों का परिवहन कार्य
5.2.4 निक्षेप जन्य भूआकार
5.3 लहरों के कार्य
5.3.1 लहरें
5.3.2 लहरों द्वारा अपरदन
5.3.3 अपरदन जन्य भूआकार
5.3.4 लहरों का परिवहन कार्य
5.3.5 निक्षेप जन्य भूआकार
5.4 भूमिगत जल के कार्य
5.4.1 अपरदन जन्य भूआकार
5.4.2 परिवहन कार्य
5.4.3 निक्षेप जन्य भूआकार
5.5 भूमि संसाधन एवं संरक्षण
5.5.1 भूमि अवनयन
5.5.2 भू संरक्षण
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 संदर्भ ग्रन्थ
5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन से आप -

- अपरदन के साधन के रूप में पवनों के कार्य को समझ सकेंगे,
- अपरदन के साधन के रूप में लहरों के कार्य को समझ सकेंगे,
- अपरदन के साधन के रूप में भूमिगत जल के कार्य को समझ सकेंगे तथा

- भूअपरदन की समस्याओं व उनके संरक्षण के महत्व को जानेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भूतल को प्रभावित करने वाले अनेक अपरदन के साधन हैं जो अपनी क्रियाओं द्वारा विभिन्न स्थलाकृत्तियों का निर्माण करते रहते हैं। पिछले अध्याय नदियों तथा हिमनदियों द्वारा निर्मित स्थलाकृत्तियों का वर्णन किया जा चुका है। उससे स्पष्ट हो गया होगा कि अपरदन के विभिन्न साधन भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थल रूप बनाते हैं। यही तथ्य पवनों, लहरों व भूमिगत जल के कार्यों पर भी लागू होता है। इनके कार्यों को इस अध्याय में सम्मिलित किया गया है। ये सभी अपरदन के साधन मिलकर भू-अपरदन अथवा भू-क्षरण की समस्या को जन्म देते हैं। मानव सहित समस्त जीव जगत के लिये भूमि एक महत्वपूर्ण संसाधन है। अत: इसके संरक्षण की आवश्यकता है।

5.2 पवनों के कार्य

गतिशील वायु (Air in Motion) को पवन कहते हैं। पवनों के कार्य का प्रधान क्षेत्र ऊष्ण शुष्क मरूस्थल होते हैं। पृथ्वी का लगभग एक-तिहाई स्थल भाग शुष्क और अर्द्ध शुष्क है। इन क्षेत्रों में सूर्यताप या पाले के प्रभाव के कारण चट्टानों में भौतिक ऋतु अपक्षय होता रहता है। भौतिक अपक्षय द्वारा विखण्डित चट्टानों पर पवनें क्रियाशील रहती हैं।

पवनों के कार्य तीन प्रकार के होते हैं - (1) अपरदन, (2) परिवहन, (3) निक्षेप। इन कार्यों द्वारा पवनें विविध भूस्वरूपों का निर्माण करती हैं।

5.2.1 पवनों द्वारा अपरदन

पवनों द्वारा अपरदन चार प्रकार से होता है -

1. **अनावृतण-** ये मार्ग में पडने वाली मिट्टी की परतों को उडा ले जाती हैं, जिससे धरातल का वह भाग कालान्तर में मिट्टी, बालू कंकड़ इत्यादि से विहीन होकर ठोस चट्टान के रूप में उभर आता है। उसके बाद वहाँ भौतिक अपक्षय क्रियाशील हो जाता है। इस क्रिया को अनावृतण कहते हैं।
2. **अपवाहन-** कभी-कभी पवनें इतनी वेगवती व प्रबल होती हैं कि वे अपक्षय द्वारा ढीली की गई चट्टानों की पूरी परत को उडा ले जाती हैं। इस क्रिया को अपवाहन (Deflation) कहते हैं।
3. **अपघर्षण-** पवनों द्वारा अपरदन की तीसरी क्रिया अपघर्षण (Abrasion or Corrasion) है। बालू के कणों से युक्त पवनें अपरदन का शक्तिशाली कारक बन जाती हैं। बालू के कण पवनों द्वारा अपघर्षण के यंत्र का कार्य करते हैं। नग्न चट्टानों पर पवनों के ये यंत्र सरेस कागज (Sand Paper) के जैसा काम करते हैं। पवनों द्वारा अपघर्षण धरातल के समीप तो होता ही है, कुछ ऊपर उठी चट्टानों पर सबसे अधिक होता है। क्योंकि वहाँ पवनों की गति अधिक तेज रहती है और उसके साथ उड़ाये गये बालू के कणों की मात्रा भी सर्वाधिक रहती है। अधिक ऊँचाई पर पवन के क्षयकारी कार्य कम होते हैं, क्योंकि वहाँ बालू के सूक्ष्म कण ही जा पाते हैं। इससे वहाँ पर्याप्त घर्षण नहीं होता।
4. **सन्निघर्षण-** शिलाखण्ड व चट्टानचूर्ण आपस में घर्षित होकर या रगड़ खाकर भी टूटते हैं।

इस क्रिया को सन्निघर्षण (Attrition) कहते हैं।

5.2.2 अपरदन जन्य भूआकर

1. **पवनगर्त (Blow-Outs) -** पवनों की अपवाहन क्रिया से मरूस्थली प्रदेशों में गड्डे बन जाते हैं। सहारा मरूस्थल में कतारा गर्त सागरतल से 128 मीटर नीचा है। तीव्रगामी व प्रबल पवनों द्वारा कई बार चट्टानों की मोटी परतों के उखाड़ दिये जाने के कारण भी ऐसे गर्त बन जाते हैं।

2. **जालीदार शिला (Stone-Lettice) -** जहाँ चट्टानों में कुछ मुलायम और कुछ कठोर रवे एक साथ होते हैं या कठोर और मुलायम शिलाखण्ड मिश्रित रहते हैं, वहाँ पवनों के प्रहार से मुलायम रवे या मुलायम संयोजक घिस जाते हैं जबकि कठोर रवे कम घिस पाते हैं। इससे चट्टान की सतह खुरदरी व जालीदार हो जाती है। ऐसी सतह वाली चट्टान को जालीदार शिला कहते हैं।

3. **यारडांग (Yardang) -** पवन की अपघर्षण क्रिया से उत्पन्न शुष्क प्रदेश की यह एक विशिष्ट आकृति है। प्रचलित पवनों की दिशा में जब कठोर और मुलायम चट्टानों की परतें कुछ झुकी हुई होती हैं तभी इस आकृति का निर्माण होता है। क्योंकि बीच बीच की मुलायम परतें पवनों के घर्षण के द्वारा अधिक कट जाती हैं तथा दोनों ओर की कठोर परतें कम कटती हैं। दूर से देखने पर एक दूसरे के समानान्तर खड़ी चट्टानें और इनके बीच नालीनुमा गड्ढे विचित्र दृश्य उपस्थित करते हैं।

चित्र–5.1 : यारडांग

4. **छत्रक (Gara) -** पवनों की घर्षण क्रिया से चट्टानों का निचला भाग अधिक कट जाने के फलस्वरूप बनी यह छत्रक जैसी आकृति होती है। जब पवनें विभिन्न दिशाओं से चलती हैं तो चट्टानी टीला चारों तरफ से कट जाता पवनों, लहरों रख भूमिगत जल के कार्य, भूअपरदन व है। उससे इस प्रकार की आकृति बन जाती है।

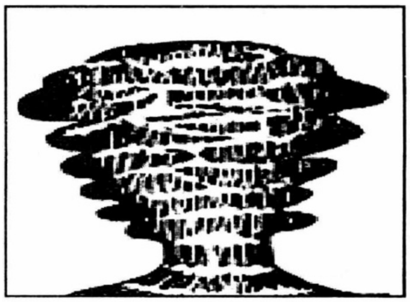

चित्र–5.2 : छत्रक

5. **ज्यूजेन (Zeugen) -** ऐसी आकृति के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि मुलायम और कठोर चट्टानों की परतें क्षैतिज अवस्था में एक के नीचे दूसरी समानान्तर बिछी हुई हों। ऊपरी कठोर शैल की परत की दरारों में ओस भर जाती है और रात में जब तापमान अत्यंत निम्न

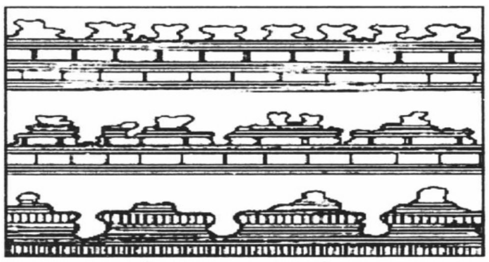

चित्र–5.3 : ज्यूजेन

हो जाता है तब वह हिम बनकर दरारों को चौड़ा कर देती है। दिन के समय पवनें उन दरारों से शिलाचूर्ण को उड़ा ले जाती है। इससे गहराई में चट्टानों का अपरदन होने लगता है। ऊपरी कठोर चट्टान की अपेक्षा निचली मुलायम चट्टान का अपरदन अधिक तेजी से होता है। ऐसी आकृतियों में यत्र-तत्र कठोर चट्टानों की टोपियाँ बची रहती हैं जिसे ज्यूजेन कहते हैं।

चित्र–5.4 : भूस्तम्भ

6. **भूस्तम्भ (Demoiselles) -** पवनों के अपरदन के कारण कठोर शिलाखण्ड कम घिसने से खम्भे की तरह खड़ा रहता है। जबकि इसके आसपास की मुलायम चट्टानें अधिक घिसकर नीची हो जाती हैं। इन कठोर चट्टानों की उभरी हुई स्तम्भनुमा आकृति को भूस्तम्भ कहते हैं।

7. **गुम्बदाकार टीले (Inselberge) -** मरूस्थलों में पवनों के प्रभावकारी अपरदन के फलस्वरूप मुलायम चट्टानी भाग कट-छँटकर समतल प्राय: बन जाता है। लेकिन यत्र-तत्र कठोर चट्टानों से निर्मित गुम्बदाकार चट्टानी टीले उभरे रह जाते हैं। इन्हें गुम्बादाकार टीले कहते हैं।

चित्र–5.5 : गुम्बदाकार टीले

5.2.3 पवनों का परिवहन कार्य

पवनों द्वारा बालू का परिवहन दो प्रकार से होता है -

(1) पवनों के साथ उडता हुआ और (2)पवनों द्वारा सरकता हुआ (Surface Creep)। सूक्ष्म और हल्के कण उड़ते हुए परिवहित होते हैं। अपेक्षाकृत मोटे कण बार-बार उठाकर आगे सरकाये जाते हैं। तेज गति होने पर, जैसे आँधियों में, ये कण उड़ने भी लगते हैं। भारी कण या छोटे-बड़े कंकड़ धरातल पर लुढ़कते हुए आगे बढते हैं।

5.2.4 निक्षेप जन्य भूआकार

1. **बालुका-स्तूप** (Sand-dune) - ये तेज पवनों के साथ लुढ़कते हुऐ बालूकणों के निक्षेप से बने बालू के टीले या स्तूप होते हैं जो मरूस्थलों में मिलते हैं। ये स्तूप एक जगह स्थिर न रहकर खिसकते रहते हैं। ये स्तूप पवनों की दिशा में आगे की ओर खिसकते रहते हैं। इसके निर्माण के लिए प्रचुर मात्रा में बालू का प्रवाह तथा पवनों में मार्ग में बाधा होना आवश्यक है। बालुका स्तूप आकार के अनुसार दो प्रकार के होते हैं - (क) पवनानुवर्ती बालुका स्तूप (Longitudinal sand dune or Seif) (ख) अनुप्रस्थ बालुका स्तूप (transverse sand dune or Barkhan)।

चित्र - 5.6 : बालुका स्तूपों का खिसकना

1. **पवनानुवर्ती बालुका स्तूप-** ये स्तूप पवनों की दिशा के सामानान्तर बनते हैं। ये लम्बे टीले के रूप में रहते हैं। इनका पवनोन्मुखी ढाल धीमा तथा पवन विमुखी ढाल तीव्र होता है। सहारा में इन्हें सीफ (Seif) कहते हैं।
2. **अनुप्रस्थ बालुका स्तूप -**ये स्तूप पवनों की दिशा के आड़े या लम्बवत् होते है। अर्थात् इनका विस्तार पवनों की दिशा के समकोण होता है। कई अनुप्रस्थ स्तूप अर्ध चन्द्राकार आकृति में फैले रहते हैं। इन्हें बरखान कहते हैं। इनकी अर्धचन्द्रकार भुजा नतोदार तथा दूसरी भुजा उन्नतोदर ढाल की होती है।
3. **उर्मि चिन्ह (Ripple Marks) -** जहाँ पवनें मन्द गति से चलती हैं, वहाँ बालुका धरातल पर लहरनुमा चिह्न मिलते हैं। इन्हें उर्मि चिह्न कहते हैं। पुष्कर व बूढा पुष्कर तथा जैसलमेर के निकट सम के टीलों पर इस प्रकार के उर्मि चिन्ह देखे जा सकते हैं।

चित्र - 5.7 : बरखान

4. **लोयस (Loess) -** मरूस्थलों में धूल भरी आंधियाँ चला करती हैं। इन आँधियों में बहुत बडी मात्रा में मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान तक उडक़र जमा होती रहती है। इसे लोयस कहते हैं। लोयस के मुख्य क्षेत्र उत्तरी चीन, मध्य यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका का मिसीसिपी-प्रदेश है। लोयस मिट्टी बड़ी उपजाऊ होती है।
5. **प्लाया (Playa) -** पवनों की अपवाहन क्रिया द्वारा बने पवन गर्तो में जल एकत्रित हो जाने से खारे पानी की झीलें बन जाती है, जिन्हें प्लाया कहते हैं।

बोध प्रश्न - 1

1. पवनों के अपरदन जन्य भूआकार युग्म है -
   (अ) बालुका स्तूप-छत्रक (ब) यारडांग -ज्यूजेन
   (स) बरखान-भूस्तम्भ (द) लोयस-छत्रक। ( )
2. पवनों का प्रभाव क्षेत्र होता है -
   (अ) शीत मरूस्थल (ब) नदी बेसिन
   (स) बाढ़ के मैदान (द) उष्ण मरूस्थल। ( )
3. जो पवनों के अपरदन की विधि नहीं है -
   (अ) अपवाहन (ब) अपघर्षण
   (स) घोल (द) सन्निघर्षण। ( )

5.3 लहरों के कार्य

विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों के कारण जलराशि सदैव गतिशील रहती है। सामुद्रिक जल की गतिविधियों के तीन मुख्य रूप हैं। (1) लहरें, (2)धाराएं व (3) ज्वार भाटा। इस अध्याय में लहरों एवं उनके कार्यो का वर्णन किया गया है।

5.3.1 लहरें

जैसे जलाशय में पत्थर फैंकने पर तेज हवाएँ चलने पर जल में लहरें चलने लगती हैं। वैसे ही महासागरीय जल में भी लहरें चला करती है। प्रत्यक्ष रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि लहरों में जल आगे बढ़ता है। किन्तु वास्तव में जलकण आगे नहीं बढ़ते, वरन् एक ही स्थान पर ऊपर-नीचे गति करते हैं। यह गति गोलाकार होती है जैसा कि चित्र संख्या 5.8 में दर्शाया गया है। जलकणों की गति गोलाकार पथ में होने के

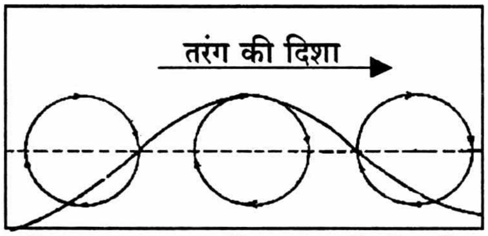

चित्र–5.8 : लहर में जल कणों की गति

कारण यह भ्रम होता है कि जलकण आगे बढ़ रहे हैं। यह गोलाकार गति जल के एक कण से

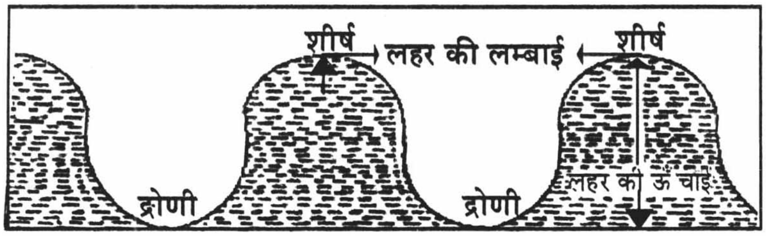

चित्र–5.9 : लहर की ऊँचाई, लम्बाई, शीर्ष व द्रोणी

दूसरे कण में आगे की ओर स्थानान्तरित होती है। इसके कारण यह भ्रम पैदा होता है कि लहरें आगे बढ़ रही हैं। जल की गोलाकार गति में सबसे ऊपर के भाग को शीर्ष (Crest) एवं सबसे नीचे के भाग को द्रोणी (Trough) कहते हैं। दो शीर्षों के मध्य की दूरी लहर की लम्बाई कहलाती है। इन्हें चित्र संख्या 5.9 में प्रदर्शित किया गया है।

5.3.2 लहरों द्वारा अपरदन

लहरों द्वारा अपरदन की क्रिया चार प्रकार की होती है -

1. **घोल क्रिया** (Solution) -सामुद्रिक जल एवं चट्टानों की रासायनिक संरचना के कारण तटीय शैलों के कुछ भाग घुल जाते हैं। जिसे घोल क्रिया कहते हैं।
2. **घर्षण क्रिया** (Corrasion) -लहरों के साथ वेग से कंकर-पत्थर तटीय शैलों से टकराते हैं जिससे होने वाले तटीय शैलों के अपरदन को घर्षण क्रिया कहते हैं।
3. **सन्निघर्षण क्रिया** (Attrition) -लहरों के साथ बहकर आये कंकर-पत्थर आपस में भी टकराकर टूटते रहते हैं। जिसे सन्निघर्षण कहते है।
4. **जलीय क्रिया** (Hydraulic Action) - लहरें जब तटीय शैलों से टकराती हैं तो शैलों की दरारों में उपस्थित हवा पर इनका दबाव पडता है। लहरों के लौटने पर दबी हुई हवा पुन: फैलती है। इस प्रकार दरारों में लहरों के कारण बार-बार हवा के दबने व फैलने से शैलों में क्षय होता है।

लहरों के तीन कार्य होते हैं - (1) अपरदन, (2) परिवहन एवं (3) निक्षेप। लहरों के अपरदन एवं निक्षेप कार्यो से तटीय क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के भूआकार बनते हैं।

लहरों के अपरदन कार्य को कई कारक प्रभावित करते हैं।

(अ) **लहरों की शक्ति** -लहरों का वेग, उनकी ऊँचाई एवं उनके साथ प्रवाहित होने वाले शिलाखण्डों की मात्रा उसकी शक्ति का प्रतीक होते हैं। लहरें जितनी ऊँची एवं वेगवती होती हैं, उनकी प्रहार क्षमता उतनी ही अधिक होती है। लहरों के साथ बहकर आने वाले शिलाखण्ड औजार का कार्य करते हैं।

(ब) **तटीय शैलों की संरचना** - तटीय शैल रन्ध्रमय हों तो उनमें लहरों का जल बार-बार प्रवेश करके उन्हें कमजोर बनाता रहता है। अत: ऐसी शैलों में अपरदन शीघ्र और तीव्र दर से होता है। इसके विपरीत अरन्ध्र चट्टानों में अपरदन कम एवं धीमी गति से होता है।

(स) **तटीय शैलों की कठोरता** -तटीय क्षेत्र की कठोर चट्टानों में अपरदन कम तथा मुलायम शैलों में अपरदन अधिक होता है।

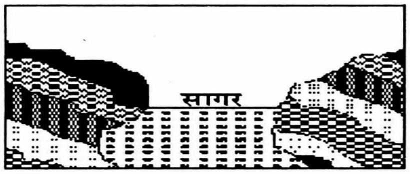

चित्र–5.10 : परतों का नमन

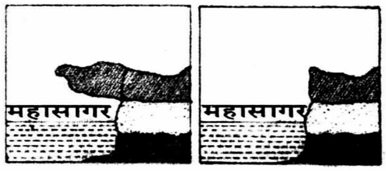

चित्र–5.11 : शैल परतों के विन्यास का प्रभाव

(द) **शैल परतों का नमन (Dip of Layers)** - यदि शैल परतों झुकाव तट की ओर हो तो इनकी दरारों एवं चटकनों में जल प्रवेश से ये ढीली पड़ जाती हैं। इससे इनका अपरदन शीघ्र होता है। तट से विमुख नमन होने पर क्षय कार्य धीमी गति से होता है (चित्र संख्या 5.10)।

(य) **शैल परतों का विन्यास** - तटीय क्षेत्र में शैलों की परतें लम्बवत् दिशा में होने पर अपरदन कार्य धीमी गति से होता है। परतें आड़ी होने पर अपरदन कार्य तीव्रता से होता है क्योंकि मुलायम शैलों का क्षय अधिक हो जाने से उनके ऊपर की कठोर शैलों की परत के हिस्से स्वयं टूट कर गिरते रहते हैं (चित्र संख्या 5.11)।

(र) **लहरों के आक्रमण की दिशा** - यदि लहरें तटीय शैलों पर तिरछी टकराती हैं तो उनसे अपरदन कार्य कम तथा सीधे आक्रमण से उनका अपरदन अधिक होता है।

5.3.3 लहरों के अपरदन से बने भूआकार

सामुद्रिक भृगु (Sea Cliff) - तटीय क्षेत्रों में सबसे अधिक क्षय शैलों की निचली परत में होता है। ऐसा निरन्तर होने से ऊपर का काफी भाग आधारहीन हो जाता है एवं स्वत: टूटकर गिरता रहता है। इससे तटीय क्षेत्र में लम्बवत किनारों की रचना होती है जिसे सामुद्रिक भृगु कहते हैं, (चित्र - 5.12)।

चित्र–5.12 : सामुद्रिक भृगु

खाड़ियाँ तथा समुद्राभिमुख कगार (Bays and Promonteries) - तटीय क्षेत्र से आड़ी दिशा में क्रमश: जमाव पर ये भूआकृतियाँ बनती हैं। मुलायम परतें अधिक घिसने से खाड़ियाँ बन जाती हैं। कठोर शैलों की परतें कम अपरदन के कारण समुद्र की ओर बाहर निकली रहती हैं। (चित्र संख्या 5.13)।

चित्र–5.13 :शैल परतों के विन्यास का प्रभाव

अण्डाकार कटान (Coves)- मुलायम व कठोर शैलों की परतों का क्रमिक जमाव तट के समानान्तर होने पर इस प्रकार की भूआकृति का निर्माण होता है। कठोर शैलों की परत में दरार से होकर लहरों का जल भीतरी भागों तक प्रवेश कर जाता है। अन्दर पहुँच कर वह मुलायम शैल की परत को अधिक काटता है जिससे उसमें अण्डाकार कटान बन जाते हैं। दक्षिणी इंग्लैण्ड के तट पर इस प्रकार की भूआकृति मिलती है (चित्र संख्या 5. 14)।

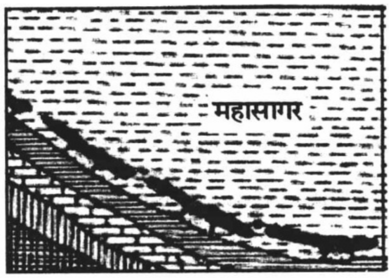

चित्र–5.14 : अण्डाकार कटान

सागरीय गुफाएं (Sea Caves) -तटीय क्षेत्र में कठोर शैलों के निचले भाग में कोई कमजोर भाग होने पर लहरों द्वारा अधिक कट जाता है। उस खोखले स्थान में लहरों का जल हवा को दबाता रहता है। लहरों के पीछे हटने पर दबी हुई हवा पुन: फैलती है। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति के कारण यह खोखला गड्डा गहरा होकर गुफा का रूप धारण कर लेता है।

धमि छिद्र (Blow Holes)- सागरीय गुफाओं के पूरे द्वार पर लहरों का अग्रसित जल चढ़ जाने से उसके भीतर की हवा दबती है। यह दबाव कभी-कभी इतना अधिक होता है कि उससे गुफा की छत का कोई हिस्सा टूट कर छेद बन जाता है। उसे धमि छिद्र कहते हैं।

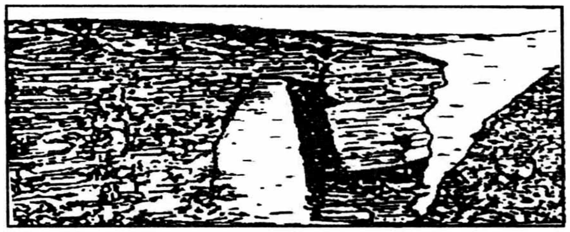
चित्र–5.15 : मेहराब

मेहराब (Arch) - समुद्र की ओर फैली हुई शैलों का कुछ भाग यदि कमजोर हो तो लहरों के प्रवाह से वह भाग शीघ्र ही कट कर एक आर-पार छिद्र बन जाता है। धीरे-धीरे यह छिद्र बड़ा होकर एक विशाल द्वारा का रूप ले लेता है इसे मेहराब कहते हैं (चित्र संख्या 5.15)।

अलग्र स्तम्भ (Stacks) -उक्त मेहराब की कभी-कभी छत टूट कर गिर जाती है तो मुख्य शैल से उसका एक भाग स्तम्भ के रूप में अलग खडा रह जाता है। जिसे अलग्र स्तम्भ कहते हैं।

तरंग घर्षित चबूतरा (Wave cut platform) - सामुद्रिक भृगु के निर्माण की प्रक्रिया सतत चलती रहने से भृगु पीछे हटता रहता है एवं उसके सम्मुख छिछले जल में डूबा हुआ चबूतरा बन जाता है जिसे तरंग घर्षित चबूतरा कहते हैं।

5.3.4 लहरों का परिवहन कार्य

तटीय क्षेत्र में अपरदन से लहरें अपने साथ मिट्टियाँ, कंकर-पत्थर आदि बहा कर लाती है। इसका कुछ भाग सागर तटीय क्षेत्र में जमा हो जाता है एवं हल्के मिट्टी के कण पानी में मिले रहते हैं जो लहरों द्वारा अपरदन की क्रिया में औजार का कार्य करते हैं।

5.3.5 निक्षेप जन्य भूआकार

तरंग निर्मित चबूतरा - तटीय क्षेत्र में अपरदन से प्राप्त शिलाखण्ड समुद्र किनारे पर जमा होते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप एक समतल चबूतरे जैसी आकृति बन जाती है। यह तरंग निर्मित चबूतरा कहलाता है।

पुलिन (Beaches) - लहरों द्वारा तटीय शैलों के अपरदन से प्राप्त शिलाखण्ड तट के निकट ही जमा हो जाते हैं। इससे तटीय भाग उथला हो जाता है। बालू,कंकर-पत्थर आदि के बने इस उथले भाग को पुलिन कहते हैं जो पर्यटकों के लिए समुद्र तटीय सैर का मनोरंजन स्थल होता है।

रोधिका (Bars) - समुद्र तट पर अपरदित शिलाखण्डों का जमाव कई बार एक समानान्तर भित्ति का रूप ले लेता है। इसे रोधिका कहा जाता है। तट से कुछ दूरी पर इस प्रकार के निक्षेप हो जाने से अपतटीय रोधिका बनती है।

चित्र–5.16 : संलग्न रोधिका

संलग्न भित्ति (Spit) - लहरों द्वारा अपरदित शिलाखण्डों के आडी भित्ति के रूप में जमाव को संलग्न भित्ति कहा जाता है। इसका एक सिरा स्थल से जुडा रहता है और दूसरा सिरा समुद्र की ओर निकला रहता है (चित्र संख्या 5.16)। मुख्य भूमि को किसी द्वीप से अथवा दो द्वीपों को आपस में जोड़ने वाली भित्ति को संयोजक रोधिका कहा जाता है।

अंकुश (Hook)- यदि किसी भित्ति का समुद्रवर्ती विस्तार-चाप की आकृति में हो जाये तो वह भित्ति अंकुश कहलाती है (चित्र-5.17 : अंकुश)। स्थल से जुड़ी हुई यह भित्ति हुक की आकृति समुद्र की ओर फ़ैली रहती है इस के मध्य घिरी हुई खाड़ी को लैगून कहते है।

चित्र–5.17 : अंकुश

बोध प्रश्न- 2

1. परस्पर सम्बन्धित भूआकार हैं -

   (अ) अकुंश व भृगु (ब) पुलिन व मेहराब

   (स) मेहराब व धमि छिद्र (द) गुफाएँ व पुलिन ( )

2. अलग्न स्तम्भ जिस भू-आकार के क्षय से बनता है, वह है -

   (अ) भृगु (ब) अण्डाकार कटान

   (स) पुलिन (द) मेहराब ( )

3. लहरों के औजारों के टकराने से होने वाला अपरदन कहलाता है -

   (अ) घोल (ब) सन्निघर्षण

   (स) जलीय दाब (द) घर्षण ( )

4. लहरों की जिस क्रिया में शिलाखण्ड परस्पर टकरा कर टूटते हैं, वह है -

   (अ) घोल (ब) सत्रिघर्षण

   (स) घर्षण (द) जलीय दाब। ( )

5.4 भूमिगत जल के कार्य

धरातल पर बहते हुए जल की भाँति भूमिगत जल भी काफी बड़े क्षेत्र में परिवर्तन करने में सफल होता है। बहते हुए जल के विपरीत इसकी क्रिया बहुत मन्द और भिन्न होती है। इसका कार्य भौतिक अपरदन के स्थान पर रासायनिक अधिक होता है। यद्‌यपि इसके द्‌वारा अपरदन, परिवहन और निक्षेपण तीनों कार्य किये जाते हैं तथापि भूमिगत जल का भूआकारों पर जो प्रभाव होता है, वह मुख्यत: विलयन और निक्षेपण के कारण ही होता है। चूना प्रदेशों में इन क्रियाओं द्‌वारा बनने वाले भूआकारों को **कार्स्ट भूदृश्य (Karst Topography)** कहते हैं।

5.4.1 अपरदन जन्य भूआकार

भूमिगत जल शैल रंध्रों द्‌वारा भूमि के अन्दर प्रवेश करता है। अत: उसका कार्यक्षेत्र वहीं घोल रन्ध्र तक सीमित रहता है। इसी कारण भूमिगत जल की गति बहुत ही मन्द होती है। मन्द गति होने से भूमिगत जल द्‌वारा भौतिक अपरदन बहुत ही कम होता है। किन्तु रासायनिक अपरदन (Chemical erosion) के रूप में इसका कार्य अद्‌वितीय है। रासायनिक अपरदन मुख्यत: घोल के रूप में होता है। कार्बनयुक्त वर्षा का जल चूने की शैलों पर गिरता है तो वह उन्हें शीघ्रता से घुला देता है। इस घोल-क्रिया से ही भूमिगत चूने एवं खड़िया प्रदेशों में विशिष्ट भूआकारों का निर्माण करता है।

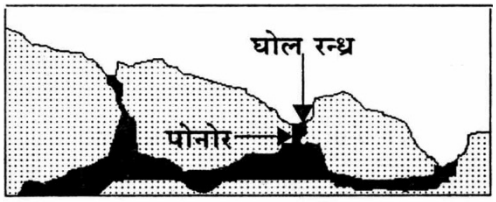

चित्र–5.18 : घोल रन्ध्र व पोनोर

1. **घोल रन्ध्र (Sink Holes) -** जब कार्बन-डाइ-ऑक्साइड युक्त वर्षा का जल चूने की चट्टानों पर बहता है तो घोल-क्रिया द्‌वारा उसमें छोटे-छोटे रन्ध्र बना देता है। इन रन्ध्रों से होकर जल भीतर प्रवेश करता रहता है। इन रन्ध्रों की आकृति कीप (Funnel Shaped) के जैसी होती है। लगातार जल प्रविष्ट होते रहने से इनके निचले भाग में बेलनाकार चौड़ी नलिकाऐं बन जाती है। जिन्हें पोनोर (Ponor) कहते हैं।
2. **विलय रन्ध्र (Swallow Holes) -** घोल रन्ध्र धीरे-धीरे घोल क्रिया द्‌वारा चौड़े होते जाते है। ऐसे अपेक्षाकृत बड़े रन्ध्रों को ही विलय रन्ध्र कहते है।
3. **डोलाइन (Doline) -** ये अपेक्षाकृत और भी बड़े आकार के विलय रन्ध्र होते हैं। इनकी आकृति बेलनाकार (Cylindrical) अथवा कीप के समान होती है। समान्यत: ये 10 मीटर चौड़े और 2 से 15 मीटर गहरे होते हैं।
4. **उवाला (Uvala) -** निरन्तर पार्श्विक अपरदन के कारण अनेक डोलाइन आपस में मिल जाते हैं, जिससे विस्तृत गर्त बन जाता है। इन विस्तृत गर्तो को उवाला कहते हैं। इनमें प्राय: नदियाँ लुप्त हो जाती हैं जिससे उनके आगे की घाटियाँ सूख जाती हैं। इन्हें शुष्क घाटियाँ (Dry Valleys) या अन्धी घाटियाँ (Blind Valleys) कहते हैं।
5. **पोल्जे (Polje) -** कई उवाला के मिल जाने से अत्यन्त विस्तृत खाइयाँ बन जाती हैं। ये विस्तृत खाइयाँ ही पोल्जे कहलाती हैं। इनकी दीवारें तीव्र ढाल वाली होती हैं इनका विस्तार 250 वर्ग किलोमीटर तक पाया जाता है। पंचमढ़ी के निकट वाटर्समेट नामक स्थान पर यह भूआकार देखने को मिलता है ।

6. **हम्स (Hums) -** मुलायम चट्टानों की अपेक्षा कठोर चूने की चट्टानें कम घिस पाती हैं। अत: कठोर चट्टानों से निर्मित भाग छोटे-छोटे टीलों के रूप में उभरे रहते हैं। ऐसे टीले उवाला एवं पोल्जे की सतह पर पाये जाते हैं। ये टीले एकान्त शंक्वाकार पहाड़ी की भाँति प्रतीत होते हैं।

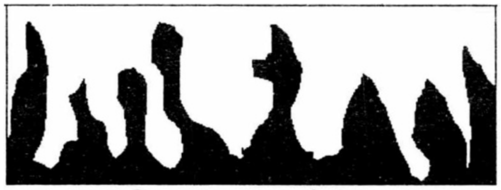
चित्र–5.19 : लैपीज़

7. **लैपीज (Lapies) -** धरातलीय चूने की चट्टानों पर बहते जल के कण के कारण अनेकों आकार के रन्ध्र बन जाते हैं। साथ ही इस जल का प्रभाव चट्टानों के जोड़ों व दरारों पर भी पड़ता है। जल प्रविष्ट होकर इनको गहरा कर देता है। इन रन्ध्रों व गहरे-गहरे गर्तों के कारण समस्त धरातल अन्यन्त ऊबड़-खाबड़ तथा नुकीला सा हो जाता है, जिसे लैपीज कहते हैं ।

8. **कन्दराएं (Caves) -** रन्ध्रों व दरारों से प्रविष्ट जल भीतर ही भीतर चूने की चट्टानों को घोलकर उन्हें खोखला करता जाता है। यह खोखला भाग बडा होकर गुफा की आकृति धारण कर लेता है। भूमिगत जल की अपरदन क्रिया के साथ-साथ इनका विस्तार होता जाता है। विश्व के कई चूना प्रदेशों में काफी बड़ी-बड़ी गुफाऐं मिलती हैं। यू एस ए. के कैन्टकी राज्य की 'मैमथ केव' (Mammoth Cave of Kentucky) लगभग 13 किलोमीटर लम्बी है।

9. **प्राकृतिक पुल** (Natural Bridge) - यदि गुफा की छत का कुछ अंश कमजोर होकर टूट जाये तो शेष बचा हुआ अंश प्राकृतिक पुल जैसा प्रतीत होता है।

5.4.2 परिवहन कार्य

भूमिगत जल बड़ी मात्रा में घोल के रूप में पदार्थो का परिवहन करता है। समान्यत: इस घोल में कैल्शियम कार्बोनेट, मैग्नेशियम, लोहा व सिलिका की मात्रा अधिक होती है। भूमिगत जल की परिवहन क्षमता कम हो जाने पर इन खनिजों का विभिन्न आकृतियों में निक्षेपण होने लगता है।

5.4.3 निक्षेप जन्य भूआकार

1. **आश्चुताश्म व निश्चुताश्म (Stalactite and Stalagmite) -** चूने के प्रदेशों में गुफाओं की छत से धीरे-धीरे रिसता हुआ जल चूने व अन्य खनिजों का निक्षेपण करता रहता है। जल में घुले हुए चुने का कुछ अंश छत पर ही चिपकता रहता है। इस क्रिया से कालान्तर में छत के आधार पर नीचे लटकते हुए चूना-स्तम्भ बन जाते हैं। ये स्तम्भ छत की ओर मोटे एवं गुफा के नीचे की ओर पतले होते हैं। इन्हें आश्चुताश्म कहते हैं। छत से टपक कर गुफा की तली पर गिरने वाली जल की बूँदों से भी इसी प्रकार के ऊपर उठते हुए इन स्तम्भों की रचना होती रहती है। गुफा की तली से ऊपर उठे हुए इन स्तम्भों को निश्चुताश्म कहते हैं। ये

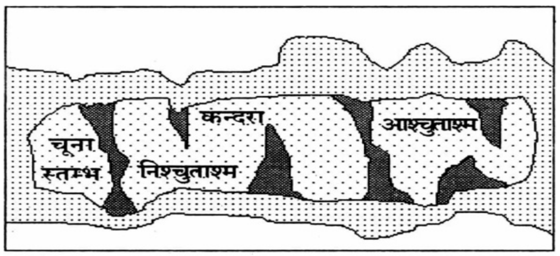

चित्र–5.20 : कन्दरा व सम्बन्धित स्थलाकृतियाँ

स्तम्भ कन्दरा की छत से लटकने वाले स्तम्भों की अपेक्षा छोटे किन्तु मोटे होते हैं। साधारणत: ये स्तम्भ सिलिका और चूने से बने होते हैं। जब कभी गुफा की छत से लटकते हुए और तली से ऊपर उठे हुए स्तम्भ मिल जाते हैं तो वहाँ तल से छत तक एक पूर्ण स्तम्भ बन जाता है। इसे चूना स्तम्भ कहते हैं।

2. **खनिज शिराएं (Mineral Veins) -** चट्टानों की दरारों व संधियों में भूमिगत जल के द्वारा कई खनिजों का निक्षेपण हो जाता है। यह निक्षेपण रैखिक रूप में अथवा शिराओं के रूप में होता है। अत इन्हें खनिज शिराएं कहते हैं। इन शिराओं में सामान्यत क्वार्ट्ज व कैल्साइट के अतिरिक्त बहुमूल्य खनिज जैसे -सोना, चाँदी, सीसा, जस्ता, टिन, तांबा, आदि भी मिलते हैं।

5.5 भूमि संसाधन एवं संरक्षण

भूमि प्रकृति द्वारा दिया गया एक प्राकृतिक उपहार है, जो प्राकृतिक वनस्पति और समृद्धता के साथ-साथ जैवमण्डल के घटकों के लिए आवश्यक खाद्य पदार्थ उपलब्ध करवाती है। भूमि के अन्तर्गत स्थलखण्ड के विभिन्न भू-आकार (पर्वत-पठार-मैदान इत्यादि) सम्मिलित हैं जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव के क्रियाकलापों को प्रभावित करते हैं। जैवमण्डल की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति भूभाग द्वारा ही होती है।

भूमि समस्त जैव जगत की आवास स्थली है जहाँ प्रकृति और जीव-जन्तुओं के बीच परस्पर अन्तरक्रिया निरन्तर चलती रहती है। विश्व में लगभग 37 प्रतिशत उपयोग योग्य भूमि है जिसका सर्वाधिक क्षेत्र वन के लिए आरक्षित है। उपयोग योग्य भूमि के केवल 11.2 भूमि पर कृषि की जा रही है। विश्व के एशिया महाद्वीप में सर्वाधिक (16.9 प्रतिशत क्षेत्र पर) कृषि होती है। मध्य अमेरिकी देशों में स्थाई चारागाहों का विकास अपेक्षाकृत अधिक है। इसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका में लगभग आधी से अधिक भूमि वनों के लिए आरक्षित है। अफ्रीका महाद्वीप में लगभग 39.6 प्रतिशत भूमि अन्य कार्यों इत्यादि में प्रयुक्त हो रही है।

भारत की लगभग 42 प्रतिशत भूमि पर मैदान विस्तृत हैं। 28 प्रतिशत क्षेत्र में पठार तथा 30 प्रतिशत से कम भाग में पर्वत व पहाडियाँ फैली हैं। इस प्रकार लगभग 62 प्रतिशत भू-भाग ही स्थलाकृतिक दृष्टि से उपयोग योग्य है। राजस्थान के 58 प्रतिशत भाग पर मरूस्थलीय दशाएँ हैं जबकि लगभग 15 प्रतिशत भू-भाग में अरावली पर्वत श्रृंखला का विस्तार है।

5.5.1 भूमि अवनयन

भूमि जीवमण्डल का महत्वपूर्ण घटक है, जो जीव-जन्तुओं के लिए आवश्यक पोषक तत्व व आवास उपलब्ध करवाता है। भूमि अवनयन से तात्पर्य प्राकृतिक व मानवीय कारकों द्वारा भूमि में लाये गये परिवर्तनों से हैं जिनसे शनैः-शनैः भूमि की उपादेयता कम होती चली जाती है। यद्यपि भूमि के अन्तर्जात प्रक्रम (भूकम्प, ज्वालामुखी आदि) तथा बर्हिजात प्रक्रम (प्रवाहित जल, भूमिगत जल, सागरीय लहरों, पवन, हिमनद आदि) द्वारा निरन्तर अपरदन होता रहता है किन्तु मानव के क्रियाकलाप, जैसे वन विनाश, खनन, पशुचारण, भूमि उपयोग में परिर्वतन, भूमि प्रबन्धन की अनदेखी इत्यादि, इसकी गति को बढ़ाते हैं। आवश्यकताओं की उपेक्षा आदि कई कारकों ने धीरे-धीरे लगातार भूमि का अवनयन ही किया है। भूस्खलन, मृदा अपरदन, जिनके कारण भूसंसाधन की उपादेयता घटती जाती है। अत: इसका संरक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है।

5.5.2 भूसंरक्षण (Soil Conservation)

भूअपरदन भारत के विभिन्न क्षेत्रों की एक प्रमुख समस्या है। राजस्थान राज्य में 33 प्रतिशत से अधिक भूमि पर भू-अपरदन व क्षारीयता का प्रभाव है। राज्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये समुचित खाद्यान्नों की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक सुधार करने के लिए मृदा संरक्षण एक तात्कालिक आवश्यकता है। राज्य में क्षारीय मृदाओं को कृषि-योग्य बनाने पर आजकल अधिक बल दिया जा रहा है। मृदा संरक्षण के कुछ उपाय नीचे दिये गये है।

(i) **नियन्त्रित पशुचारण (Restricted Grazing)** अव्यवस्थित पशुचारण से जंगलों और घास के मैदानों में जल और पवन अपरदन अधिक होते हैं। भूमि पर वनस्पति आवरण न होने से बरसात में जल द्वारा और ग्रीष्म ऋतु में पवन द्वारा कटाव अधिक होता है। गर्मियों में जब घास की कमी हो जाती है तब पश्चिमी राजस्थान के रायका, परिहार, बिलोची और सिन्धी आदि घुमक्कड़ पशुपालक अपनी भेड़ें और गायों के झुण्डों को लेकर उत्तरी व दक्षिणी राजस्थान की ओर जाकर पशु चारण करवाते हैं। इससे भी मृदा का निम्नीकरण होता है। अत पशुपालकों के इस विशाल समुदाय के लिये स्थायी आवास व चारागाह बनाना आवश्यक है।

(ii) **हल द्वारा जुताई (Tilling soil by Plough)** आजकल खेतों की जुताई ट्रैक्टर द्वारा की जाने लगी है। इससे जुताई गहरी होती है और जुताई के बाद तेज वायु से मिट्टी की ऊपरी परत उड़ जाने का भय रहता है। ट्रैक्टर की जुताई से छोटे-छोटे जंगली पेड़-पौंधे भी उखड़ जाते हैं। ट्रैक्टरों द्वारा जुताई से पश्चिमी राजस्थान में खेजडी के छोटे पौधों को बहुत हानि हुई है। खेजडी का पौधा प्राकृतिक रूप से स्वत: ही उगता है। इसके बीज से नर्सरी में पौधे नहीं उगाये जा सकते। अत: खेजडी के छोटे पौधों को ट्रैक्टरों द्वारा जुताई करके उखाड़ने से मिट्टी अनुपजाऊ हो जाती है क्योंकि खेजडी की जड़ों में नाइट्रोजन इकट्ठा करने वाले जीवाणु होते हैं जो मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। इसीलिये राजस्थान में खेतों की जुताई हल द्वारा करना ही अधिक उपयोगी है।

(iii) **समोच्च बंध (Contour Bunding)** इस भूसंरक्षण विधि में पहाड़ी ढालों पर समोच्च रेखा (Contour) के सहारे-सहारे मिट्टी, पत्थर या घास और झाड़ियों के बाँध बनाये जाते हैं। ये बंध, बहते हुए पानी में रोधिका का काम करते हैं और जल के वेग को कम करते हैं। इस उपाय से पहाड़ी भागों पर जल अपरदन अधिक नहीं होता और ऊपर से बहकर आई मिट्टी भी बन्धों के सहारे रूक जाती है। बालुई मिट्टी और काली मटियारी मिट्टियों को छोड्कर मेड़बन्धी का कार्य अन्य सभी मिट्टियों में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। बालुई मिट्टी के कण ढीले होते हैं और पानी के प्रवाह के साथ शीघ्र बहने लगते हैं और इन बंधों पर शीघ्र जमा हो जाते हैं। मटियारी मिट्टी में गर्मियों में दरारें पड़ जाती हैं और उसमें बने हुए बंध भी शीघ्र टूटकर बह जाते हैं। इसके अतिरिक्त यदि मिट्टी की गहराई 8 सेमी. से कम हो तो वहाँ भी मेड़बन्धी नहीं की जा सकती ।

(iv) **नाला बंध (Stream Bunding)** छोटे नदी-नालों में आवश्यकता अनुसार कम ऊँचाई वाली पक्की दीवारें बनाकर जल के वेग को कम किया जा सकता है। इन्हें एनिकट

(Anicut) भी कहते हैं। इन पक्के अवरोधों के बनाने से भूमिगत जलस्तर बढ़ जाता है और भूमि-कटाव कम हो जाता है।

(v) **वेदिकाकरण (Terracing)** इस विधि में पहाड़ी ढालों की विभिन्न ऊँचाइयों पर पक्की या कच्ची, छोटी दीवारें बनाई जाती हैं जो वेदिकाओं के समान दिखाई देती हैं। इससे बहते हुए वर्षा के जल का वेग कम हो जाता है और मिट्टी में जल का अवशोषण भी होता है। इस विधि का उपयोग उदयपुर, राजसमन्द, चित्तौड़गढ़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा आदि जिलों में सफलतापूर्वक किया जा सकता है जहाँ अरावली पर्वत श्रेणियाँ समानान्तर रूप में फैली हुई है।

(vi) **खड्ड उद्धार (Ravine Rejuvenation)** इस विधि में मेड़बन्धी, नाला-बन्धी, वेदिकाकरण आदि उपायों के अतिरिक्त वनस्पति आच्छादन भी किया जाता है जिससे पडे पौधों की जड़ें मिट्टी को संगठित रखें और मिट्टी का विघटन न हो। राजस्थान के 60 प्रतिशत खड्ड क्षेत्र सरकारी भूमि में हैं। इन्हें चारागाह उगाने, पौधरोपण करने और छोटे-छोटे बगीचे बनाने के काम में लिया जा सकता है। वर्ष 1967 में केन्द्रीय खड्ड-उद्धार बोर्ड की स्थापना की गई थी जिसके अन्तर्गत कोटा, बाराँ, सवाई माधोपुर और धौलपुर जिलों में खड्ड-उद्धार कार्यक्रम चल रहा है।

(vii) **बालुई टीलों का स्थायीकरण (Stabilization of Sand-dunes)** मिट्टी संरक्षण की यह पद्धति पश्चिमी राजस्थान में रेतीले टीलों से पवन द्वारा मिट्टी अपरदन को रोकने के लिये अपनाई गई है। इस विधि में टीलों पर कंटीले तारों को लगाकर उस क्षेत्र को सुरक्षित किया जाता है और फिर टीलों पर घास व छोटी झाड़ियों का रोपण किया जाता है। पवनों की प्रचलित दिशा में लम्बी घास और झाड़ियों को 3-3 मीटर के अन्तराल पर रोपित किया जाता है। घास और झाड़ियों की जड़ें बढ़ जाने पर वे रेतीली व ढीली मिट्टी को थामें रखती हैं और पवन अपरदन कम हो जाता है।

मरूस्थलीकरण क्रिया को रोकने और मिट्टी अपरदन को कम करने के लिये राजस्थान में **मरू विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme), सूखा सम्भाव्य क्षेत्र कार्यक्रम (Drought Prone Area Programme) तथा जल-भरण विकास कार्यक्रम (Watershed Development Programme) भी** चलाये जा रहे हैं। इन सभी कार्यक्रमों में मिट्टी संरक्षण प्रमुख उद्देश्य है क्योंकि उपजाऊ मिट्टी पर ही अच्छी फसलें पैदा की जा सकती हैं और इसी पर हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था निर्भर करती है।

बोध प्रश्न - 3

1. जो भूमि अवनयन से सम्बन्धित नहीं है -

   अ) मृदा अपरदन (ब) बीहड़

   (स) पर्वत निर्माण (द) भूस्खलन ( )

2. अपरदन-जन्य भूआकार युग्म है -

   (अ) उवाला-निश्चुताश्म (ब) पोल्जे-खनिज शिराऐं

   (स) डोलाइन-लैपीज (द) पोनोर-आश्चुताशम। ( )

3.	कार्स्ट-भूदृश्य जिन प्रदेशों में बनते हैं -		
	(अ) चूना	(ब) मरूस्थली	
	(स) हिमाच्छादित	(द) बलुई।	( )
4.	भूमिगत जल के द्वारा जिस प्रकार का अपरदन होता है, वह है -		
	(अ) भौतिक	(ब) रासायनिक	
	(स) जैविक	(द) ऑक्सीकरण।	( )

5.6 सारांश

1. पवनें उष्ण - शुष्क क्षेत्र में प्रभावी रहती हैं।
2. पवनों के तीन कार्य - अपरदन, परिवहन व निक्षेपण हैं।
3. अपरदन की विधियाँ - अनावृतण, अपवाहन, अपघर्षण व सन्निघर्षण।
4. अपरदन जन्य भूआकार-पवन गर्त, जालीदार शिला, यारडांग, छत्रक, ज्यूज़ेन, भूस्तम्भ, गुम्बदाकार टीले।
5. परिवहन - बालुका उड़ाना व सरकना (creep)
6. निक्षेप जन्य भूआकार - बालुका स्तूप (पवनानुवर्ती व अनुप्रस्थ), उर्मि चिह्न, लोयस, प्लाया आदि।
7. लहरों में जल कणों की गोलाकार गति।
8. गोलाकार गति में सबसे ऊपर का भाग-शीर्ष सबसे नीचे का भाग-द्रोणी।
9. दो शीर्षों के मध्य दूरी-लहर की लम्बाई।
10. द्रोणी व शीर्ष के बीच का अन्तर-लहर की ऊँचाई।
11. लहरों द्वारा अपरदन चार प्रकार से - जलीय दाब क्रिया, घर्षण क्रिया, सन्निघर्षण व घोल क्रिया।
12. लहरों के अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक - लहरों की शक्ति, तटीय शैलों की संरचना, तटीय शैलों की कठोरता, शैल परतों का नमन, शैल परतों का विन्यास, लहरों के आक्रमण की दिशा।
13. अपरदन जन्य भूआकार - सामुद्रिक भृगु, खाड़ियाँ समुद्राभिमुख कगार, अण्डाकार कटान, सागरीय गुफाएँ, धमि छिद्र, मेहराब, अलग्न स्तम्भ, तरंग घर्षित चबूतरा आदि।
14. निक्षेप जन्य भूआकार- तरंग निर्मित चबूतरा, पुलिन, रोधिका, संलग्न भित्ति, संयोजक रोधिका, अंकुश आदि।
15. भूमिगत जल चूना प्रदेशों में रासायनिक अपरदन के द्वारा प्रभावी होता है।
16. अपरदन जन्य भूआकार-घोल रन्ध्र, पोनोर, विलय रन्ध्र, डोलाइन, उवाला, पोल्जे, अन्धी घाटियाँ, हम्स, लैपीज, कन्दराऐं, प्राकृतिक पुल।
17. निक्षेपजन्य भूआकार-आश्चुताश्म, निश्चुताश्म, चूना स्तम्भ, खनिज शिराऐं आदि।
18. भूमि संसाधन समस्त जीव -जगत के लिये अत्यन्त उपयोगी संसाधन है।
19. ऋतु अपक्षय व अपरदन के साधन भूमि अवनयन के प्रमुख साधन हैं।

20. भूस्खलन, मृदा अपरदन, बीहड़ आदि भूअवनयन के ही रूप हैं।

21. भूमि संसाधन का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य अनेक विधियों को अपना कर किया जा सकता है।

5.7 शब्दावली

1. इस अध्याय में सभी शब्दावलियों को आसान भाषा तथा यथासम्भव चित्रों के माध्यम से स्पष्ट समझा दिया गया है।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Arthur Holms : Principles of Physical Geography, Thomas Nelson & Sons, New York, 1949
2. A.N. Strahler : Introduction to Physical Geography, John Wiley & Sons, London
3. J.A. Steers : Unstable Earth, Metheu & Company, London, 1961
4. सविन्द्र सिंह : भूआकृतिक विज्ञान, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर
5. मामोरिया व रतन जोशी : भौतिक भूगोल, साहित्य भवन, आगरा, 2004
6. शर्मा व मिश्रा : भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर,2005

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. (ब) 2. (द) 3. (स)

बोध प्रश्न - 2

1. (स), 2. (द), 3. (द) 4.(ब)

बोध प्रश्न - 3

1. (स), 2. (स) 3. (अ) 4. (ब)

5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पवन -गर्त पवनों की किस क्रिया द्वारा बनते हैं?
2. पवनों द्वारा अपरदन किन विधियों से होता है?
3. छत्रक किस प्रकार बनते हैं?
4. पवनों के कार्य क्षेत्र की व्याख्या करते हुए उसके अपरदन जन्य भू आकारों का वर्णन कीजिये।
5. पवनों के कार्यो को समझाते कीजिये ।
6. लहरों में जलकणों की गति किस प्रकार होती है।
7. लहरों की लम्बाई किसे कहते हैं?
8. लहरों के अपरदन कार्य का विस्तार से वर्णन कीजिए।

9. लहरों के निक्षेप कार्य से जनित भू आकारों का वर्णन कीजिये।
10. छत से लगे स्तम्भ को क्या कहते हैं?
11. ऊबड़-खाबड़ व नुकीले चूना प्रदेश को क्या कहते हैं?
12. चूना स्तम्भ कैसे बनते हैं?
13. भूमिगत जल के कार्यों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई-6 : वायुमण्डल

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 वायुमण्डल का संघटन एवं सरचना
    6.2.1 वायुमण्डल की सामान्य विशेषताएं
    6.2.2 वायुमण्डल का विस्तार
    6.2.3 वायुमण्डल का संघटन
    6.2.4 वायुमण्डल की संरचना
6.3 पर्यावरणीय प्रदूषण
    6.3.1 प्रदूषक व उनके प्रकार
    6.3.2 पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रकार
6.4 वायुमण्डलीय आपदाएँ
    6.4.1 आपदाओं का प्रकार
    6.4.2 वायुमण्डलीय आपदा प्रबन्ध
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे :

- वायुमण्डल का संघटन व विस्तार,
- वायुमण्डल की संरचना,
- पर्यावरण प्रदूषण व प्राकृतिक आपदाएँ, तथा
- प्रदूषण व आपदाओं पर नियंत्रण व निवारण के उपाय।

6.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में वायुमण्डल की सामान्य विशेषताओं, उसके विस्तार, संघटन व संरचना पर विस्तार से चर्चा की गई है। वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण एवं प्राकृतिक आपदाओं की समस्याएँ विकराल रूप लेती जा रही हैं। इनका विस्तृत विवरण इस अध्याय में दिया गया है। साथ ही प्रदूषण एव आपदाओं के प्रभाव को कम करने अथवा उन पर नियन्त्रण करने की विधियाँ भी बताई गई हैं।

6.2 वायुमण्डल का संघटन एवं संरचना

पृथ्वी के चारों और हजारों किलोमीटर ऊँचाई तक फैले गैसीय आवरण को वायुमण्डल कहते हैं। स्थलमण्डल तथा जल मण्डल की भांति यह भी हमारी पृथ्वी का अभिन्न अंग है। इसमें उपस्थित विभिन्न गैसें, धूलकण, जलवाष्प, तापमान व दिनप्रतिदिन घटने वाली मौसमी घटनाएँ इसकी उपस्थिति का आभास कराती हैं। फिन्च और ट्रिवार्था के अनुसार "वायुमण्डल गैसों का आवरण है जो धरातल से सैंकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई तक विस्तृत है तथा पृथ्वी का अभिन्न अग है।"
इस प्रकार से वायुमण्डल लिफाफे की भाँति पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण यह इससे अलग नहीं हो सकता।

6.2.1 वायुमण्डल की सामान्य विशेषताएँ

वायुमण्डल पृथ्वीतल पर समान रूप से फैला हुआ है। इसमें घटने वाली समस्त वायुमण्डलीय घटनाओं एवं प्रक्रमों का मूल कारण सूर्य से विकीर्ण होने वाली ऊर्जा है। वायु का न कोई रंग होता है, ना गन्ध और ना ही स्वाद। इसका एक अन्य मुख्य गुण इसकी गतिशीलता (Mobility), नमनशीलता (Elasticity) तथा सम्पीडनशीलता (Compressibility) है। वायु में क्षैतिज संचलन होने पर ही इसकी गतिशीलता की अनुभूति होती है। जल तथा थल से कम सघन होने पर भी वायु तथा इसके संघटकों का भार होता है तथा दबाव डालते हैं। प्रतिरोधी होने के कारण यह वायुमण्डल के बाहर से प्रवेश करने वाले उल्का पिण्डों को रगड़ द्वारा नष्ट कर देता है।
इसमें सम्पीडनशीलता का गुण होने के कारण धरातल से ऊँचाई में वृद्धि के साथ ही इसके घनत्व में कमी होती जाती है। स्वभावत: धरातल के निकट वायु भारी तथा ऊँचाई की ओर हल्की होती जाती है। आधुनिकतम रॉकेट प्रेक्षणों एवं अन्तरिक्ष स्थित भू-उपग्रहों से एकत्रित सूचनाओं से पता चलता है कि धरातल से 50 किमी की ऊँचाई तक गैसों का अनुपात स्थिर रहता है। वायुमण्डल के कुल भार का लगभग आधा भाग धरातल से 5500 मीटर की ऊँचाई तक ही पाया जाता है तथा 30 किमी की ऊँचाई तक इसका 99 प्रतिशत भाग केन्द्रित है ।
वायुमण्डल का एक अद्भुत गुण सूर्य से आने वाली तीव्र व हानिकारक पराबैंगनी किरणों से पृथ्वी की रक्षा करना है तथा पार्थिव विकिरणों को अवशोषित कर हरित गृह प्रभाव (Green House Effect) द्वारा पृथ्वी तल के तापमान को नीचा नहीं होने देना है। परिणामस्वरूप वायुमण्डलीय तापमान जीवधारियों के लिए उपयुक्त बना रहता है। वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प विभिन्न प्रकार की मौसमी घटनाओं जैसे मेघ, पवन, तूफान, वर्षा आदि को जन्म देती है। मौसम एवं ऋतु परिवर्तन भी वायुमण्डलीय घटनाओं के ही परिणाम हैं।

6.2.2 वायुमण्डल का विस्तार

वायुमण्डल की ऊँचाई के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों में समय-समय पर संशोधन होता रहा है। नवीनतम जानकारियों के आधार पर इसकी ऊँचाई 80,000 कि.मी. से भी अधिक मानी गयी है। यद्यपि 1600 किमी की ऊँचाई के पश्चात् वायुमण्डल बहुत विरल हो जाता है।

6.2.3 वायुमण्डल का संघटन

वायुमण्डल का गठन अनेक प्रकार की गैसों, जल वाष्प, धुएँ के कणों आदि से हुआ है।

1. **गैसें (Gases)** : वायुमण्डल विभिन्न प्रकार की गैसों का यांत्रिक मिश्रण है जिसमें मुख्यत: 9 प्रकार की गैसें पायी जाती हैं। ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, आर्गन, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, हाइड्रोजन, नियॉन, हीलियम, क्रिप्टॉन तथा ओजोन आदि प्रमुख संघटक गैसें है। इन सभी गैसों में नाइट्रोजन (78.08%) तथा ऑक्सीजन (20.94%) प्रमुख हैं। ये सम्मिलित रूप, से वायुमण्डलीय गैसों के 99 प्रतिशत भाग का निर्माण करती हैं। भारी गैसें वायुमण्डल की निचली परतों तथा हल्की गैसें ऊपरी परतों में स्थित होती हैं। निम्नांकित तालिका - 6.1 शुष्क वायु में विभिन्न गैसों की अनुपातिक औसत मात्रा को प्रदर्शित करती हैं।

तालिक - 6.1 : धरातल से 25 किमी. की ऊँचाई तक शुष्क वायु में विभिन्न गैसों की औसत मात्रा

गैस	प्रतीक	शुष्क वायु का आयतन का प्रतिशत	भार का प्रतिशत
नाइट्रोजन	N_2	78.08	75.527
ऑक्सीजन	O_2	20.94	22.43
आर्गन	Ar	0.93	1.282
कार्बन डाइ ऑक्साइड	Co	20.03	0.0456
नियोन	Ne	0.0018	-
हीलियम	He	0.005	-
ओजोन	O_3	0.00006	-
हाइड्रोजन	H	0.00005	-
क्रिप्टॉन	K_2	न्यूनाधिक	-

वायुमण्डल में जीवनदायिनी कहलाने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण गैस ऑक्सीजन है। इसके अभाव में कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। ऑक्सीजन अन्य रासायनिक तत्वों के साथ सुगमता से मिलकर अनेक प्रकार के योगिकों (compounds) की रचना करती है तथा प्रज्ज्वलन के लिए यह गैस अनिवार्य है। नाइट्रोजन दूसरी महत्वपूर्ण गैस है जिसका वायुमण्डल में प्रमुख कार्य ऑक्सीजन को तरल (dilute) करके प्रज्वलन का नियमन करना है। अपरोक्ष रूप से नाइट्रोजन विभिन्न प्रकार के ऑक्सीकरण (Oxidation) में सहायता पहुँचाती है। विभिन्न प्रकार के जीवों में पाये जाने वाले नाइट्रोजनी यौगिकों में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का उपयोग होता है। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड तीसरी प्रमुख गैस है जो वस्तुओं के जलने से व जीवधारियों की श्वसन क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का मुख्य कार्य हरितगृह प्रभाव (Green House Effect) को विकसित कर भूतल से उत्सर्जित पार्थिव ऊर्जा के रूप में निकले दीर्घतरंग विकिरण को सोख कर वायुमण्डल के निचले भाग को गर्म रखना है। वायुमण्डल के ऊपरी भाग में पाई जाने वाली ओजोन गैस सूर्य से आने वाली पराबैंगनी (Ultraviolet) किरणों का अवशोषण कर उनके जहरीले प्रभावों से पृथ्वी की रक्षा करती है।

जलवाष्प (Water Vapour)

जलवाष्प वायुमण्डल का सर्वाधिक परिवर्तनशील तत्व है। आर्द्रता तथा तापक्रम के अनुसार जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। धरातल के निकट इसकी मात्रा 0 से 5 प्रतिशत

तक पायी जाती है। वायु को जलवाष्प की प्राप्ति झीलों, नदियों, सागरों तथा वनस्पतियों के भीतर की वाष्पीकरण क्रिया द्वारा होती है। तापमान, वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा को सर्वाधिक प्रभावित करता है। भूमध्य रेखा पर अधिक वर्षा व मेघों की उपस्थिति के कारण जलवाष्प की मात्रा अधिक होती है। मरूस्थलीय क्षेत्रों में उच्च तापमान के कारण न्यूनतम जलवाष्प पायी जाती है। ध्रुवीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण कम होने से शुष्क वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा बहुत कम होती है। जलवाष्प वायुमण्डल की निचली पर्तों तक ही सीमित रहती है। ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ जलवाष्प की मात्रा में कमी होती जाती है। एक अनुमान के अनुसार वायुमण्डल के सम्पूर्ण जलवाष्प का 90 प्रतिशत भाग धरातल से 8 किमी की ऊँचाई तक सीमित है। इसके उपर जलवाष्प नहीं पायी जाती। अनुमानतः सूर्य ताप के प्रभाव से प्रति सैकण्ड पृथ्वी के विभिन्न जल स्रोतों से 1.6 करोड़ टन जल वाष्प बन कर उड़ जाता है। यदि वायुमण्डल में मौजूद समस्त जलवाष्प घनीभूत (condense) होकर वर्षा में बदल जाये तो समस्त धरातल पर 2.5 से.मी. वर्षा होगी।

जलवाष्प वायुमण्डल का अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यह आंशिक तौर पर सौर विकिरणों (Solar radiation) तथा पार्थिव विकिरणों (Terrestrial radiation) को अवशोषित कर भूतल के तापमान को सम रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त वायुमण्डल में घनीभूत आर्द्रता के विविध रूपों जैसे बादल, वर्षा, कुहरा, असि, तुषार, पाला व हिम आदि का प्राप्त स्रोत है। वायुमण्डलीय जलवाष्प ही पृथ्वी के विभिन्न भागों में चलने वाले चक्रवातों, प्रतिचक्रवातों, तूफानों, तड़ित, झंझावतों व टाइफून इत्यादि को शक्ति प्रदान करती है।

धूलकण (Dust particles)

वायुमण्डल की निचली परतों में असंख्य धूलकण तैरते रहते हैं। वायुमण्डलीय गैसों रख जलवाष्प के अतिरिक्त जितने भी ठोस पदार्थ कणों के रूप में उपस्थित रहते हैं उन्हें धूलकणों की संज्ञा दी जाती है। इनकी उत्पत्ति मरूस्थलों की रेत के उड़ने, ज्वालामुखी उद्‌गार व उल्कापात तथा पुष्प परागों एवं धुएँ से निकले कणों से होती है। इन धूलकणों की उपस्थिति भी वायुमण्डल के निचले भाग में ही ज्यादा पायी जाती है।

धूलकणों का सौर विकिरणों के परावर्तन (reflection), प्रकीर्णन (scattering) तथा अवशोषण (absorption) करने में विशेष योगदान रहता है। गोधूलि की अवधि व ऊषाकाल की तीव्रता तथा अवधि इन धूल कणों की उपस्थिति के आधार पर निर्धारित होती है। धूलकणों का वायुमण्डलीय गैसों के साथ मिलकर जो वर्णनात्मक प्रकीर्णन (Selective Scattgering) होता है उसके परिणाम स्वरूप आकाश नीला दिखाई पड़ता है तथा सूर्यास्त व सूर्योदय के समय इसका रंग लाल होता है। वायुमण्डल में घनीभवन (condentation) क्रिया के लिए जल ग्राही नाभिकों (Hydroscopic) का होना आवश्यक है। कुछ विशिष्ट धूलकण ऐसे नाभिकों का काम करते हैं इनके चारों ओर जलवाष्प के कण जमा हो जाते हैं जो वर्षा, कुहरा व मेघ निर्माण में मदद करते हैं।

6.2.4 वायुमण्डल की संरचना (Structure of Atmosphere)

भूतल के चारों ओर फैले वायुमण्डल का निचला भाग ही मनुष्य के लिए युगों से महत्वपूर्ण रहा है। 20वीं शताब्दी में हुई आधुनिक खोजों तथा विभिन्न प्रकार के मौसम सूचक गुब्बारों, राकेटों, वायुयानों, ध्वनि व रेडियो तरगों, कृत्रिम उपग्रहों, अन्तरिक्षयानों आदि द्वारा एकत्र की गई

सूचनाओं के आधार पर वायुमण्डल का ऊपरी भाग भी हमारे लिए अब महत्वपूर्ण हो गया है। वायुमण्डल के इस भाग के बारे में (1957-62) के मध्य किये गये अनेक शोध कार्यों से नये-नये तथ्य प्रकाश में आये हैं। तिसरा देबोर, सर नैपियर शॉ, पिकार्डो, फैरल व बार मेंकेनली जैसे अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने वायुमण्डल के बारे में अनेक रहस्योद्घाटन किये है। अभी तक प्राप्त सूचनाओं तथा प्राप्त ज्ञान के आधार पर वायुमण्डल को अनेक समानान्तर परतों में विभाजित किया गया है।

1. **क्षोभ मण्डल (Troposphere) :** यह वायुमण्डल की सबसे निचली सक्रिय तथा सघन परत है। इसमें वायुमण्डल के कुल आणविक भार का 75 प्रतिशत केन्द्रित है। इस पक्षत में आर्द्रता, जलकण, धूलकण, वायुधुन्ध (aerosal) तथा सभी प्रकार की वायुमण्डलीय विक्षोभ व गतियाँ सम्पन्न होती है। धरातल से इस परत की औसत ऊँचाई 14 किमी. मानी गई है। यह परत ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर जाने पर पतली होती जाती है। भूमध्य रेखा पर इसकी ऊँचाई 18 किमी. तथा ध्रुवों पर 8 - 10 किमी के मध्य मानी गई है। इस परत की सबसे प्रमुख विशेषता इसमें धरातल से ऊँचाई में जाने पर तापमान में कमी होना है। क्रचर (Crutcher) के अनुसार इस परत में औसत तापक्षय दर (Lapse rate) 6.5^0C प्रति किमी. है। ताप क्षय की दर ऋतु परिवर्तन, वायुदाब व स्थानीय धरातल की प्रकृति से भी प्रभावित होती है। तटीय क्षेत्रों में शीत ऋतु में ताप क्षय की दर कम होती है जबकि महाद्वीपों के आन्तरिक भागों तथा पर्वतों से घिरी घाटियों में ताप क्षय दर ऋणात्मक होती है। इसमें ऊँचाई के साथ ताप बढ़ता है। यह परत सभी प्रकार के मेघों तथा तूफानों की बाहरी सीमा बनाती है। वायु यहाँ पूर्णत: अशान्त रहती है। इसमें निरन्तर विक्षोभ बनते रहते हैं तथा संवाहन धाराएँ चलती रहती हैं। यह भाग विकिरण (Radiation), संचलन (Conduction) तथा संवाहन (Convenction) द्वारा गरम और ठण्डा होता रहता है। इसमें संवाहन धाराएँ अधिक चलने से इसे संवाहनीय प्रदेश (Convectional zone) या उद्वेलित संवाहन स्तर (Turbulent convective strata) भी कहते हैं।
2. **क्षोभसीमान्त स्तर (Tropopause) :** यह वायु मण्डल का वह भाग है जहाँ क्षोभ मण्डल की सीमा समाप्त होती है तथा समतापमण्डलीय पेटी प्रारम्भ होती है। इस संक्रमण परत में समताप मण्डल व क्षोभ मण्डल दोनों के गुण विद्यमान रहते हैं। इस परत की चौड़ाई लगभग 1.5 किमी है। इस पेटी में संवाहनीय धाराएँ तथा परिवर्तन मण्डल की हवाएँ चलना बन्द हो जाती हैं। समस्त मौसमी घटनाएँ इस परत से नीचे तक ही क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा में घटित होती हैं। अत: इसे मौसमी परिवर्तनों की छत भी कहा जाता है।
3. **समताप मण्डल (Stratosphere) :** क्षोभ सीमान्त या मध्य स्तर (Tropopause) के ऊपर स्थित वायुमण्डल के इस भाग को समताप मण्डल कहते हैं। टीजरेन्स डिबोर्ट ने समताप मण्डल परत की जानकारी देते हुए बताया कि तापमान परिवर्तन की घटनाएँ क्षोभ मण्डल तक ही सीमित हैं। क्षोभसीमा के ऊपर 50 किमी. तक एक ऐसा क्षेत्र विस्तृत है जहाँ तापमान स्थिर रहते हैं। इस कारण से इसे समताप मण्डल (Isothermal zone) कहते हैं

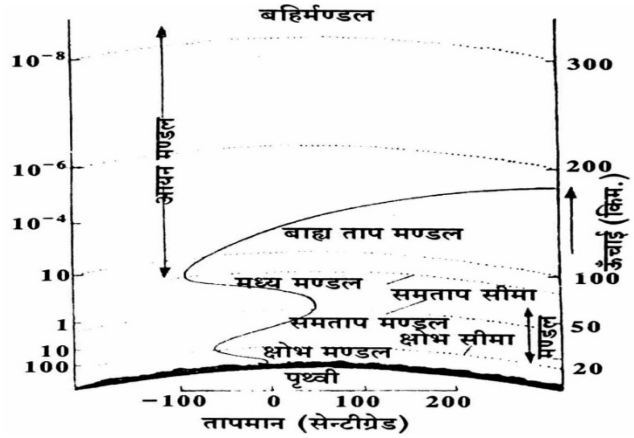

चित्र - 6.1 : वायुमण्डल का विस्तार एवं परतें

यह मण्डल जल वाष्प तथा धूलकणों से लगभग रहित होता है जिससे इसमें मेघ नहीं बनते। कभी-कभी कुछ विशिष्ट प्रकार के मेघ जिन्हें मुक्ताभ मेघ (Mother of Pearl Cloud) कहते हैं, उत्पत्ति इस मण्डल में होती है। इस मण्डल के ऊपरी भाग में ओजोन गैस की अधिकता होने के कारण यह पराबैंगनी विकिरणों का अवशोषण करता है। इस मण्डल की ऊपरी सीमा पर तापमान आंशिक रूप से बढ़ने लगते हैं।

समताप मण्डल में अक्षांशीय ताप वितरण क्षोभ मण्डल से भिन्न होता है। भूमध्य रेखा पर -80˚C तथा 60˚ अक्षांशों पर -45˚ तापमान रहते हैं। भूमध्य रेखीय क्षेत्रों पर मेघाच्छादन अधिक होने से वहाँ ध्रुवों की अपेक्षा कम तापमान होते हैं। समताप मण्डल के ऊपरी भाग में तापमान वृद्धि का मुख्य कारण ओजोन गैस है। वायुमण्डल में ओजोन गैस का सान्ध्रण (Concentration) 15 से 45 किमी. की ऊँचाई के बीच सीमित है। इसकी अधिकतम सान्द्रता 22 किमी की ऊँचाई पर पायी जाती है जहाँ पर सूर्य से आ रही अधिकतम पराबैंगनी व अन्य विकिरणों का अवशोषण होता है इसके परिणामस्वरूप इसके ऊपरी भाग में उच्च तापमान पाया जाता है।

4. **ओजोन मण्डल (Ozonosphere) :** उल्काएँ, जो वायुमण्डल के ऊपरी भाग में ही जल कर नष्ट हो जाती है, के अध्ययन से समतापमण्डल के ऊपरी भाग में एक गर्म पर्त के होने का संकेत मिला था। तत्पश्चात् लिण्डेमान तथा डॉबसन ने पता लगाया कि 50 से 80 किमी की ऊँचाई पर उल्काएँ अदृश्य हो जाती हैं। राकेटों व ध्वनि तरंगों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर एवं ओजोन गैस की यहाँ उपस्थिति के आधार पर यह पता लगाया कि इस परत में पृथ्वी तल से कई गुना अधिक तापमान है तथा इसका निर्माण ओजोन गैस द्वारा पराबैंगनी किरणों व विकिरणों के अवशोषण से हुआ है। इस परत में ओजोन गैस की अधिकता के कारण ही इसे ओजोन मण्डल कहते हैं। यहाँ पर रसायनिक क्रियाएँ अधिक होने से इसे रसायन मण्डल (Chemosphere) तथा मध्य मण्डल (Mesosphere) भी कहते हैं। सामान्यत: इस परत की मोटाई 30 से 50 किमी. के बीच पायी जाती है।

वायुमण्डल में ओजोन की मात्रा बहुत परिवर्तनशील है। ऑक्सीजन अणुओं के प्रकाशिक नियोजन (Photoclissociation) प्रक्रिया द्वारा ओजोन गैस का निर्माण होता है। इससे

ऑक्सीजन ओजोन में तथा ओजोन ऑक्सीजन में बदलती रहती है। ओजोन का क्षैतिज वितरण ऋतुओं में परिवर्तन के साथ भी बदलता रहता है। उत्तरी गोलार्द्ध में NASA के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष बताते हैं कि ओजोन गैस की मात्रा भूमध्य रेखा से अक्षांशों के बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है। 60° अक्षांशों पर इसकी मात्रा अधिकतम होने के बाद ध्रुवों की ओर पुन: घटने लगती है। ऋतुओं के अनुसार बसन्त ऋतु में इसकी मात्रा अधिकतम व पतझड़ के अन्तिम दिनों में न्यूनतम होती है।

वर्तमान में तीव्रगति से चलने वाले जेटयान, स्प्रैकैन डिस्पेन्सर, वातानुकूलक (Air conditioner), शीतलक (Refrigerator) व फसलों पर दवाओं के छिड़काव से निकली क्लोरो फ्लोरो कार्बन गैस (CFC), ओजोन गैस को तेजी से नष्ट कर रही है। प्रो. मील हैरिस ने इस परत के नष्ट होने से बढ़ते दुष्प्रभावों को उल्लेखित करते हुए बताया है कि उत्तरी यूरोप के आर्कटिक क्षैत्र में ओजोन परत का तेजी से पतला होना व इस पतली परत का दक्षिण की ओर खिसक कर ब्रिटेन के ऊपर तक आ जाना भविष्य में भूतापीय वृद्धि (Global warming) को बढ़ावा देगा। नवीन खोजें बताती हैं कि ओजोन परत के क्लोरो फ्लोरो कार्बन जैसी गैसों द्वारा नष्ट होने से अन्टार्कटिका तथा हिन्द महासागर के ऊपर ओजोन परत में अनेक छिद्र बन गये हैं जिससे पृथ्वी तल पर पराबैंगनी विकिरणों का हानिकारक प्रभाव बढ़ने लगा है व भूतापवृद्धि (global warming) एवं विश्व जलवायु परिवर्तन जैसी घटनाओं में अभिवृद्धि होने लगी है।

5. **मध्य मण्डल :** समताप मण्डल के ऊपर ताप में निरन्तर 50 किमी. से 80 किमी. के मध्य तेजी से कमी होती है। यहाँ तापमान घटकर -80°C रह जाता है। 80 किमी. की ऊँचाई से पुन: तापमान में वृद्धि होने लगती है। अत: 20 किमी. से 80 किमी. के मध्य विस्तृत इस परत को मध्य मण्डल कहा गया है। इस परत में ग्रीष्मकाल में मध्य अक्षांशीय प्रदेशों में निशादीप्त मेघ (Noctilus cent cloud) दिखाई देते हैं। यहाँ उल्काओं के अधिक विखण्डन के कारण उल्का धूल कण अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं जो आर्द्रताग्राही नाभिकों (Hydroscopic nuclei) का कार्य करते हैं। तथा हिमकणों के निर्माण में सहायक होते हैं। उच्च स्तरीय संवहन के कारण जलवाष्पकण इतनी ऊँचाई पर पहुँच कर निशादीप्त मेघों का निर्माण करते हैं।

वायुदाब इस परत में न्यून होता है। 50 किमी. पर यह मात्र एक मिलीबार तथा 90 किमी. ऊँचाई पर .01 मिलीबार होता है। इस परत के ऊपरी भाग को जहाँ न्यूनतम तापमान मिलता है, मेसोपाज (Mesopause) कहते हैं। इससे ऊपर जाने पर तापमान में पुन: वृद्धि होने लगती है।

6. **आयन मण्डल :** इसकी ऊँचाई 80 से 640 किमी. के बीच पायी जाती है। इस परत में आयनीकृत कणों की प्रधानता होने से इसे आयन मण्डल भी कहते हैं। परा बैंगनी विकिरण तथा बाह्य अंतरिक्ष से आने वाले परा बैंगनी गतिवान कण जब वायुमण्डल के आणविक ऑक्सीजन से टकराते हैं तो वायुमण्डलीय ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन का आयनन (Ionization) हो जाता है। इससे विद्युत आवेश उत्पन्न होता है। 100 से 300 किमी. के मध्य जहाँ स्वतन्त्र आयनों की संख्या अधिक होती है, विस्मयकारी विद्युत

तथा चुम्बकीय घटनाएँ अधिक होती हैं। वायुमण्डल में 1000 किमी. की ऊँचाई तक आयनन का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस परत में तापमान में वृद्धि होती है।

7. **बाह्य मण्डल (Exosphere) या चुम्बकीय मण्डल :** वायुमण्डल की इस सबसे बाहरी परत का विशेष अध्ययन लेमैन स्पिट्जर (Lyman Spitzer) ने किया है। इसकी ऊँचाई 640 से 1000 कि मी. तक मानी गई है। इतनी अधिक ऊँचाई पर वायुमण्डल एक निहारिका (Nebula) के रूप में हो जाता है। यहाँ उपस्थित वायु में हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसों की प्रधानता होती है। वायुमण्डल की इस बाह्य सीमा में तापमान 5568°C तक पहुँच जाता है। परन्तु इस तापमान की प्रकृति धरातलीय तापमान से भिन्न होती है। अन्तरिक्ष में यात्रा कर रहे यात्री यहाँ यदि अपना हाथ यान के बाहर निकाले तो उन्हें शायद गरम भी नहीं मालूम होगा।

बोध प्रश्न - 1

1. वायुमण्डलीय गैस जो स्थाई नहीं है-
   (अ) नाइट्रोजन　　(ब) ऑक्सीजन
   (स) आर्गन　　(द) ओजोन
2. क्षोभ मण्डल व समताप मण्डल को अलग करने वाली परत है
   (अ) ओजोन मण्डल　　(ब) क्षोभ सीमान्त
   (स) मध्य मण्डल　　(द) आयन मण्डल
3. निशादीप्त मेघ दिखाई देते हैं -
   (अ) क्षोभ मण्डल में　　(ब) समताप मण्डल में
   (स) मध्य मण्डल में　　(द) सभी में
4. वायुमण्डल में नाइट्रोजन गैस का प्रतिशत बताइये।
   ....
   ....
5. क्षोभ मण्डल में तापक्षय की दर कितनी है?
   ....
   ....

6.3 पर्यावरणीय प्रदूषण (Environmental pollution)

हमारे चारों ओर पाये जाने वाले जैविक व अजैविक तन्त्र को ही पर्यावरण कहा जाता है। पर्यावरण फ्रांसीसी शब्द एनवायरनर (environner) से बना है जिसका अर्थ जीवों के आसपास की समस्त परिधि (Surrounding) से है। पारिस्थितिविज्ञ टान्सले (Tansley) की परिभाषा के अनुसार "उन प्रभावशाली अवस्थाओं व दशाओं का समस्त योग जिसमें जीव निवास करते हैं" पर्यावरण कहलाता हैं।

पर्यावरण प्रदूषण : परिभाषा

भूतल पर कार्यरत भौतिक एवं जैविक प्रक्रमों पर मानवीय क्रिया कलापों द्वारा अस्थिरता पैदा की जाती है तो पर्यावरण में मलिनता आ जाती है अथवा शुद्धता में गिरावट आती है। अशुद्धता फैलाने

वाले इन तत्वों को प्रदूषक (Pollutents) कहते हैं तथा इनके दुष्प्रभाव से आये विकारों को पर्यावरणीय प्रदूषण कहते हैं। साधारण शब्दों में प्राकृतिक संसाधनों में अवांछनीय तत्वों या पदार्थों की मिलावट को पर्यावरणीय प्रदूषण कहते हैं। ओडम (Odum) ने प्रदूषण को परिभाषित करते हुए बताया है कि "पर्यावरणीय प्रदूषण हमारी भूमि, वायु तथा जल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशिष्टताओं में होने वाला अनचाहा परिवर्तन है, जिससे मानव जीवन व अन्य प्रजातियों पर हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। लॉर्ड केनेट ने बताया है कि "पर्यावरण में उन तत्वों या ऊर्जा की उपस्थिति को प्रदूषण कहते हैं जो मनुष्य द्वारा अनचाहे उत्पादित किये गये हों तथा जिनके उत्पादन का उद्देश्य अब समाप्त हो गया हो एवं मनुष्य के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हों।

राष्ट्रीय पर्यावरण शोध परिषद् ने माना है कि मनुष्य के क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों रख ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिर्वतनों को प्रदूषण कहते हैं। पर्यावरण प्रदूषण की तीन अवस्थाएँ हैं -

(i) मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ,

(ii) अपशिष्ट पदार्थों के निपटान (Disposal) से पर्यावरणीय तत्वों की क्षति तथा

(iii) इस क्षति का समस्त जैविक एवं अजैविक तत्वों पर दुष्प्रभाव।

उक्त तथ्यों की पृष्ठ भूमि में पर्यावरणीय प्रदूषण को सरल ढंग से इस प्रकार बताया जा सकता है कि जब मनुष्य के निश्चित या अनिश्चित कार्यों द्वारा प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि वह इस तंत्र की सहन शक्ति से अधिक हो जाता है। परिणामस्वरूप पर्यावरण की गुणवत्ता में अत्यधिक गिरावट आ जाने से मानव समाज पर दूरगामी हानिकारक प्रभाव पड़ने लगते हैं।

6.3.1 प्रदूषक व उनके प्रकार

पारिस्थितिक तंत्र के प्राकृतिक सन्तुलन में विकार उत्पन्न करने वाले पदार्थ या ऊर्जा के किसी भी रूप को प्रदूषक (Pollutant) कहा जाता है। ये प्रदूषक अनेक प्रकार के होते हैं। इनका वर्गीकरण तालिका में दर्शाया गया है।

प्रदूषकों के प्रकार

उत्पत्ति के आधार पर	दृश्यता के आधार पर	प्रकृति व दशा के आधार पर	कारकों के आधार पर	विशिष्टता के आधार पर
(अ) प्राकृतिक प्रदूषक	(अ) **दृश्य प्रदूषक** – धूम्र, गैस, धूली, जल, कचरा व अपशिष्ट	(अ) **कणिकीय प्रदूषक**–शीसा, पारा व एसबेस्टास	(अ) **भौतिक प्रदूषक** – समस्त मानवजनित ठोस, द्रवित व गैसीय प्रदूषक	(अ) वायु प्रदूषक
(ब) मानव निर्मित प्रदूषक	(ब) **अदृश्य प्रदूषक** – बैक्टीरिया, जल व मिट्टि में मिले जहरीले रसायन	(ब) गैसीय प्रदूषक - (CFC) क्लोरो फ्लोरो कार्बन) कार्बन डाईआक्साइड (Co_2) नाइट्रोजन आक्साइड (No_2) सल्फर डाइआक्साइड (So_2) कार्बन मोनो आक्साइड (Co)	(ब) **सांस्कृतिक प्रदूषक** – जनसंख्या विस्फोट गरीबी समृद्धि शैक्षणिक पिछड़ापन व अपराध	(ब) जल प्रदूषक
		(स) **तरल प्रदूषक** – जल में घुलने वाले ठोस पदार्थ जैसे तेलवाहक जहाजों से समुद्रों में रिसा हुआ तेल, अमोनिया, यूरिया, नाइट्रेट, फ्लोराइड, फ्लूराइड व कार्बोनेट	(स) **जीविय प्रदूषक** – टिड्डी दल प्रकोप	(स) स्थलीय प्रदूषक

पर्यावरणीय प्रदूषण के स्रोत

भूतल पर घटित होने वाली प्राकृतिक घटनाओं जैसे ज्वालामुखी से निकली राख व धूल, भूकम्पीय घटनाओं द्वारा भूतल पर पड़ी दरारों से आन्तरिक भाग के बाहर आये तरल पदार्थ, बाढ़ के जल के साथ बहकर आये अपशिष्ट पदार्थ, भूमि, पवन, जल व हिम अपरदन द्वारा एकत्रित किये गये प्रदूषक प्राकृतिक प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं।

मानवीय क्रियाकलापों में औद्योगिक उत्पादन, कृषि क्रियाओं तथा जनसंख्या की तीव्रवृद्धि पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारक हैं। अधिकांश प्रदूषक इनसे ही उत्पन्न होते हैं। औद्योगिक उत्पादन के समय अपशिष्ट के रूप में निकले ठोस, द्रवित व गैसीय प्रदूषक, कई प्रकार के हानिकारक रसायनों से मिश्रित अपशिष्ट जल व चिमनियों से निकले कार्बन युक्त धुएँ के कण मानवजनित प्रदूषण के स्रोत्र हैं। कृषिजनित प्रदूषकों में रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक व कृत्रिम रसायन हैं। जनसंख्या की तीव्रवृद्धि पर्यावरणीय प्रदूषण का प्रमुख कारण है जिसने भूतल के प्रमुख संसाधनों जैसे जल, मृदा व वायु का अत्यधिक प्रदूषित किया है। अत पर्यावरणीय प्रदूषण के अन्तर्गत हम वायु, जल, भूमि तथा ध्वनि प्रदूषण को सम्मिलित करते हैं।

6.3.2 पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रकार

वायु मानव जीवन का आधार है तथा वायुमण्डलीय पदार्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। वायु में सन्तुलित अनुपात में विभिन्न गैस विद्यमान रहती है। परन्तु प्राकृतिक घटनाओं एवं मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न तत्व वायु में मिश्रित होकर इसके सन्तुलन में विकार उत्पन्न कर देते हैं। इससे वायुमण्डलीय तापमान में परिर्वतन होता है। परिणामस्वरूप वायुमण्डलीय तत्वों का सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है जो जैविक समुदाय के लिए हानिकारक होता है इसी स्थिति को वायुमण्डलीय वायु प्रदूषण कहते हैं।

वायु प्रदूषण की परिभाषा

विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा (WHO) के अनुसार "वायु प्रदूषण उन पारिस्थितिक दशाओं की ओर संकेत करता है जिनसे वायु मण्डल में दूषित पदार्थों की सान्ध्रता (Concentration) मनुष्य तथा पर्यावरण को हानि पहुँचाने की सीमा तक पहुँच जाती है।

वायु प्रदूषण के कारण एवं प्रकार

वायु प्रदूषण के स्रोत्र प्राकृतिक व प्रदूषक मानवजनित हैं। प्राकृतिक वायु प्रदूषकों के अन्तर्गत ज्वालामुखी उद्गार के समय निकली राख, धूल, धूम्र, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, हाइड्रोजन व अन्य गैसें वायु में मिल कर इसे वायुमण्डल को प्रदूषित कर देती हैं। इसी प्रकार पृथ्वी से टकराने वाले आकाशीय पिण्ड जैसे धूमकेतु, उल्काओं के कारण निकली कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, वनों में लगने वाली आग से निकला धुंआ व धरातल के शुष्क प्रदेशों से उड़ने वाली धूल व मिट्टियों के कण तथा सागर व महासागरों से निकलने वाले लवण फुहार वायुमण्डल में पहुँच कर इसे प्रदूषित करते हैं।

मानवजनित वायु प्रदूषण

मानवीय क्रियाकलापों व गतिविधियों के परिणामस्वरूप वायुमण्डल में अनेक जहरीली गैसे व अवस्थित प्रदूषक पहुँचकर वायु प्रदूषण को जन्म देते हैं। यह हमें गैसीय तथा कणिकीय रूप में प्राप्त होते हैं। गैसीय वायु प्रदूषकों में जीवाश्म ईंधनों (खनिज तेल व कोयला) को जलाने से, वाहनों से निकले धुँऐ से, औद्योगिक प्रक्रियाओं तथा कचरे के सड़ने से उत्पन्न कार्बन-डाई-

ऑक्साईड, कार्बनमोनो ऑक्साइड एयरोसॉल कैन तथा रेफ्रीजरेशन प्रणाली से निकली क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC), गन्धक युक्त जीवाश्मों के जलने से निकली सल्फर-डाइ-ऑक्साइड (SO_2) व सल्फर-डाइ-ऑक्साइड (SO_3), हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2,S), सल्फ्यूरिक एसिड (N_2SO_4), ऊँचाई पर उड़ने वाले वायुयानों से निकली गैस, ईंधन के दहन व रासायनिक उर्वरकों से निकली नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (H_2O) नाइट्रिक ऑक्साइड (NO), नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड (NO_2) एवं सूती वस्त्रों के ब्लीचिंग व अन्य रासायनिक क्रियाओं से निकली क्लोरीन वायुमण्डल के प्रदूषण को जन्म देती है।

कणिकीय वायु प्रदूषकों में कारखानों, बिजली घरों, स्वचलितवाहनों, आवासों के गर्म करने व कृषि कार्यों के कारण निकले प्रदूषकों जिनका आकार एक माइक्रोन से 10 माइक्रोन के बीच होता है वायुमण्डल में पहुँच कर प्रदूषण की मात्रा को बढ़ाते हैं। इससे बड़ी ठोस धूल कणिकाएँ, सभी प्रकार की दहन क्रियाओं, कारखानों, श्वसन कार्यों, निर्माण कार्यों, कृषि कार्यों के परिणामस्वरूप बनती हैं व उड़कर वायुमण्डल में पहुँचकर प्रदूषण की मात्रा को बढ़ाती हैं।

वायुप्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव

वायु प्रदूषण से पड़ने वाले प्रभावों को दो श्रेणियों में रखा जाता है। (1) तात्कालिक प्रभाव (Immediate effects) तथा (2) दीर्घकालिक प्रभाव (Long term effects)

तात्कालिक वायु प्रदूषण के प्रभाव मानव, पादप व जीवजन्तुओं पर स्पष्ट देखे जा सकते हैं। वायु प्रदूषण से वायु में आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। मनुष्य में श्वसन सम्बन्धी रोग, दमा, ब्रोंकाइटिस का प्रकोप बढ़ने लगता है। विषैली गैसों के परिणामस्वरूप त्वचा रोग, कैंसर, नाक व गले की व्याधियाँ व उच्च रक्त चाप जैसे रोग बढ़ने लगते हैं। ब्राजील के साओपोलो में नगर के पास स्थित औद्योगिक बस्तियों में प्रदूषण के कारण पिछले वर्षों में श्वसन रोगों व रक्त कैंसर रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई है। शिशु मृत्युदर भी बढ़ी है, इसी कारण ब्राजील की कुआताओ घाटी को 'मौत की घाटी" कहा जाता है।

वायु प्रदूषण के प्राकृतिक कारणों में ज्वालामुखी उद्गार के समय निकली सल्फर युक्त जहरीली गैसें, विद्युत कड़कने से निकली नाइट्रोजन ऑक्साइड व वृक्षों से निकला टारपीन नामक हाइड्रोकार्बन वायुमण्डल को प्रदूषित करता है। परन्तु प्राकृतिक प्रदूषण का प्रकृति में प्रतिरोधी क्रियाओं द्वारा स्वतः निस्तारण होता रहता है। अतः मानवीय क्रियाओं द्वारा होने वाले प्रदूषण से यह कम हानिकारक होता है।

दीर्घकालीन प्रभाव

औद्योगीकरण, नगरीयकरण, आधुनिकीकरण व वाहनों की संख्या में वृद्धि ने वायु प्रदूषण की मात्रा में तेजी से वृद्धि की है जिसके दीर्घकालीन प्रभाव सामने आने लगे हैं। इसके परिणामस्वरूप वायुमण्डल की निचली परत क्षोभमण्डल में घटने वाली घटनाएँ प्रभावित होने लगी है इसमें उपस्थित जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन हुआ है। समतापमण्डल व क्षोभ मण्डल की गैसीय संरचना भी इससे प्रभावित हुई है इससे हरितग्रह प्रभाव (Greenhome Effect), अम्लीय वर्षा (Acid Rain) ओजोन क्षणण (ozone depletion) की समस्याएँ तेजी से बढ़ी हैं।

वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड के सान्द्रण में वृद्धि होने से वायुमण्डल में हीरतग्रह प्रभाव (green home effect) में वृद्धि हो रही है। परिणामतः धरातलीय तापमान बढ़ रहे हैं। इससे

भूमण्डलीय तपन की प्रमुख घटना के कारण महाद्वीपों व पर्वतीय क्षेत्रों की हिम पिघल कर महासागरों में जलतल में वृद्धि कर रही है। इसके दीर्घकालीन दुष्प्रभाव तेजी से नजर आने लगे हैं। अम्लीय वर्षा (Acid rains) वायु प्रदूषण के कारण सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड व नाइट्रोजन गैस वायुमण्डल में पहुँच कर घनीभूत जल कणों से मिलकर अम्लों का निर्माण करती है जो वर्षा के माध्यम से धरातल पर पहुँच कर झीलों, तालाबों, जलाशयों व जलभण्डारों के जीव समुदाय को हानि पहुँचाते हैं। इसीलिए अमेरिका व पश्चिमी देशों में अम्लीय वर्षा को कभी-कभी झील कातिल (Lake Killer) भी कहते हैं। कनाडा के ओन्टोरियो प्रान्त की 2.5 लाख झीलों में से 50 हजार छोटी बड़ी झीलें अम्ल वर्षा से बुरी तरह प्रभावित हैं। अम्लीय वर्षा से मिट्टी की उर्वरकता नष्ट होती है तथा वनों पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ओजोन क्षरण

वायु प्रदूषण से वायु मण्डल के ऊपरी भाग में स्थित ओजोन परत को खतरा पैदा हो गया है। क्लोरो फ्लोरो कार्बन तेजी से ओजोन की परत को पतली करती जा रही है। एक अध्ययन के अनुसार अगस्त से अक्टूबर 1987 के मध्य अन्टार्कटिका में ओजोन का प्राकृतिक संकेन्द्रण 50% घट गया है। कुछ स्थानों पर ओजोन संकेन्द्रण 100% घट जाने से ओजोन रहित क्षेत्र या ओजोन छिद्र बन गये हैं। ओजोन परत के पतली होने या क्षरित होने से वायमण्डलीय प्रदूषण बढ़ा है व जहरीली पराबैंगनी किरणें पृथ्वी धरातल के जीवधारियों के लिए खतरा बन गई है।

वायु प्रदूषण रोकने के उपाय

वायु प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या बन गई है। इससे उत्पन्न दो गम्भीर समस्याओं भूमण्डलीय तापमानों में वृद्धि (Global warming) तथा ओजोन क्षरण (Ozone deplection) के निवारण के लिए साझा विश्वस्तरीय प्रयास करने चाहिये। 1992 में ब्राजील के "रियो डी जनेरो" नगर में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में सम्पन्न हुए विश्व सम्मेलन में भाग लेने वाले 170 देशों के प्रतिनिधियों में पर्यावरण प्रदूषण के नियंत्रण पर व्यापक चर्चा हुई। वायु प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिये।

1. समाज के प्रत्येक वर्ग को वायु प्रदूषण के घातक परिणामों से परिचित करवाने के लिए जन चेतना जागृत करते हुए इसके प्रति सावधान किया जाना आवश्यक है।
2. वायुमण्डल के प्रदूषकों की कुल मात्रा कम करने के प्रभावी उपाय करने चाहिये।
3. मानव समाज को असाध्य क्षति पहुँचाने वाले घातक तथा आपदा पत्र वायु प्रदूषण को पूर्णतया समाप्त करना चाहिये।
4. पुराने वाहनों पर रोक, वाहनों की नियमित जाँच तथा कम प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों जैसे सौर-चलित मोटर कार के उपयोग को बढ़ावा देना।
5. प्राण घातक प्रदूषण फैलाने वाली सामग्रियों तथा तत्वों के उत्पादन एव उपयोग पर तुरन्त रोक लगनी चाहिये जैसे ओजोन का क्षय करने वाले क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC), के उत्पादन व उपयोग में भारी कटौती होनी चाहिये।
6. भारत सरकार द्वारा पारित "वायु प्रदूषण रोकथाम एक्ट व नियंत्रण बिल 1981 की अनुपालना प्रत्येक नगरीय, महानगरीय क्षेत्रों व प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों द्वारा इमानदारी से की जानी चाहिये।

7. जीवाश्म ईंधनों की दहन प्रणाली में परिर्वतन करके कार्बन मोनो ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम किया जाना चाहिये।

8. कारखानों की चिमनियों की ऊँचाई बढ़ाई जानी चाहिये ताकि धरातलीय सतह पर प्रदूषकों को सान्द्रता को कम किया जा सके।

9. वृक्षारोपण व वनों की सुरक्षा होनी चाहिये इससे हरित गृह प्रभाव में कमी आवेगी क्योंकि ज्यादा से ज्यादा वनस्पति व वन कार्बन डाई ऑक्साइड को अधिकतम मात्रा में अवशोषित होंगे।

जल प्रदूषण (Water Pollution)

भूतल पर प्राकृतिक जल स्रोत्रों में कचरा, अपशिष्ट व अन्य अवांछनीय पदार्थो के मिल जाने से जल दूषित हो जाता है तथा वह जीवधारियों पर हानिकारक प्रभाव डालता है अत: मानवजनित कारणों से जल की गुणवत्ता में एसे परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं। साउथविक के अनुसार "मानव - क्रियाकलापों या प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा जल के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन को जल प्रदूषण कहते हैं।

सामान्य रूप से "विभिन्न स्रोतों एवं भण्डारों के जल की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषताओं में प्राकृतिक तथा मानव-जनित प्रक्रियाओं व कारकों से उस सीमा तक अवनयन एवं गिरावट को जल प्रदूषण कहते हैं जिससे जल उपयोग लायक नहीं रहता।"

जल प्रदूषण के स्रोत

जल की शुद्धता व गुणवत्ता को कम करने वाले तत्वों को जल-प्रदूषक (Water pollutents) कहते हैं। इन प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर जल प्रदूषण प्राय: दो प्रकार से होता है। प्राकृतिक स्रोतों द्वारा जैसे मृदा अपरदन, भूमि स्खलन, ज्वालामुखी उद्गार व पौधों के सड़ने गलने तथा मृत जीवों के विघटन व विनियोजन होकर शुद्ध जल में घुलकर उसे प्रदूषित कर देती हैं। मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप औद्योगिक, नगरीय, कृषि तथा अन्य सामाजिक क्रियाकलापों से निकले मानवीय अपशिष्ट जल की शुद्धता को नष्ट कर उसमें अवान्छित गन्दगी मिला देते हैं। यह पाया गया है कि प्राकृतिक प्रदूषकों को जल में आत्मसात करने की क्षमता होती है। केवल मानवजनित प्रदूषक ही जल के प्रदूषण को बढ़ाते हैं। मानव जनित जल प्रदूषण के स्रोत निम्न हैं

नगरीय अपशिष्ट

नगरीय अपशिष्ट या शहरीय कचरे में भारी मात्रा में घरों व रसोई का कूड़ा कचरा, पोलीथीन की थैलियाँ, अनाज मण्डियों व सब्जी-मण्डियों के सड़े गले पदार्थों को कई बार शहर के जलस्रोतों में डाल दिया जाता है जहाँ वे जल के साथ मिलकर उसे दूषित कर देते हैं। दिल्ली, कानपुर, बनारस, जैसे महानगरों के पास बहने वाली नदियों में जल प्रदूषण इसी कारण बढ़ा है।

औद्योगिक अपशिष्ट

औद्योगिक इकाइयों से अपशिष्ट (Waste) के रूप में विभिन्न प्रकार के रसायनों व घुलनशील गैसों से मिश्रित जल के बाहर निकलने को बहिस्त्राव (effuents) कहते हैं। इस प्रकार के अपशिष्ट को ये इकाई सीधे किसी झील, तालाब या नदियों में छोड़ देते हैं जो वहाँ पहुँच कर जल को दूषित कर देते हैं। कपड़ा, रंगाई, छपाई, चीनी के कारखाने, चर्म उद्योग, धातुकर्म, औषधि निर्मित करने वाले कारखाने तथा खाद्य संसाधनों में काम आने वाले रसायन, कीटनाशक बनाने वाले कारखानों

का तरल विषैला बहिस्त्राव, जैसे तेल, लवण, क्षार, अम्ल, जहरीले खनिज मिश्रित अपशिष्ट बहकर प्राकृतिक जल स्रोतों में पहुँचकर उन्हें प्रदूषित कर रहे हैं।

तेल का प्रभाव

सागरीय व महासागरीय जल में कच्चे खनिज तेल से भरे टैंकरों में कई बार रिसाव होने से तेल निकल कर जल में फैल जाता है। जिससे बड़ी संख्या में समुद्री जीव जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है तथा प्रभावित तटीय भागों के सागरीय अंचलों में पारिस्थितिकीय प्रकोप (Ecological disaster) तथा विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

कृषि जनित जल प्रदूषण

कृषि उत्पादन बढ़ाने की होड़ ने किसानों को कम से कम भूमि से अधिकाधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक, जीवाणुनाशक कवकनाशकों के उपयोग करने को प्रेरित किया है। यही उर्वरक सिंचाई द्वारा तथा वर्षा जल के साथ भूमि में रिस कर भूमिगत जल स्रोतों जैसे नलकूपों, हैण्डपम्पों आदि के जल को दूषित कर रहे हैं जिसका अधिकतम उपयोग पीने के लिए किया जाता है।

जल प्रदूषण के हानिकारक प्रभाव (Harmful effects of water pollution)

प्रदूषित जल के उपयोग से पादप व मानव समुदाय को गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ रहा है अनेक जल-जनक रोगों (Waterborne diseases) का कारण प्रदूषित जल का उपयोग करना है। प्रदूषित जल के उपयोग से ही तपेदिक, पीलिया, अतिसार, मियादी ज्वर, पैराटाइफाइड, पेचिस आदि खतरनाक बीमारियाँ फैलती हैं। विषाक्त रसायनों युक्त जल के सेवन से जलीय पौधों तथा जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है नदियों, झीलों व तालाबों के प्रदूषित जल द्वारा सिंचाई करने से फसलें नष्ट हो जाती हैं, मिट्टियों की उर्वरकता नष्ट हो जाती है। अधिक लवणता युक्त जल से सिंचाई करने पर मिट्टियों में क्षारीयता बढ़ जाती है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण

जल प्रदूषण पर प्रभावी नियंत्रण के लिए अनेक निवारक उपायों का करना आवश्यक है -

1. घरेलू अपशिष्टों को सीधा नदी, झील व अन्य प्राकृतिक जल स्रोतों में मिलाने पर रोक लगानी चाहिये।
2. कृषि में कीटनाशकों व अन्य रसायनों का प्रयोग सीमित मात्रा में होना चाहिये।
3. मृत शरीरों व जीव जन्तुओं को जल स्रोतों में नहीं डालना चाहिये।
4. औद्योगिक इकाइयों को इस बात के लिए मजबूर किया जाना चाहिये कि वो अपशिष्टों को बिना शोधित किये प्राकृतिक जल स्रोतों में नहीं डालें।
5. सरकार व प्रशासन को जल प्रदूषण नियंत्रण नियमों को प्रदूषण फैलाने वाली इकाई पर कठोरता से लगाने चाहिये।

मृदा प्रदूषण

भूमि के भौतिक, जैविक अथवा रासायनिक गुणों में ऐसा अवाच्छित परिर्वतन या बदलाव जिसका असर जीव-जन्तुओं, पादपों तथा जिसमें भूमि की प्राकृतिक गुणवता व उपयोगिता नष्ट हो भूमि प्रदूषण कहलाता है। मृदा की गुणवत्ता में अवनयन पवन या जलीय क्रियाओं द्वारा तेजी से मृदा का अपरदन व अपक्षय होना, मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की कमी हो जाना, मिट्टी में नमी की मात्रा आवश्यकता से अधिक या कम हो जाना, तापमान में अत्यधिक उतार चढ़ाव हो जाना,

मिट्टियों में ह्यूमस की कमी हो जाना, तथा मिट्टियों में प्रदूषकों की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाने आदि कारणों से होता है।

प्राकृतिक स्रोतों द्वारा मृदा प्रदूषण ज्वालामुखी से निकले पदार्थ अथवा भूस्खलन व वर्षा मुख्य कारण है जबकि मानवीय गतिविधियों में औद्योगिक अपशिष्ट, नगरीय अपशिष्ट, व अत्यधिक खनन एंव कृषि आदि में अनियंत्रित रसायनों व कीटनाशकों का प्रयोग करना है।

नियंत्रण के उपाय

यदि हमें मृदा संसाधन को संचित रखना है तो औद्योगिक अपशिष्टों व नगरीय अपशिष्टों को उपचार किये बिना निष्कासित करने पर पाबन्दी लगानी होगी। कृषि में उर्वरकों व रसायनों के कम से कम प्रयोग व ह्यूमस तथा प्राकृतिक खादों का प्रयोग बढ़ाना होगा। अधिक से अधिक वृक्षारोपण तथा कन्दूर कृषि पद्धति अपनानी होगी, जल ससांधनों का संरक्षण करना होगा ताकि मरूस्थलीयकरण के प्रभाव को रोका जा सके। जल प्रबन्ध के प्रभावी उपाय अपना कर जहाँ एक ओर सतही जल को संरक्षित करने व बाढ़ नियंत्रण द्वारा भूमिगत जल स्तर बढ़ाने में मदद मिलेगी वही बीहड़ों (Ravines) व जल कटाव द्वारा भूतल के विनाश को रोका जा सकेगा। अनियंत्रित खनन पर रोक लगा कर हजारों टन चट्टान चूर्ण भूमि पर फैला कर किये जाने वाले नुकसान को रोका जा सकेगा।

ध्वनि प्रदूषण

अवांछित शोर के कारण मानव वर्ग में उत्पन्न अशान्ति एवं बेचैनी की दशा को ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। आधुनिक यूग में कल-कारखानों, आतिशबाजी, रेडियो, टीवी., म्यूजिक सिस्टम, हवाई जहाज तथा सड़कों पर दौड़ते विभिन्न प्रकार के वाहनों से निकली कर्कस आवाज हमारी मानसिक शान्ति को भंग करने के लिए उत्तरदायी है इन क्रियाओं द्वारा वातावरण की शान्ति को भंग किये जाने से मनुष्य के स्वास्थ्य, शारीरिक व मानसिक क्रियाओं में अनेक विकार उत्पन्न हो जाते है तथा वातावरण के अन्य घटक भी इससे प्रभावित होते हैं। इसे ही हम धवनि प्रदूषण कहते हैं। दूसरे शब्दों में ध्वनि की तीव्रता जब इतनी अधिक हो जाये कि इसे सहन करना सम्भव ना हो तब वह ध्वनि प्रदूषण कहलाता है। विश्व स्वास्थय सगंठन द्वारा जिनेवा में दी एक परिभाषा के अनुसार "ऐसी अवांछित ध्वनि जिसका मनुष्य के अथवा समष्टि के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है ध्वनि प्रदूषण कहलाता है"।

ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण के मनुष्यों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव सामान्य रूप से स्वस्थ नींद नही आना, स्वभाव मे चिड़चिड़ापन पैदा हो जाना, बोलने मे कठिनाई पैदा होना है। सब्जी मण्डी, मछली बाजार, हाट, मेले, रेलवे लाइन के पास की बस्तियों में अधिक शोर होने से मनुष्य की नींद में व्यवधान होता है इसी से स्वभाव में चिड़चिड़ापन व मस्तिष्क में अनेक विकृतिया पैदा हो जाती हैं। ध्वनि प्रदूषण जीव जन्तु और पक्षियों की जीवन दशाओं को भी प्रभावित करता है। अधिक शोर वाले स्थानों को छोड़कर पक्षी अन्यत्र चले जाते हैं। वन्य जीवों के पास से सड़कें, रेल मार्ग बनाने पर उनके शोर से वो भी उस स्थान को त्याग देते हैं। इससे अनेक पारिस्थितिक सन्तुलन सम्बन्धी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। हमारी श्रवण शक्ति पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि ध्वनि स्त्रोत कान के निकट हो तो कान का परदा फूटना व स्थायी बहरापन होने जैसे दुष्प्रभाव देखने को मिल रहे हैं।

ध्वनि प्रदूषण का हमारी शारिरिक क्रियाओं जैसे रक्त वाहिनियों का सकुंचन, हृदय गति में परिर्वतन, मांसपेशियों में तनाव, आँखों की दृष्टि कम हो जाना, श्वसन तन्त्र व मस्तिष्क क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

ध्वनि प्रदूषण पर नियत्रंण

ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए हमें अपने घरों तथा सड़कों पर चलने वाले वाहनों तथा उद्योगों व कारखानों से उत्पन्न कर्कश ध्वनि को कम करने के लिए प्रभावी उपाय करने होंगे। घरों में रेडियो, टेलिविजन, कूलर, कुटीर उद्योगों के रूप में घरों में लगाई जाने वाली आटाचक्की, सिलाई मशीनें, ध्वनि विस्तारक यत्रों आदि पर प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। पुराने वाहनो की जो सडकों पर बहुत अधिक आवाज करके चलते हैं कि समय सीमा तय कर प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को अत्यधिक ध्वनि उत्पन्न करने वाले उद्योगों व कारखानों को नगरों व बस्तियों से दूर स्थानान्तरित करवाकर रण ध्वनि अवरोधों को काम में लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इस प्रकार सामाजिक चेतना, प्रशासकीय नियंत्रण तथा जागरूकता पैदा कर हम ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित कर सकते हैं।

बोध प्रश्न - 2

1. हिमशिखर पिघलकर महासागरों के जल तल में वृद्धि करते हैं -
   (अ) अम्लीय वर्षा के कारण (ब) भूमण्डलीय तपन के कारण
   (स) अतिवृष्टि के कारण (द) गुरुत्वाकर्षण बल के कारण ( )
2. निम्न में से कणिकीय वायु प्रदूषक है -
   (अ) क्लोरीन गैस (ब) अमोनिया गैस
   (स) जला हुआ कार्बन (द) कोई नहीं ( )
3. ध्वनि प्रदूषण के कोई दुष्प्रभाव बताइये।
   ....
   ....
4. तीन जल प्रदूषकों के नाम बताइये।
   ....
   ....
5. वायु प्रदूषण के तीन प्रतिकूल प्रभाव बताइये।
   ....
   ....

6.4 वायुमण्डलीय आपदाएँ (Atmospheric Hazards)

मौसम और जलवायु की चरम घटनाएँ कभी-कभी वायुमण्डल की निचली पर्तों में सक्रिय होकर इस भाग को इतना अधिक उद्वेलित कर देती हैं कि धरातल पर प्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जन और धन की अपार हानि होती है। ऐसी घटनाऐं वायुमण्डलीय आपदायें कहलाती हैं।

6.4.1 आपदाओं के प्रकार

वायुमण्डलीय आपदाओं के अन्तर्गत उष्णकटिबन्धीय चक्रवात, तूफान, प्रचण्ड बाढ़, सूखा एवं ग्रहेतर आपदाओं को सम्मिलित किया जाता है। इनमें उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात सर्वाधिक शक्तिशाली विध्वंसक तथा प्राणघातक वायुमण्डलीय घटना है। संसार के विभिन्न प्रदेशों में इनको अलग-अलग नामों से जानते हैं। उत्तरी अटलाण्टिक महासागर में इन्हें हरिकेन, उत्तरी प्रशान्त महासागर में टाइफून तथा बंगाल की खाड़ी में चक्रवात कहते हैं।

12 नवम्बर, 1970 को बांग्ला देश के दक्षिणी तटवर्तीय भाग में आये विनाशकारी चक्रवात ने तीन लाख से भी अधिक लोगों को अपने काल का ग्रास बना लिया था । कमल की खाड़ी में प्रतिवर्ष इस प्रकार के विनाशकारी चक्रवात 12 से 13 की संख्या में आते हैं जिनमें हवाओं की गति 65 किमी. प्रति घण्टा से अधिक होती है।

हरिकेन प्राय: संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण पूर्वी भागों में खाड़ी तटीय राज्यों (लूसियाना, टैक्सास, अलाबामा तथा फ्लोरिडा) में विनाश लीला रचते हैं। यू.एस.ए. में टोरनेडो नामक चक्रवात भी चलते हैं।

बाढ़

अतिवृष्टि एवं न्यूनवृष्टि वायुमण्डलीय आपदाएं हैं। वायुमण्डलीय विशिष्ट मौसमी दशाओं के परिणामस्वरूप होने वाली अतिवृष्टि से भूतल जलमग्न हो जाता है जिससे मानव बस्तियों, जीव जन्तु व कृषि फसलों को भारी नुकसान पहुँचता है। बाढ़ों के आने के अनेक कारण है -

1. वर्षा काल में अचानक वायुमण्डलीय दशाओं में परिवर्तन से दीर्घकालिक घनघोर जल वृष्टि का होना।
2. शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अचानक एवं अप्रत्याशित जलवृष्टि के कारण सरिताओं के प्राकृतिक प्रवाह विकसित ना होने से बाढ़ का आ जाना।
3. अनेक नदियों के प्रवाह क्षेत्रों में विसर्पो की संख्या अधिक होने से जल विसर्जन में बाधा उत्पन्न होने के कारण समीपवर्ती क्षेत्रों में जल फैल जाना।

निदान

वृक्षा रोपण के द्वारा जल प्रवाह के वेग को कम करके बाढ़ों की तीव्रता व सम्भावना को कम किया जा सकता है। दूसरा अत्यधिक विसर्पो युक्त सरिताओं के मार्ग को सीधा कर देना चाहिये ताकि अतिवृष्टि के समय जल प्रवाह में बाधा उत्पन्न ना हो। तीसरा नदियों के ऊपरी भाग में बाढ़ नियंत्रण भण्डारण जलाशयों (Flood Control Storage reservoirs) के निर्माण द्वारा अतिरिक्त जल का इनमें संचय कर नदियों में जल के आयतन को कम किया जा सकता है। सरकार व प्रशासन द्वारा भी बाढ़ भविष्यवाणी तथा चेतावनी प्रणाली को विकसित कर इस समस्या से निजात पायी जा सकती है।

सूखा

सूखा भी एक घातक वायुमण्डलीय विपदा है भारतीय मौसम विभाग के अनुसार उस वायुमण्डलीय दशा को सूखा कहते हैं "जब किसी भी क्षेत्र में सामान्य वर्षा से वहां प्राप्त वर्षा 75 प्रतिशत से कम होती है।" लम्बे समय तक सूखे की स्थिति रहने से उस प्रदेश के अनेक पादप तथा जन्तु प्रजातियाँ नष्ट हो जाती है। आज भी विश्व के 25 प्रतिशत क्षेत्र सूखे की गम्भीर समस्या से जूझ रहे हैं।

सूखा नियंत्रण उपाय

सूखे की विभिषिका वनारोपण, शुष्क कृषि पद्धति अपनाने तथा रेगिस्तान प्रसार पर नियत्रंण करने के उपायों पर बल देकर इसे कम किया जा सकता है। राजस्थान में इन्दिरा गांधी नहर का विकास कर सूखे की समस्या को रोकने में काफी सफलता मिली है।

ग्रहेतर आपदाऐं, कारण एवं प्रभाव

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि क्रीटेसियस युग के अन्त तथा टार्शियरी युग के प्रारंम्भ में आज से 65 मिलियन वर्ष पूर्व पृथ्वी व एक वृहदाकार उल्का पिण्ड की टक्कर के कारण कुछ जन्तुओं का सामान्य रूप से व डायनासौर का सामूहिक रूप से विलोप हुआ है। इस टक्कर ने वायुमण्डल में धूलराशि का विशाल आवरण बना दिया था। परिणामत: पृथ्वी पर कई वर्षो तक घना अन्धकार छाया रहा। इससे सौर्य विकरण पृथ्वी पर नही पहुचँ पाये व यहाँ पर शीत-पर्यावरण बन जाने से जीव जन्तु व वनस्पति नष्ट हो गये। समस्त आहार श्रृंखला समाप्त हो गई।

बोध प्रश्न-3

1. निम्न में से कौन सी घटना वायुमण्डलीय आपदा नहीं है -
   (अ) चक्रवात (ब) अतिवृष्टि
   (स) सूखा (द) अनाच्छादन ( )
2. टोरनेडो का प्रभाव क्षेत्र हे -
   (अ) बंगाल की खाड़ी (ब) फारस की खाड़ी
   (स) यूएसए. (द) दक्षिणी चीन ( )
3. डायनासोर जन्तुओं के सूमाहिक विलोप का कारण माना गया है -
   (अ) अतिवृष्टि (ब) उल्का पिण्ड की पृथ्वी से टक्कर
   (स) सूर्यताप (द) कोई नहीं ( )
4. बाढ़ नियंत्रण के दो उपाय बताइये।
   ....
   ....

6.5 सारांश

उक्त इकाई में वायुमण्डल के अध्ययन से पता चलता है कि यह अनेक प्रकार की गैसों, जलवाष्प तथा धूलकणों का यांत्रिक मिश्रण है। ये सभी तत्व इसकी निचली पर्तों में सक्रिय होकर वायुमण्डलीय घटनाओं को जन्म देते हैं। अनेक परतों ने मिलकर इसकी संरचना की है। सबसे निचली परत क्षोभ मण्डल सर्वाधिक सक्रिय परत है जहाँ समस्त मौसमी घटनाएँ यथा वर्षा, मेघ निर्माण, कोहरा, चक्रवात, प्रतिचक्रवात, प्रचण्ड आंधियाँ व अनेक प्रकार की मौसमी घटनाएँ घटित होती रहती हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण वायुमण्डल की अनेक घटनाओं का ही परिणाम है। अनेक प्रकार के प्रदूषक इसे जन्म देते हैं जिनके आधार पर इसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा मृदा प्रदूषण में बाँटकर उनके द्वारा पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों की विवेचना की है।

तीसरी वायुमण्डलीय प्रमुख घटना वायुमण्डलीय आपदाएँ हैं जो भूतल पर चक्रवातों, प्रतिचक्रवातों, अतिवृष्टि, सूखा व अकाल तथा आकाशीय पिण्डों के भूतल पर प्रहार का परिणाम हैं। ये जन एवं धन को अपार हानि पहुँचाती हैं। इन्हें समाप्त तो नहीं किया जा सकता पर इनके प्रभाव को वायुमण्डलीय आपदा प्रबन्धन विधियों अपना कर कम किया जा सकता है।

6.6 शब्दावली

ध्रुवीय क्षेत्र	:	उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव के पास पाये जाने वाले क्षेत्र
दावाग्नि	:	वनों में लगने वाली आग
जलोढ़	:	जल में मिश्रित चट्टान चूर्ण
ब्रोंकाइटिस	:	श्वसन सम्बन्धी रोग
अम्लीय वर्षा	:	वायु मण्डल में उपस्थित कार्बन-डाइ- ऑक्साइड, सल्फर डाई-ऑक्साइड व नाइट्रोजन का वर्षाजल में घुलकर अम्लीय रूप में जल पर पहुँचना।
भूमण्डलीय तपन	:	तल के तापमान में वृद्धि
ओजोन क्षरण	:	वायुमण्डल के ऊपरी भाग में क्लोरो फ्लोरो कार्बन जैसी गैसों की अधिकता से ओजोन परत को क्षति पहुँचना।

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Critch Field H.J. : General Climatology, Prentice Hall Inc., Englewood N.J.U.S.S., 1975
2. Kendrew, W.G. : Climatology, Oxford, 1957
3. सविन्द्र सिंह : पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1997
4. डी एस. लाल : जलवायु विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003
5. वी. एस. चौहान : भौतिक भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2006

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. (द) 2. (ब) 3. (स)

4. 78.08 प्रतिशत 5. 6.5° C प्रति किमी.

बोध प्रश्न - 2

1. (ब) 2. (स)

3. (i) नींद नहीं आना, (ii) स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाना

4. (i) औद्योगिक बहिस्त्राव, (ii) नगरीय अपशिष्ट, (iii) विषैले रसायन

5. (i) त्वचा रोग, (ii) कैंसर, (iii) श्वसन सम्बन्धी रोग

बोध प्रश्न - 3

1. (द) 2. (स) 3. (स)

1. (i) सरिता शीर्ष प्रदेशों में बाढ़ नियंत्रण भण्डारण जलाशयों का निर्माण

1. सरिता प्रवाह क्षेत्र में पड़ने वाले विसर्पों की संख्या कम करके

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वायुमण्डल की विभिन्न परतों की संरचना तथा विशेषताओं को बताइये।
2. पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों व उनसे पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को संक्षेप में समझाइये।
3. वायुमण्डलीय आपदाओं द्वारा पड़ने वाले विनाशकारी प्रभावों की विवेचना कीजिए।

इकाई 7 : तापमान, उसका वितरण व तापमान की विलोमता

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सूर्यातप का परिचय

7.2.1 धरातल पर सूर्यातप का वितरण

7.2.2 सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

7.2.3 वायुमण्डल तथा पृथ्वी का उष्मा सन्तुलन

7.3 तापमान

7.3.1 दैनिक औसत तापमान

7.3.2 मासिक औसत तापमान

7.3.3 वार्षिक औसत तापमान

7.3.4 अधिकतम तापमान

7.3.5 न्यूनतम तापमान

7.3.6 तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

7.3.7 तापमान का उर्ध्वाधर वितरण

7.3.8 तापीय विलोमता

7.3.9 तापीय विलोमता के प्रकार

7.3.10 तापीय विलोमता के लिये उत्तरदायी कारक

7.4 तापमान का क्षैतिज वितरण

7.4.1 जनवरी का वितरण

7.4.2 जुलाई का वितरण

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 संदर्भ ग्रन्थ

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे :-

- सूर्यातप का वितरण व उसको प्रभावित करने वाले कारक
- वायुमण्डल तथा पृथ्वी का उष्मा बजट
- वायुमण्डलीय तापमान का उर्ध्वाधर व क्षैतिज वितरण,
- तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक तथा
- तापीय विलोमता के लिये उत्तरदायी कारक।

7.1 प्रस्तावना

तापमान का अर्थ सामान्यतया उष्मा से लिया जाता है। किन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता होती है। उष्मा किसी पदार्थ के अणुओं की सम्पूर्ण गतिज ऊर्जा का द्योतक है। इसके विपरीत तापमान पदार्थ के अणुओं की औसत गतिज ऊर्जा का मापन करता है। टेलर के अनुसार तापमान किसी पदार्थ की वह विशेषता है जो चालन के द्वारा उष्मा के प्रवाह की दिशा निश्चित करता है। उष्मा किसी वस्तु में उपस्थित ऊर्जा की मात्रा का द्योतक है, जबकि तापमान उस वस्तु की उष्मीय अवस्था प्रकट करता है। यहाँ तापमान का अभिप्राय वायुमण्डलीय ताप से है, जो पूर्णतया सूर्यातप एव पार्थिव विकिरण पर निर्भर करता है। पृथ्वी की धरातलीय बनावट एक सी नहीं है। इस पर छोटे बड़े जमुद्रों और महाद्वीपों का वितरण है। इनके अलावा छोटे रूप में मरूस्थल मैदान, पर्वत, पठार आदि के कारण सूर्यातप प्रभावित होता है।

7.2 सूर्यातप का परिचय

अंग्रेजी भाषा में इन्सोलेशन शब्द In + Sol + ation अर्थात् Incomming solar radiation का संक्षिप्त रूप है। अर्थात् सूर्य के विकिरण (radiation) द्वारा जो ऊर्जा निकलती है उसे सूर्यातप कहते हैं। केन्ड्रू (Kendrew) के अनुसार "सूर्य लगातार जिस ऊर्जा को प्रसारित करता रहता है वह सूर्यातप कहलाता है।" ट्रिवार्था के शब्दों में "लघु तरंगों के रूप में प्राप्त सौर्यिक ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं।

सौर्य विकिरण तरंगों के रूप में सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचता है। इन तरंगों को पृथ्वी तक पहुँतने में 8 मिनट 20 सैकेण्ड लगते हैं। इन विद्युत चुम्बकीय तरंगों का माप माइक्रोन (μ) में किया जाता है।

1 माइक्रोन = $\frac{I}{10.000}Cm$ होता है ।

सूर्यतल के प्रतिवर्ग इंच से 100,000 अश्व शक्ति विकीर्ण ऊर्जा प्राप्त होती है। पृथ्वी तथा सूर्य के बीच की औसत दूरी 149 मिलियन किमी. है। सूर्य के धरातल का तापमान 6000˚C अथवा 11000˚F है जबकि सूर्य के केन्द्रीय भाग का तापमान 50,000,000˚F बताया जाता है।

7.2.1 धरातल पर सूर्यातप का वितरण

धरातल पर सूर्यातप का वितरण सभी स्थानों पर समान रूप से नहीं पाया जाता है। सूर्यातप का सर्वाधिक वितरण भूमध्यरेखा के पास होता है। ध्रुवों की ओर इसकी मात्रा में निरन्तर कमी आती जाती है। इसका मुख्य कारण सूर्य की किरणों का पृथ्वी के साथ बनने वाला कोण एवं सूर्य प्रकाश की अवधि है। मार्च व सितम्बर में बसन्त व शरद विषुव के समय जब सूर्य भूमध्य रेखा पर लम्बवत् चमकता है, उस समय दोनों गोलार्द्धों में सभी अक्षांशों पर लगभग एक समान सूर्यातप पाया जाता है। ग्रीष्म व शीतकाल में जब सूर्य कर्क व मकर रेखा पर क्रमश: लम्बवत् चमकता है सूर्यातप की अवधि सन्दर्भित गोलार्द्ध में सर्वाधिक होती है। यदि ग्लोब पर वार्षिक सूर्यातप के अक्षांशीय वितरण पर ध्यान दिया जाय तो इसे 3 अक्षांशीय पेटियों में बाँटा जा सकता है -

1. **निम्न अक्षांशीय मण्डल (Low Latitudional Zone) :** इसका विस्तार कर्क तथा मकर रेखाओं के बीच पाया जाता है। इस क्षेत्र को दिसम्बर व जनवरी में लगभग 400 इकाई

सूर्यातप की मात्रा प्राप्त होती है जबकि मार्च व सितम्बर में लगभग 500 इकाई सूर्यातप की मात्रा प्राप्त होती है। इस प्रकार संक्रांति तथा विषुव के बीच लगभग 100 इकाई सूर्यातप की मात्रा का अन्तर पाया जाता है। इस मण्डल में सूर्य की किरणें वर्ष में दो बार लम्बवत् पड़ती हैं, जिस कारण वर्ष में दो बार अधिकतम तथा दो बार न्यूनतम सूर्यातप प्राप्त करता है। इसमें ऋतु परिवर्तन कम पाया जाता है।

2. **मध्य अक्षांशीय मण्डल (Mid Latitudinal Zone) :** इसका विस्तार $23 1/2^{\circ}$ से $66 1/2^{\circ}$ अक्षांशों के बीच दोनों गोलार्द्धों में पाया जाता है। दो संक्रांति के बीच लगभग 400 इकाई का अन्तर जबकि एक संक्रांति तथा एक विषुव के बीच लगभग 200 इकाई का अन्तर पाया जाता है। इस मण्डल के प्रत्येक स्थान पर वर्ष में एक बार अधिकतम एवं एक बार न्यूनतम सूर्यातप की मात्रा प्राप्त होती है। ऋतुवत् असमानतायें अधिक पायी जाती हैं।
3. **उच्च अक्षांशीय मण्डल (High Latitudinal Zone) :** इसका विस्तार $66 1/2^{\circ}$ से 90° अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में पाया जाता है। एक संक्रांति तथा विषुव के बीच लगभग 300 इकाई का अन्तर पाया जाता है। यहाँ वर्ष में एक बार उच्चतम तथा एक बार न्यूनतम सूर्यातप प्राप्त होता है।

7.2.2 सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

धरातल पर सूर्यातप की प्राप्ति सर्वत्र समान नहीं होती। इसे नियन्त्रित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:-

1. **सूर्य की किरणों का कोण (Angle of Sun's Rays) :** सूर्य की किरणें प्रत्येक स्थान पर सीधी नहीं पड़ती। भूमध्य रेखा पर प्राय: सूर्य किरणें सीधी पड़ती हैं। परन्तु जैसे-जैसे उच्च अक्षांशों की ओर जाते हैं, सूर्य किरणें तिरछीं होती जाती है। सूर्य की किरणों का कोण धरातल के साथ जितना अधिक होगा, सूर्यातप की मात्रा भी उतनी ही अधिक प्राप्त होगी। यद्यपि इससे धरातल का कम भाग प्रभावित होगा। सूर्य की किरणों का धरातल के साथ बनने वाला कोण यदि कम होता है तो उस स्थिति में धरातल का अधिक भाग सूर्यातप से प्रभावित होगा, परन्तु यह भाग कम सूर्यातप की मात्रा प्राप्त करेगा।

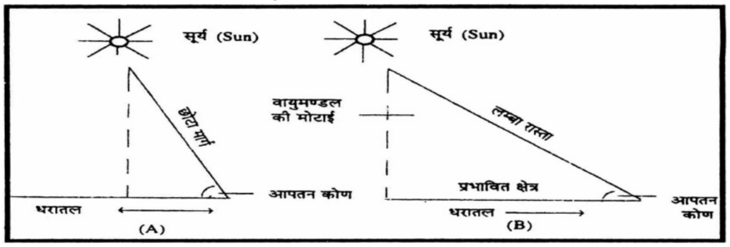

चित्र 7.1 : आपतन कोण व प्रभावित क्षेत्र

2. **दिन-रात की अवधि :** भूमध्य रेखा पर प्रकाश की किरणें लगभग वर्षभर लम्बवत होती हैं। अत: यहाँ पर सदैव 12 घण्टे का दिन तथा 12 घण्टे की रात होती है। भूमध्य रेखा और ध्रुवों के बीच में दिन की लम्बाई बदलती रहती है। किसी अक्षांश विशेष के प्रत्येक स्थान पर दिन की अवधि एक जैसी होती है परन्तु अपने से ऊँचे व नीचे अक्षांश के स्थानों से भिन्न होती है ।

विभिन्न अक्षांशों में दिन की अधिकतम अवधि

अक्षांश (डिग्री में)	0	17	31	41	49	58.5	63.4	66.5	67.4	69.8	78.2	90.0
दिन की अवधि (घण्टों में)	12	13	14	15	16	18	20	24	1 माह	2 माह	4 माह	6 माह

दिन की अवधि जितनी अधिक होगी उतना ही सौर्य विकिरण अधिक प्राप्त होगा ।

3. **पृथ्वी से सूर्य की दूरी (Distance between earth and sun) :** सूर्य से पृथ्वी की दूरी वर्ष भर समान नहीं रहती बल्कि घटती बढ़ती रहती है। 3 जनवरी को पृथ्वी रण सूर्य के बीच निकटतम दूरी 14,70,00,000 किमी. होती है। इस स्थिति को उपसौर (Perihelion) कहते हैं। 4 जुलाई को सूर्य तथा पृथ्वी के बीच अधिकतम दूरी 15,20,000,00 किमी. होती है। इस स्थिति को अपसौर (Aphelion) कहते है।

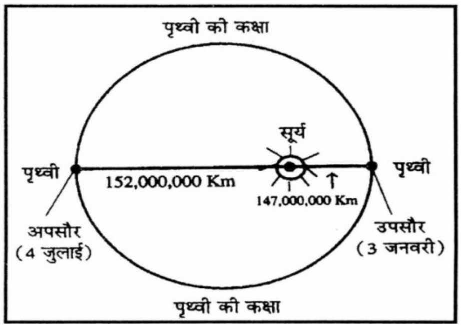

चित्र 7.2 : सूर्य तथा पृथ्वी की सापेक्षिक स्थिति

4. **सौर कलंक (Sun spots) :** चन्द्रमा के समान सूर्य तल पर धब्बे पाये जाते हैं। औसत रूप से 11 वर्षीय चक्र के रूप में सौर कलंको की संख्या पृथ्वी की ओर अधिकतम होती है। अधिक धब्बे होने पर सूर्यातप की मात्रा भी अधिक होती है।

5. **वायुमण्डल की शुद्धता :** वायुमण्डल में जितनी शुद्धता होती है उतना ही अधिक सूर्यातप पृथ्वी पर आसानी से पहुँचता है। जितनी अधिक वायुमण्डल में अशुद्धता होती उतना ही कम सूर्यातप पृथ्वी तक पहुँच जाता है।

6. **स्थल एवं जल का प्रभाव :** जल भाग में सूर्यातप अधिक गहराई तक पहुँचता है (लगभग 17 m तक) एवं स्थलभाग पर कम गहराई तक प्रवेश कर पाता है (लगभग 1 m तक)। इसके अतिरिक्त स्थल की अपेक्षा जल में अनेक क्रियायें जैसे धाराओं का चलना, ज्वार भाटा, लहरों आदि का संचलन होता रहता है। जल पर जलवाष्प की अधिक मात्रा पायी जाती है जो सूर्यातप की मात्रा को अवशोषित करती है। अत: स्थल भाग जल भाग की तुलना में जल्द गर्म होता है।

7. **धरातल का रंग एवं स्वरूप :** धरातल के रंग एवं स्वभाव के अनुसार सूर्यातप भिन्न-भिन्न मात्रा में प्राप्त होता है। यदि वनस्पति के कारण धरातल का रंग हरा है तो वहाँ सूर्यातप की कम मात्रा प्राप्त होगी। यदि धरातल का रंग लाल है तो वहाँ सूर्यातप की अधिक मात्रा प्राप्त होगी। धरातल का स्वरूप जैसे पर्वत, पठार, मैदान आदि पर सूर्यातप अलग-अलग मात्रा में प्राप्त होता है। मैदानों की अपेक्षा पर्वतों के सूर्योन्मुख ढालों पर सूर्यातप की अधिक मात्रा प्राप्त होती है।

7.2.3 वायुमण्डल तथा पृथ्वी का उष्मा संतुलन

पृथ्वी को अधिकांश उष्मा (heat) सूर्य से विकिरण द्वारा प्राप्त होती है। सूर्य से विकीर्ण ताप लघु तरंगों (shoot waves) द्वारा पृथ्वी को प्राप्त होता है। वायुमण्डल सूर्य से विकीर्ण ऊर्जा (energy) का केवल 14% प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करता है। वायुमण्डल को अधिकांश ताप की प्राप्ति (अप्रत्यक्ष रूप से) पृथ्वी से विकीर्ण ऊर्जा द्वारा प्राप्त होती है जो कि दीर्घ तरंगों के रूप में होती है। इस प्रकार पृथ्वी एवं वायुमण्डल निरन्तर सूर्य से उष्मा प्राप्त करते हैं। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि फिर भी पृथ्वी तथा वायुमण्डल का उष्मा भण्डार बढ़ता या घटता नहीं अपितु सदैव संतुलित रहता है। अर्थात् पृथ्वी तथा वायुमण्डल जितना ताप प्राप्त करता है उतना ही शून्य में लौटा देते हैं।

सूर्य से विकीर्ण ऊर्जा का 35% भाग मौलिक रूप से शून्य में वापस लौटा दिया जाता है। इसमें से 6% वायुमण्डल से प्रकीर्णन द्वारा, 27% वायुमण्डल में स्थित बादलों से परावर्तन द्वारा तथा 2% पृथ्वी की सतह से परावर्तन द्वारा शून्य में वापस लौटा दिया जाता है। अतः सौर्यिक ऊर्जा के इस 35% भाग का वायुमण्डल तथा पृथ्वी को गर्म करने में कोई हाथ नहीं होता। शेष 65% भाग में से वायुमण्डल द्वारा (जलवाष्प, बादल, धूलिकणों, गैसों आदि) 14% भाग का अवशोषण कर लिया जाता है। इस तरह केवल 51% उष्मा ही पृथ्वी को प्राप्त हो पाती है। इसमें से 34% भाग प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाश से प्राप्त होता है तथा शेष 17% विसरित दिवा प्रकाश (diffuse Day Light) द्वारा प्राप्त होता है। सूर्य से प्राप्त यही 51% उष्मा ही पृथ्वी की वास्तविक बजट है। वायुमण्डल का उष्मा बजट सौर्यिक ऊर्जा का 48% होता है। इसमें से वायुमण्डल सौर्य विकिरण से 14% ऊर्जा का प्रत्यक्ष अवशोषण कर लेता है तथा शेष 34% पृथ्वी से होने वाले दीर्घ तरंग विकिरण से प्राप्त करता है।

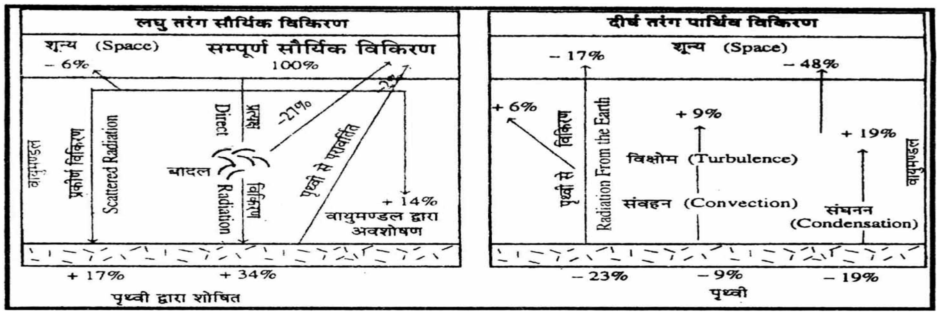

चित्र-7. 3 : पार्थिव तथा वायुमण्डलीय उष्मा का संतुलन

सूर्य से उष्मा प्राप्त करने के पश्चात् पृथ्वी भी उष्मा का विकिरण करना प्रारम्भ कर देती है ताकि धरातल पर लगातार उष्मा का संचलन न हो सके। पृथ्वी द्वारा होने वाला विकिरण दीर्घ तरंगों के रूप में होता है। इसी पार्थिव विकिरण (Terrestrial Radiation) से वायुमण्डल का निचला भाग गर्म होता है। पृथ्वी द्वारा प्राप्त उष्मा का 23% भाग धरातल से दीर्घ तरंगों के रूप में विकिरण हो जाता है, इसका 17% भाग सीधे शून्य में चला जाता है। 6% भाग प्रभावी विकिरण के रूप में वायुमण्डल को गर्म करता है। धरातल से 9% उष्मा विक्षोभ तथा संवहन के रूप में खर्च हो जाती है तथा शेष 19% उष्मा वाष्पीकरण व संघनन में खर्च हो जाती है। इस प्रकार धरातल से 51% उष्मा वापिस विकिरण हो जाती है जिससे धरातल पर उष्मा का सन्तुलन बना रहता है।

वायुमण्डल कुल 48% (14+6+9+19) उष्मा प्राप्त करता है। ये उष्मा वायुमण्डल द्वारा पुन: शून्य में लौटा दी जाती है। इस प्रकार वायुमण्डल तथा पृथ्वी द्वारा 65% उष्मा का 17% भाग पृथ्वी से तथा 48% भाग वायुमण्डल से शून्य में वापस चला जाता है।

बोध प्रश्न- 1

1. विषुव की स्थिति कब पायी जाती है?

   ....

   ....

2. उपसौर से आप क्या समझते हैं?

   ....

   ....

3. पार्थिव विकिरण क्या है?

   ....

   ....

4. लघु तरंगों को सूर्य से पृथ्वी तल तक पहुँचने में कितना समय लगता है?

   ....

   ....

7.3 तापमान

7.3.1 दैनिक औसत तापमान

दिन के अधिकतम तथा न्यूनतम तापमान के औसत को औसत दैनिक तापमान (Mean Daily Temperature) कहते हैं।

7.3.2 मासिक औसत तापमान (Mean Monthly Temperature)

महीने के प्रतिदिन के औसत तापमान के योग में उस मास के कुल दिनों की संख्या का भाग देने से मासिक औसत तापमान प्राप्त होता है।

7.3.3 वार्षिक औसत तापमान (Mean Annual Temperature)

12 महीनों के मासिक औसत तापमान के योग को 12 से विभाजित करने पर वार्षिक औसत तापमान प्राप्त होता है।

7.3.4 अधिकतम तापमान

दिन भर के सबसे ऊँचे ताप को दैनिक अधिकतम ताप (Daily or Diurnal Maximum Temperature) कहते हैं। यदि महीने भर के सबसे ऊँचे ताप को नोट किया जाये तो महीने भर में पाये जाने वाला अधिकतम ताप मासिक उच्चतम ताप (Monthly Maximum Temperature) होता है। इसी प्रकार वर्ष का भी अधिकतम ताप मालूम किया जा सकता है। जिसे वार्षिक

उच्चतम ताप (Annual Maximum Temperature) कहते हैं। यदि महीने भर तक प्रतिदिन के उच्चतम तापों का औसत निकाला जाये तो उसे औसत मासिक उच्चतम ताप (Mean Monthly Maximum Temperature) कहते हैं। इसी तरह वर्ष के लिये भी औसत वार्षिक उच्चतम ताप (Mean Annual Maximum Temperature) भी निकाला जा सकता है। उच्चतम ताप 2 से 5 p.m.के बीच होता है।

7.3.5 न्यूनतम तापमान

दिनभर के न्यूनतम ताप को दैनिक न्यूनतम ताप (Daily or Diurnal Minimum Temperature) कहते है। ऊपर बताई गई विधि के आधार पर मासिक न्यूनतम ताप एवं वार्षिक न्यूनतम ताप भी मालूम किया जा सकता है। न्यूनतम ताप 4 से 5 a.m. के बीच होता है।

7.3.6 तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

पृथ्वी के धरातल पर एक समान तापमान की दशायें नहीं मिलती हैं। तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले निम्न कारक हैं:-

1. अक्षांश : भूमध्य रेखा पर वर्ष भर सूर्य की लम्बवत् किरणों के कारण सूर्यातप की अधिकतम मात्रा प्राप्त होती है। इसके विपरीत ध्रुवों की ओर किरणों के तिरछेपन में वृद्धि के कारण सूर्यातप की मात्रा कम प्राप्त होती है। अत: भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर तापमान में प्राय: कमी पायी जाती है।
2. सागर तल से ऊँचाई : सागर तल से ऊँचाई के साथ-साथ तापमान में कमी आती जाती है। जो भाग धरातल से जितना नजदीक होता है वह उतना ही अधिक तापमान वाला होता है। इसके समीप की वायु भी सघन होती है तथा इसमें वायु की ऊपरी परतों की अपेक्षा जलवाष्प एवं धूलकण आदि अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जो पार्थिव तथा सौर विकिरण का अधिक मात्रा में अवशोषण करते हैं।
3. सागर से दूरी : जो भाग सागर के नजदीक होता है वहाँ का तापमान सम बना रहता है। इसके विपरीत जो भाग सागर से जितनी ही दूरी पर होता है उसके तापमान में उतनी ही अधिक विषमता होती है।
4. जल एवं स्थल का स्वभाव : तापमान स्थलीय भाग को जल की अपेक्षा अधिक तेजी से प्रभावित करते हैं क्योंकि यह जल की अपेक्षा सूर्यातप से जल्दी गर्म तथा जल्दी ठण्डा भी हो जाता है।

7.3.7 तापमान का ऊर्ध्वाधर वितरण

वायुमण्डल में ऊँचाई की ओर जाते हुए तापमान क्रमश: घटता है। औसत रूप से तापमान प्रति एक हजार मीटर पर 6.5˚C की दर से कम हो जाता है। तापमान के इस पतन को सामान्य पतन दर (Normal Lapse Rate) कहते हैं। यह हास क्षोभमण्डल तक ही जारी रहता है। इसके पश्चात् तापमान का हास रूक जाता है। ऊँचाई के साथ तापमान के घटने के निम्न कारण है।

1. निचली परत पृथ्वी के गर्म तल से स्पर्श के कारण गर्म हो जाती है। यह ताप संवहन तरंगों द्वारा धीरे-धीरे ऊपर की पर्तों को गर्म करता है। अत: ऊपर की पर्तें निचली पर्तों की अपेक्षा कम गर्म होती हैं।

2. निचली वायु में ऊपर की वायु की अपेक्षा जलवाष्प, धूल के कण एवं घनी वायु होती है इसलिये निचली पर्तें पृथ्वी के तल से उष्मा का शोषण करके अधिक गर्म हो जाती हैं।

3. वायुमण्डल की निचले भाग में ऊपर स्थित वायु की परतों का भार अधिक होता है तथा ऊपर जाने पर हवा का घनत्व कम हो जाता है।

बोध प्रश्न- 2

1. सामान्य ताप पतन दर क्या है?

....

....

2. दैनिक औसत तापमान क्या है?

....

....

3. धरातल का औसत तापमान क्या है?

....

....

4. विश्व में सर्वाधिक ऊँचा तापमान कहाँ पाया जाता है?

....

....

5. दैनिक तापान्तर क्या है?

....

....

7.3.8 तापीय विलोमता

ऐसी दशा जबकि वायुमण्डल में नीचे कम ताप, उसके ऊपर अधिक ताप तथा पुन: ऊपर कम तापमान मिलता है, तापीय विलोमता या ताप का व्युत्क्रमण (Inversion of temperature) कहलाता है। ट्रिवार्था के अनुसार "ऐसी दशा जिसमें शीतल वायु धरातल के निकट तथा उष्ण वायु उससे ऊपर पायी जाती है, तापीय विलोमता कहते हैं। "यह स्थिति घाटियों, हिमाच्छादित प्रदेशों, ध्रुवीय प्रदेशों, मध्य अक्षांशों आदि भागों में अधिक पायी जाती है।

7.3.9 तापीय विलोमता के प्रकार

तापीय विलोमता को उत्पन्न करने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं तथा धरातल से प्रतिलोमन स्तर की सापेक्षित ऊँचाई (Relative height) के आधार पर इसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है -

1. धरातलीय अथवा निम्न स्तरीय विलोमता (Ground Inversion)

   (अ) पार्थिव विकिरण प्रतिलोमन (Rediation Inversion)

(ब) अभिवहन या सम्पर्कीय विलोमता (Advection Inversion)

2. उच्च स्तरीय विलोमता (Upper Air Inversion)

(अ) विस्तृत वायु राशियों के अवतलन से उत्पन्न विलोमता

(ब) विक्षोभ एवं संवहन द्वारा उत्पन्न विलोमता (Turbulence and Convective Inversion)

(स) तापीय उच्च वायुमण्डलीय विलोमता (Thermal Upper Atmosphere Inversion)

3. वाताग्री विलोमता (Frontal Inversion)

पार्थिव विकिरण प्रतिलोमन

इस प्रकार की विलोमता धरातल से संलग्न वायु की परतों में कुछ ऊँचाई तक पायी जाती है। इसकी उत्पत्ति का मुख्य कारण पार्थिव विकिरण (Terrestrial Radiation) जनित रात्रिकालीन शीतलन है। रात्रि में स्थल भाग शीघ्र एवं काफी ठण्डे हो जाते हैं। इस कारण इसके सम्पर्क में आने वाली वायु भी ठण्डी हो जाती है, जबकि इसके ठीक ऊपर उष्मा का हास कम होने से गर्म वायु की पर्त होती है। परिणामस्वरूप नीचे तापमान कम तथा ऊपर अधिक होने से तापीय विलोमता की स्थिति हो जाती है।

निम्न स्तरीय तापीय विलोमता पूर्ण विकसित रूप में पर्वतीय अथवा पठारी प्रदेशों की घाटियों में उत्पन्न होती है। शीतकाल की लम्बी रातों में पार्थिव विकिरण के कारण पर्वतों के ऊपरी ढाल अत्यधिक ठण्डे हो जाते हैं और उससे संलग्न वायु का तापमान काफी नीचे गिर जाता है। इसके विपरीत घाटियों के तलस्थ भागों में विकिरण से अपेक्षाकृत कम उष्मा हास के कारण तापमान ऊँचा होने से वायु गर्म तथा हल्की रहती है। फलस्वरूप ऊपर स्थित ठण्डी वायु भारी होने के कारण नीचे बैठने लगती है। इस कारण वायु में अधोमुखी संचार (Downward Circulation) प्रारम्भ हो जाता है। ये ठण्डी हवाएँ घाटी की तली में पहुँच कर गर्म तथा हल्की वायु को ऊपर धकेलने लगती है जिस कारण उसमें ऊर्ध्वाधर संचार (Upward Circulation) प्रारम्भ हो जाता है। परिणामस्वरूप ऊपरी भाग में गर्म तथा निचले भाग में ठण्डी वायु के कारण विलोमता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसे घाटी विलोमता (Valley Inversion) कहते हैं।

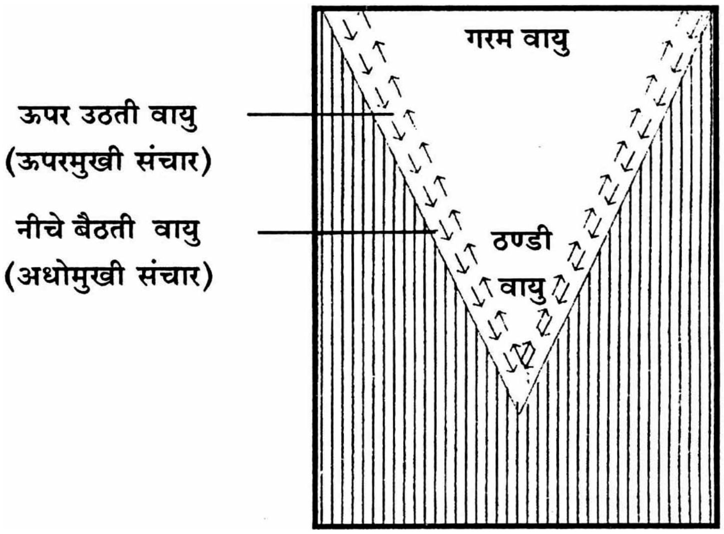

चित्र - 7.4 : घाटी प्रतिलोमन

अभिवहन प्रतिलोमन (Advection Inversion)

शीतल तथा उष्ण वायु राशियों के परस्पर मिलने से विस्तृत क्षेत्रों में तापमान की विलोमता उत्पन्न हो जाती है। शीतकाल में महाद्वीपों के धरातल अधिक ठण्डे हो जाते हैं जब उनकी ओर समीपवर्ती महासागरों के ऊपर से चलने वाली हवाएँ अथवा उष्ण कटिबन्धीय वायु राशियाँ, जिनका तापमान अपेक्षाकृत अधिक होता है, चलती हैं, तब ठण्डी वायु की परत के ऊपर उनकी स्थापना हो जाती है जिससे तापीय विलोमता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में महासागर महाद्वीपों की अपेक्षा ठण्डे होते हैं। जब महाद्वीपों पर से अधिक उष्ण स्थलीय वायु राशियाँ ठण्डे महासागरों की ओर आती हैं, तब वहाँ भी तापीय विलोमता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार महासागरों से चलने वाली ठण्डी वायु राशि महाद्वीपों पर पहुँचकर उनके धरातल के निकट की वायु को ऊपर उठा देती है तथा तापमान विलोमता उत्पन्न कर देती है।

अवतलन विलोमता (Susidence Inversion)

इस प्रकार की विलोमता वायुमण्डल में धरातल से कुछ ऊँचाई पर वायु के नीचे उतरने से उत्पन्न होती है। वायुमण्डल में गहरी और विस्तृत वायु राशियों के बड़े पैमाने पर अवतलन तथा नीचे उतरती हुई वायु के पार्श्ववर्ती फैलाव से भी प्रतिलोमन उत्पन्न हो जाता है। उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च वायुदाब क्षेत्रों (Subtropical High Pressure Areas) में, जहाँ प्रतिचक्रवातीय दशायें उत्पन्न होकर अधिक समय तक रहती हैं, उच्च स्तरीय तापीय विलोमता विशेष रूप से उत्पन्न होती है।

विक्षोभ एवं संवहन द्वारा उत्पन्न विलोमता (Turbulence and Convective Inversion)

कभी-कभी धरातल से कुछ ऊँचाई पर तापीय विलोमता वलयकृत प्रक्रियाओं के द्वारा उत्पन्न होती है। धरातलीय घर्षण से उत्पन्न वायु भँवर (Eddies) वायु को नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे ले जाती है। इसके अतिरिक्त धरातल के गर्म होने पर वायुमण्डल में उत्पन्न संवाहन धारायें गर्म वायु को ऊपर ले जाती हैं और शीतल वायु नीचे की ओर उतरती है। वायुमण्डल की जिन परतों में संवहन व विक्षोभ की क्रियायें होती हैं, उसमें वायु का भली भाँति मिश्रण हो जाता है वायु मिश्रण की इस ऊपरी सीमा पर तापीय विलोमता उत्पन्न हो जाता है।

तापीय उच्च स्तरीय विलोमता (Thermal Upper Atmospherice Inversion of Temperature)

वायुमण्डल में धरातल से 32 से 80 किमी के बीच ओजोन गैस मिलती है जो कि सौर्य विकिरण की पेराबैगनी किरणों (Ultra Violet Rays) का शोषण करती हैं, जिससे इस परत का तापमान अधिक हो जाता है। इस कारण इसके ऊपर तथा नीचे दोनों ओर कम तापमान होने से विलोमता की स्थिति बन जाती है।

वाताग्री विलोमता (Frontal Inversion of Temperature)

जब उष्ण तथा शीतल वायु राशियाँ आस-पास होती हैं तब शीतल वायु राशि उष्ण वायु राशि के नीचे स्फान (Wedge) की भाँति फैल जाती है। इन दोनों वायुराशियों की ढालुआ सीमा (Sloping Boundary) को वाताग्र (Front) कहते हैं। वाताग्र पर गर्म वायु ऊपर तथा ठण्डी वायु उसके नीचे होती है।

7.3.10 तापीय विलोमता के लिये उत्तरदायी कारक

तापीय विलोमता के लिये प्राय: निम्नलिखित कारक उत्तरदायी होते हैं -

1. **ढालू घाटियों :** अधिक तीव्र ढाल वाली गहरी घाटियों में ठण्डी वायु तीव्रता से नीचे उतर कर एकत्रित हो जाती हैं, जिससे तापीय विलोमता उत्पन्न हो जाती है।
2. **ठण्डी वायु राशि का आगमन :** जब ठण्डी वायु राशि किसी गर्म वायु राशि को ऊपर उठा देती है तो तापीय विलोमता की स्थिति पैदा हो जाती है।
3. **शुष्क वायु :** उष्णार्द्ध वायु पृथ्वी से विकिरण द्वारा निकलने वाली उष्मा को साख लेती है और ताप गिरने में बाधा डालती है। ठण्डी व शुष्क वायु में यह गुण न होने के कारण पृथ्वी शीघ्र ही ठण्डी हो जाती है।
4. **लम्बी रातें :** रात लम्बी होने पर विकिरण अधिक होता है एवं तापीय विलोमता की सम्भावना बढ़ जाती है। उच्च अक्षांशों में रातें लम्बी होती हैं जिससे वहाँ तापीय विलोमता होती है।
5. **स्थिर मौसम :** स्थिर मौसम में उष्मा विकिरण बिना रुके होता रहता है। मौसम में परिवर्तन न होने से एक जैसी परिस्थितियाँ बहुत समय तक बनी रहती हैं। अत: तापीय प्रतिलोमन में बाधा नहीं पड़ती।
6. **आकाश की स्वच्छता :** रात के समय पृथ्वी से निकलने वाली उष्मा बादलों से टकराकर वापस लौट जाती है जिससे पृथ्वी ठण्डी नहीं हो पाती। स्वच्छ आकाश में यह उष्मा वापिस नहीं लौटती जिससे पृथ्वी का तल शीघ्रता से ठण्डा हो जाता है और तापीय प्रतिलोमन की सम्भावना बढ़ जाती है।
7. **हिमाच्छादित प्रदेश :** उच्च प्रदेशों तथा ध्रुवीय भागों में जहाँ बर्फ जमी रहती है, वहाँ पर सौर्य विकिरण उष्मा का 90% तक परावर्तित हो जाता है। इस कारण धरातल से विकिरण कम मात्रा में होता है बर्फ के प्रभाव से सम्पूर्ण संलग्न वायु की परतें एकदम ठण्डी हो जाती है। तापीय विलोमता की यह एक आदर्श दशा कही जा सकती है।

बोध प्रश्न- 3

1. तापीय विलोमता क्या है?

   ....

   ....

2. एनाबेटिक पवन किसे कहते हैं?

   ....

   ....

3. तापीय उच्च वायुमण्डलीय विलोमता की स्थिति कहाँ पायी जाती है?

   ....

   ....

4. तापीय विलोमता के लिये मुख्य उत्तरदायी कारक कौन से हैं?

   ....

   ....

7.4. तापमान का क्षैतिज वितरण

ग्लोब पर तापमान का क्षितिजीय वितरण विशेष रूप से अक्षांश रेखाओं के आधार पर पाया जाता है। सामान्य रूप से तापमान भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर कम होता जाता है। प्राचीन यूनानी विद्वानों ने अक्षांशों के आधार पर सम्पूर्ण पृथ्वी को तीन तापीय कटिबन्धों में निम्न प्रकार से विभाजित किया -

1. **उष्ण कटिबन्ध (Torrid Zone) :** इसका विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 23 1/2° अक्षांशों तक (अर्थात् कर्क रेखा से मकर रेखा तक) होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में 23 1/2° N तक और दक्षिणी गोलार्द्ध में 23 1/2° S तक सूर्य एक बार लम्बवत (vertical) चमकता है।

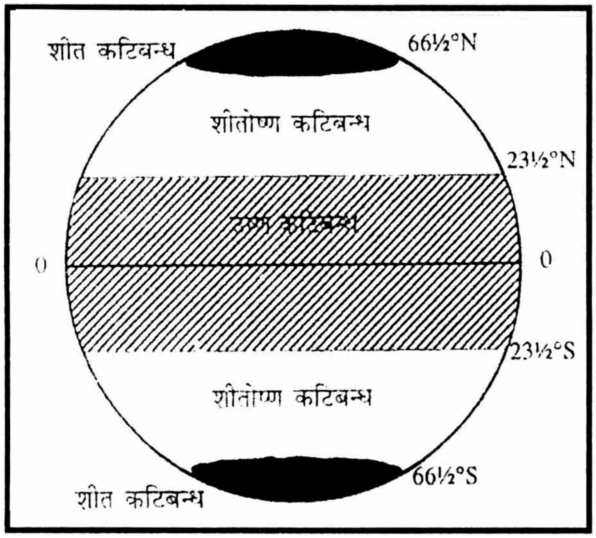

चित्र- 7.5 : ताप कटिबन्ध

2. शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate Zone) : इसका विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 23 1/2° से 66 1/2° अक्षांशों के बीच पाया जाता है। यहाँ सूर्य की किरणें सदैव तिरछी पड़ती हैं, अत: सूर्यातप की प्राप्ति कम होती है। इस भाग में न तो अधिक सर्दी पड़ती है और न ही अधिक गर्मी। यहाँ ग्रीष्म तथा शीत ऋतु में विशिष्ट अन्तर होता है।
3. शीत कटिबन्ध (Frigid Zone) : यह दोनों गोलार्द्धों में 66 1/2° C से ध्रुवों तक पाया जाता है। यहाँ सूर्य की किरणें अत्यधिक तिरछी पड़ती हैं, जिससे यह कटिबन्ध सदैव शीतल ही रहता है। यहाँ दिन तथा रात्रि की अवधि 24 घण्टे से अधिक होती है।

7.4.1 जनवरी का तापमान

मानचित्र में तापमान के प्रदर्शन के लिये समताप रेखाओं का उपयोग किया जाता है। समान तापमान वाले स्थनों को मिलाने वाली रेखा को समताप रेखा (Isotherm) कहते हैं। समताप रेखायें वास्तविक तापमान न बताकर समुद्र तल का तापमान बताती हैं। सर्वप्रथम सभी स्थानों का वास्तविक तापमान ज्ञात करते हैं। इसके पश्चात् यह ज्ञात किया जाता है कि वे स्थान यदि सागर तल पर होते तो कितना तापमान होता।

उत्तरी गोलार्द्ध में जनवरी का महीना अधिक ठण्डा होता है तथा इसके ठीक विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में जनवरी के महीने में अत्यधिक गर्मी होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल होने के कारण समताप रेखायें अधिक वक्री तथा परस्पर निकट दिखाई पड़ती हैं। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में जलमण्डल की प्रधानता के कारण समताप रेखायें अपेक्षाकृत दूर-दूर एवं कम वक्री की होती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में समताप रेखाओं की संख्या अधिक होती है। जनवरी में न्यूनतम तापमान उत्तरी पूर्वी साइबेरिया में अंकित किया जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में महाद्वीपों पर जनवरी की समताप रेखाओं के बीच की कम दूरी तापमान की अधिक प्रवणता का द्योतक है। इस महीने में धरातल पर सर्वोच्च तापमान की पेटी 30° द. अक्षांश के निकट महाद्वीपों के ऊपर पायी जाती है।

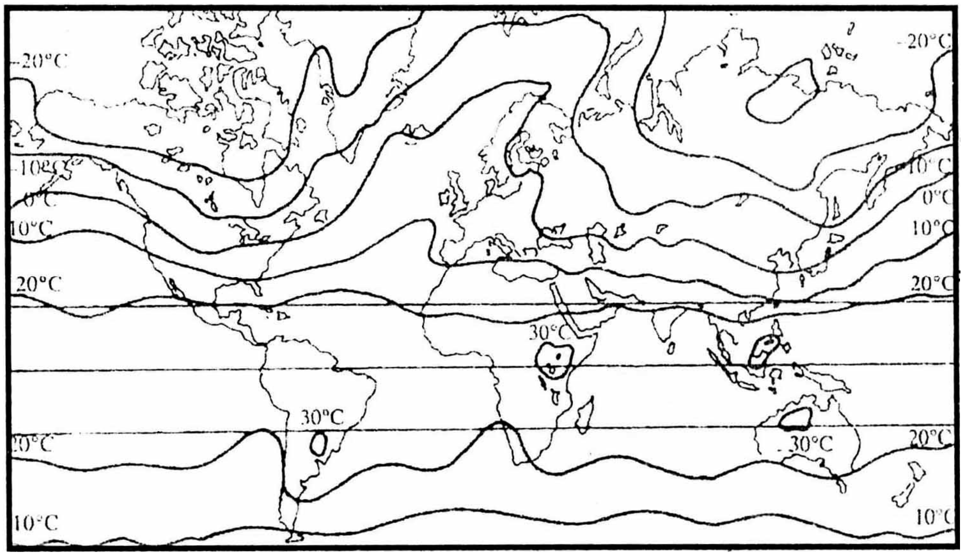

चित्र - 7. 6 : जनवरी माह की समताप रेखायें

7.4.2 जुलाई का तापमान

उत्तरी गोलार्द्ध में जुलाई का महीना अत्यधिक गर्म परन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध में ठण्डा होता है। जुलाई में अधिकतम तापमान उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीपों पर पाया जाता है। इस मास में उच्च तापमान (लगभग 32°C) की एक लम्बी विस्तृत पेटी उत्तरी अफ्रीका से दक्षिणी पश्चिमी एशिया होती हुई पश्चिमोत्तर भारत तक फैली हुई है। जुलाई में उत्तरी पूर्वी साइबेरिया समान अक्षांश में स्थित अन्य भागों की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है। इसका कारण महाद्वीपीय प्रभाव है। उत्तरी गोलार्द्ध में जुलाई में महासागरों की अपेक्षा महाद्वीप अधिक गर्म होते हैं। इस गोलार्द्ध में जनवरी की अपेक्षा जुलाई की समताप रेखायें कम तथा दूर-दूर पायी जाती हैं। इस महीने में दक्षिणी गोलार्द्ध मे. समताप रेखायें लगभग समानान्तर होती हैं। जबकि एशिया, अफ्रीका एवं उत्तरी अमेरिका मुहाद्वीपों पर अण्डाकार होती हैं जिनके केन्द्र में उच्च तापमान मिलता है।

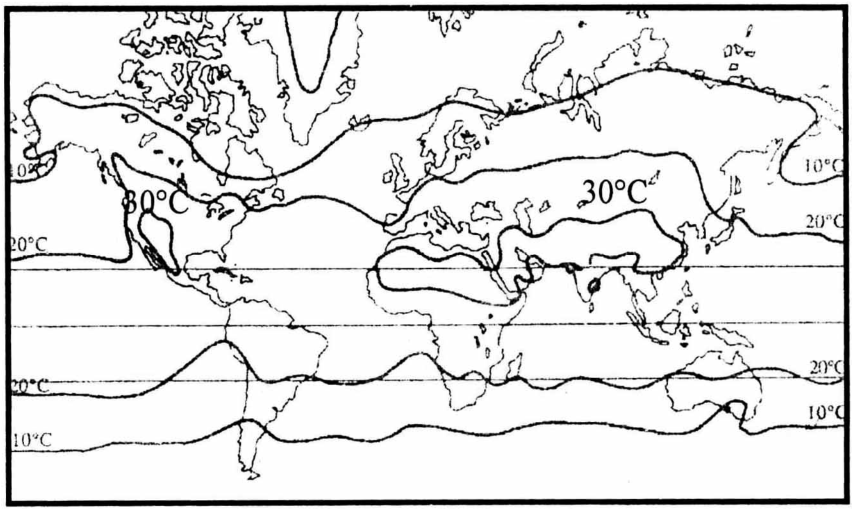

चित्र - 7.7 : जुलाई माह की समताप रेखायें

7.5 सारांश

सूर्य से प्राप्त होने वाले सौर विकिरण को सूर्यातप कहा जाता है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर सूर्यातप की मात्रा कम होती जाती है। सूर्यातप के वितरण को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों में सूर्य की किरणों का कोण, दिन -रात की अवधि, पृथ्वी से सूर्य की दूरी, सौर कलंकों की संख्या, स्थल एवं जल का प्रभाव एवं धरातल का रंग व स्वरूप हैं। पृथ्वी लघु तरंगों के रूप में उष्मा का अवशोषण करती है तथा पुन: इस अवशोषित उष्मा को दीर्घ तरंगों के रूप में विकरित करती हैं। सूर्य से प्राप्त होने वाली कुल ऊर्जा का 35% पृथ्वी के धरातल तक पहुँचने से पूर्व ही बादल, हिम आदि से परावर्तित होकर अंतरिक्ष में लौट जाता है जिसे एल्बिडो कहा जाता है। किसी भी दिन के उच्चतम एवं न्यूनतम तापमान के औसत को औसत दैनिक तापमान कहा जाता है। पर्वतीय घाटियों में जाड़े की रात में केटाबेटिक पवन (पर्वत समीर) घाटी के तापमान को नीचा कर देती है जबकि एनाबेटिक पवन (घाटी समीर) के कारण ऊपरी भाग का तापमान आधा हो जाता है। वायुमण्डल में ऊँचाई की ओर जाते हुए तापमान में प्रति एक हजार मीटर पर 6.5°C की दर से कमी आती है। ऐसी स्थिति जिसमें शीतल वायु धरातल के निकट तथा उष्ण वायु उससे ऊपर मिलती है, तापीय विलोमता कहते हैं। इसके लिये मुख्य उत्तरदायी कारकों में ढालू घाटियाँ, शुष्क वायु, लम्बी रातें, स्थिर मौसम, स्वच्छ आकाश, बर्फ से आच्छादित प्रदेश आदि हैं।

7.6 शब्दावली

सूर्यातप	:	सूर्य से पृथ्वी को प्राप्त होने वाला सौर्य विकिरण
माइक्रोन	:	विद्युत चुम्बकीय तरंगों के मापन की इकाई
लघु तरंगें	:	इसकी लम्बाई 0.44 माइक्रोन से कम होती है एवं सम्पूर्ण सूर्य शक्ति का 6 7' भाग इन तरंगों का होता है ।
विषुव	:	21 मार्च व 23 सितम्बर का दिन जब सूर्य भूमध्य रेखा पर लम्बवत् चमकता है ।
सक्रांति	:	सक्रांति दो होती हैं। 21 जून को जब सूर्य कर्क रेखा पर

		लम्बवत होता है, कर्क सक्रांति एवं 22 दिसम्बर को जब सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् होता है, मकर सक्रांति।
उपसौर	:	3 जनवरी का दिन जब सूर्य तथा पृथ्वी के बीच निकटतम दूरी 417, 000,000 कि मी. रहती है ।
अपसौर	:	4 जुलाई का दिन सूर्य तथा पृथ्वी के बीच अधिकतम दूरी 152, 000, 000 कि मी. रहती है ।
सौर कलंक	:	सूर्य की सतह पर दिखाई पड़ने वाले धब्बे ।
एल्बिडो	:	सूर्यताप का वो 35% भाग जो पृथ्वी के धरातल पर पहुँचने से पूर्व ही बादल, धूलकण, हिम आदि से परावर्तित होकर अंतरिक्ष में लौट जाता है।
चालन	:	इस क्रिया द्वारा एक अणु स्पर्श द्वारा दूसरे अणु को उष्मा प्रदान होता है।
विकिरण	:	किसी वस्तु में उष्मा प्राप्त करने के पश्चात् गर्म सतह से उत्सर्जित तरंगें।
औसत दैनिक तापमान	:	दिन के अधिकतम तथा न्यूनतम तापमान का औसत ।
दैनिक तापान्तर	:	दिन के अधिकतम तथा न्यूनतम तापमान का अन्तर ।
सामान्य ताप पतन दर	:	तापमान का लम्बवत रूप से प्रति 1000 मी. पर 6.5°C की दर से कम होना।
तापमान की विलोमता	:	ऐसी दशा जिसमें शीतल वायु धरातल के निकट तथा उष्ण वायु का उससे ऊपर पाया जाना।
घाटी समीर	:	शीतकाल में घाटियों की तली से अपेक्षाकृत जो वायु पर्वतीय भागों की ओर चलती है।
संवहन	:	तापीय विलोमता से उत्पन्न वायु की भँवरे जिसमें वायु नीचे से ऊपर व ऊपर से नीचे आती हैं।
उष्ण कटिबन्ध	:	कर्क रेखा से मकर रेखा के बीच का भाग।
शीत कटिबन्ध	:	दोनों गोलार्द्धों में 66 1/2° से ध्रुवों के बीच का भाग।
तापमान विसंगति	:	किसी स्थान का औसत तापमान तथा अक्षांशीय औसत तापमान का अन्तर।

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सविन्द्रसिह : भौतिक भूगोल, प्रयाग पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद, 2006
2. आर. एन. तिक्खा : भौतिक भूगोल, केदारनाथ, रामनाथ, मेरठ, 1998
3. चौहान एवं अलका गौतम : भौतिक भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 2003
4. जगदीश सिंह : भौतिक भूगोल, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001

5. मामोरिया : भौतिक भूगोल, साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, 2006

6.एच.एस.शर्मा,एम.एल.शर्मा व आर. एन. मिश्रा : भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005.

7. Stahler, A.N. : Physical Geography, John Wiley & Sons, London.

8. Lake, P. : Physical Geography, Cambridge University Press, Cambridge,m London.

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. विषुव की स्थिति भूमध्य रेखा पर 21 मार्च व 23 सितम्बर को पायी जाती है।
2. 3 जनवरी को पृथ्वी एवं सूर्य के बीच निकटतम दूरी 147,000,000 कि.मी.।
3. पृथ्वी सूर्य द्वारा अवशोषित उष्मा को दीर्घ तरंगों के रूप में विकरित करती है जिसे पार्थिव विकिरण कहते हैं।
4. लघु तरंगों को सूर्य से पृथ्वी तल तक पहुँचने में 8 मिनट 20 सैकण्ड लगते हैं।

बोध प्रश्न- 2

1. क्षोभ मण्डल में ऊँचाई के साथ तापमान में 1°C प्रति 165 मीटर की दर से कमी।
2. दिन के अधिकतम तथा न्यूनतम तापमान के औसत को दैनिक औसत तापमान कहते हैं।
3. पृथ्वी के धरातल का औसत तापमान 10°C है।
4. विश्व में सर्वाधिक ऊँचा तापमान अजीजिया में पाया जाता है।
5. दिन के अधिकतम व न्यूनतम तापमान के अन्तर को दैनिक तापान्तर कहते हैं।

बोध प्रश्न- 3

1. दशा जिसमें शीतल वायु धरातल के निकट तथा उष्ण वायु उससे ऊपर पायी जाती है। तापीय विलोमता कहते हैं।
2. पर्वतीय घाटियों में जाड़े की लम्बी रातों में पर्वतीय भागों से ठण्डी व भारी वायु घाटी तली की ओर जाने लगती है जबकि घाटी तली से गर्म तथा हल्की वायु ऊपर की ओर आने लगती है। पवन के इस उपरिमुखी संचार को एनाबेटिक पवन कहते हैं।
3. वायुमण्डल में धरातल से 32 से 80 किमी. के बीच।
4. ढालू घाटियाँ, शुष्क वायु, लम्बी रातें, स्थिर मौसम, स्वच्छ आकाश, हिमाच्छादित प्रदेश आदि।

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. धरातल पर तापमान के क्षितिजीय वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये।
2. तापीय विलोमता के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिये।

3. सूर्यातप से आप क्या समझते हैं? इसके वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये।
4. पृथ्वी के उष्मा बजट का विवरण दीजिये।

इकाई-8 : वायुदाब

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 वायुदाब
    8.2.1 भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब पेटी
    8.2.2 उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटियाँ
    8.2.3 उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटियाँ
    8.2.4 ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटियाँ
8.3 वायुदाब पेटियों का मौसमीक खिसकाव
8.4 वायुदाब का ऊर्ध्वाधर वितरण
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7` संदर्भ ग्रन्थ
8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- आप वायुदाब के अर्थ व उसके तापमान से संबंध को जान पायेंगे,
- आप यह समझ जायेंगे कि वायुदाब का वैश्विक प्रतिरूप कैसा है, उसकी पेटियाँ कितनी हैं, तथा ये वायुदाब पेटियाँ मौसम के अनुसार कैसे खिसकती हैं तथा
- आप धरातल पर वायुदाब के उर्ध्वाधर वितरण के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.1 प्रस्तावना

1. वायुमण्डल में विभिन्न गैसें पाई जाती हैं। इनमें दाब अथवा भार होता है जिसका अनुभव मानव को ऊँचाई परिवर्तन पर होता है। जब मनुष्य ऊँचे पर्वतों पर जाता है तो उसके नाक तथा कान में से खून निकलने लगता है। ऐसा ऊँचाई पर वायुदाब की कमी के कारण होता है।
2. सागर तल के प्रति इकाई क्षेत्र पर वायुमण्डल की समस्त परतों के पड़ने वाले भार को ही वायुदाब कहते हैं। वायुदाब मापने के लिए वायुदाबमापी (Barometer) का उपयोग किया जाता है। इसके निम्न प्रकार हैं - (1) फोर्टिन वायुदाब मापी (Fortin's Barometes) (2) निर्द्रव वायुदाबमापी (Aneroid Barometer) तथा (3) वायुदाब स्वलेखी (Barography)।

सर्वाधिक वायुदाब सागर तल पर पाया जाता है। इसका मापन मिलीबार, इंच या सेंटीमीटर में किया जाता है। किसी स्थान पर वायुदाब निरंतर परिवर्तित होता रहता है। समान वायुदाब वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समदाब रेखा (Isobar) कहते हैं। वायुदाब व तापमान में विपरीत संबंध है अर्थात् तापमान अधिक होने पर वायुदाब कम तथा तापमान कम होने पर वायुदाब अधिक होता है। प्रति 600 फीट की ऊँचाई पर एक इंच या 3.4 मिलीबार की दर से बायुदाव में कमी आती है। वायुदाब का वैश्विक प्रतिरूप भिन्न होने से इसकी अलग-अलग पेटियां पायी जाती हैं। धरातल पर इसके ऊर्ध्वाधर या लम्बवत् वितरण में भी भिन्नताएँ मिलती हैं। वायुदाब पेटियों में मौसम के अनुसार खिसकाव होता रहता है।

8.2 वायुदाब पेटियाँ (Pressure Belts)

धरातल पर वायुदाब का वितरण समान नहीं है। वायुदाब को तापमान, आर्द्रता, ऊंचाई, दिन व रात, जल व स्थल तथा पृथ्वी की दैनिक गति आदि कारक प्रभावित करते हैं। दो स्थानों के मध्य वायुदाब के अन्तर को वायुदाब प्रवणता (Pressure Gradient) कहते हैं। वायुदाब में अचानक कमी भयंकर तूफान की सूचक होती है।

ग्लोब पर समान दबाव वाले क्षेत्रों को एक पेटी या कटिबंध (Belt) कहते हैं। इन पेटियों की उत्पत्ति की प्रक्रिया के आधार को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं - (1) तापजन्य वायुदाब पेटियाँ (Thermally Induced Pressure Belts) (2) गतिजन्य वायुदाब पेटियाँ (Dynamically Induced Pressure Belts)। तापजन्य वायुदाब के अन्तर्गत भूमध्यरेखीय निम्नवायु दाब पेटी तथा ध्रुवीय उच्च वायु दाब पेटी को शामिल किया जाता है। गतिजन्य वायुदाब पेटियों के अन्तर्गत उपोष्ण उच्च वायुदाब तथा उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी को शामिल करते हैं।

8.2.1 भूमध्यरेखीय निम्न दाब पेटी (Equatorial Low Pressure Belt)

यह पेटी भूमध्यरेखा के उत्तर व दक्षिण में 5° अक्षांशों के मध्य मिलती है। यह पेटी मौसम के अनुसार सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन होने पर उत्तर -दक्षिण को खिसकती रहती है। इसे तापजन्य पेटी के समूह में रखा जाता है क्योंकि इस कम दाब की पेटी का तापमान से प्रत्यक्ष संबंध है। यहां का तापमान भूमध्यरेखा पर सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ने से अधिक रहता है। वायुमण्डल में नमी का अधिक होना भी कम वायुदाब के लिए उत्तरदायी है। इस क्षेत्र में वायु की ऊर्ध्वाधर गति होने के कारण इसे शांत क्षेत्र (Calm Area) या डोलड्रम (Doldrum) कहते हैं। इस पेटी में उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्ध से आने वाली व्यापारिक हवाओं (Trade winds) का अभिसरण (Convergence) भी होता है ।

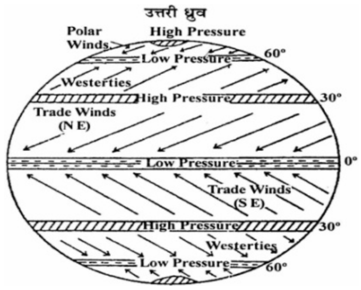

चित्र - 8.1 : वायुदाब पेटियाँ

8.2.2 उपोष्ण उच्च दाब पेटियाँ (Sub-Tropical High Pressure Belts)

ये उच्च वायुदाब पेटियाँ उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों में 30° से 35° अक्षांशों के मध्य पायी जाती हैं। इन अक्षांशों को अश्व अक्षांश (Horse Latitudes) भी कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन समय में जब पालदार नावों में स्पेन से घोड़े लेकर नई दुनिया (उत्तरी अमेरिका) की ओर जाते थे तो इन अक्षांशों में उच्चदाब होने से ये नावें डगमगाने लगती थी। ऐसी स्थिति में नावों के भार में कमी लाने हेतु कुछ अश्वों को समुद्र में फेंक दिया जाता था। इसीलिये इनको अश्व अक्षांश कहा जाने लगा। इन पेटियों की उत्पत्ति में गत्यात्मक कारकों का विशेष योगदान होने से इन्हें गतिजन्य पेटियाँ कहा जाता है। यहाँ सदैव मेघ रहित आकाश तथा उच्च वायुदाब मिलता है। विश्व के सभी उष्ण मरूस्थल महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर इसी पेटी में स्थित हैं।

8.2.3 उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटियाँ (Sub-Polar Low Pressure Belts)

ये पेटियों 60° से 65° अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धो में पायी जाती हैं। ये गतिजन्य वायुदाब पेटियाँ हैं। पृथ्वी की घूर्णन गति (Rotation) के कारण इन अक्षांशों में वायु फैलकर स्थानांतरित हो जाती है। इस कारण तापमान कम होते हुए भी निम्न वायु दाब का आविर्भाव हो जाता है। इसका विस्तार आर्कटिक तथा अण्टार्कटिक वृत्तों के समीप मिलता है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल भाग की अधिकता के कारण उसकी निरंतरता में कमी पायी जाती है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागरीय विस्तार के कारण यह पेटी चारों ओर नियमित रूप से पायी जाती है।

8.2.4 ध्रुवीय उच्च वायु दाब पेटियाँ (High Pressure Belt)

इन पेटियों का विस्तार 80° से 90° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों में है। ये तापजन्य वायुदाब पेटियाँ हैं। यहाँ पर वायु की अत्यधिक शीतलता तथा भारीपान के कारण उच्च वायुदाब पाया जाता है। यहां तापमान सामान्यत: हिमांक से नीचे ही रहता है।

बोध प्रश्न-1

1. अधिक ऊँचाई पर जाने से नाक-कान में से खून क्यों आने लगता है?

   ....

   ....

2. वायुदाब मापने की इकाइयां कौन-कौनसी हैं?

   ....

   ....

3. वायुदाब व तापमान में क्या संबंध है?

   ....

   ....

4. वायुदाब प्रवणता क्या है?

   ....

   ....

5. डोलड्रम तथा अश्व अक्षांश किसे कहते हैं?

....
....

8.3 वायुदाब पेटियों का मौसमी खिसकाव

सूर्य उत्तरायण व दक्षिणायन होने के कारण ही वायुदाब पेटियों का भी खिसकाव होता रहता है। सूर्य कर्क रेखा पर 21 जून को लम्बवत् चमकता है, इससे सभी वायुदाब पेटियां उत्तर दिशा में खिसक जाती हैं। सूर्य दक्षिणायन होने पर 23 दिसम्बर को मकर रेखा पर 'लम्बवत् चमकता है, इससे वायुदाब पेटियाँ दक्षिण की ओर सरक जाती हैं। सूर्य के 21 मार्च तथा 23 सितम्बर को भूमध्यरेखा पर लम्बवत् चमकने पर ही वायुदाब पेटियों की आदर्श स्थिति रहती है।

8.4 वायुदाब का ऊर्ध्वाधर वितरण

ऊर्ध्वाधर वितरण से तात्पर्य ऊँचाई के साथ वायुदाब की दशाओं से है। ऊँचाई के साथ वायुदाब सदैव घटता जाता है लेकिन इसके घटने की दर एक समान नहीं होती है। इसका घटना बढ़ना वायु के घनत्व, तापमान, गुरूत्वाकर्षण शक्ति व जल वाष्प की मात्रा आदि कारकों पर निर्भर करता है। ये सभी कारक परिवर्तनशील होते हैं, फिर भी सामान्यत: यह मानते हैं कि क्षोभमण्डल में वायुदाब औसत रूप से प्रति 300 मीटर की ऊँचाई पर लगभग 34 मिलीबार कम हो जाता है। अधिक ऊँचाई पर वायु विरल हो जाने से वायुदाब अधिक शीघ्रता से घटता है। लगभग 5500 मीटर की ऊँचाई पर यह केवल एक चौथाई रह जाता है। मानव इतने कम वायुदाब में जीवित नहीं रह सकता है। इसलिये रॉकेटों व अन्तरिक्ष यानों में विशेष प्रकार के यंत्रों के साथ ही मानव जाता है।

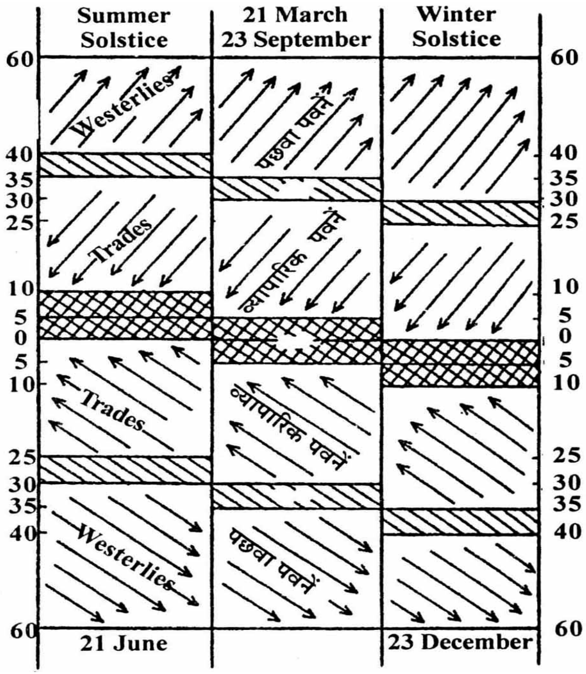

चित्र 8.2 : वायुदाब पेटियों का खिसकाव

बोध प्रश्न-2

1. वायुदाब पेटियों के खिसकाव का संबंध किससे है?

   ....

   ....

2. 21 जून व 23 दिसम्बर को सूर्य लम्बवत् रूप से कहाँ चमकता है?

   ....

   ....

3. सामान्य रूप से ऊंचाई की ओर वायुदाब किस दर से कम होता है?

   ....

   ....

8.5 सारांश

वायुदाब मौसम एवं जलवायु में परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। वायु के भार को ही वायुदाब कहते हैं। वायुदाब फोर्टिन, एनीरॉइड वायुदाबमापी व बैरोग्राफ से मापा जाता है। इसे मिलीबार, सेंटीमीटर या इंच में मापते हैं। समान वायुदाब वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समदाब रेखा कहा जाता वायुदाब को आर्द्रता, तापमान, समुद्रतल से ऊँचाई, दिन-रात की अवधि, जल व स्थल तथा पृथ्वी की दैनिक गति आदि प्रभावित करते हैं। धरातल पर वायुदाब का वितरण समान नहीं है। इसमें ऊर्ध्वाधर तथा क्षितिजवत् भिन्नताएँ मिलती हैं। धरातल की वायुदाब पेटियां दो रूपों में उत्पन्न होती हैं - (1) ताप जनित व (2) गति जनित।

1. **भूमध्य रेखीय निम्न वायुदाब पेटी :** 5 डिग्री उत्तर से 5 डिग्री दक्षिणी अक्षांशों के मध्य मिलती है। हवायें शांत रहने से इसे शांत क्षेत्र या डोलड्रम कहते हैं।
2. **उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटियाँ :** 30 डिग्री से 35 डिग्री उत्तरी व दक्षिणी आक्षांशों के मध्य मिलती हैं। इन्हें अश्व अक्षांश भी कहते हैं।
3. **उपध्रुवीय न्यून वायुदाब पेटियाँ :** 60° से 65° अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धो में मिलती है।
4. **ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटियाँ :** इनका विस्तार 80 डिग्री से 90 डिग्री उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के मध्य है।

सूर्य की उत्तरायण व दक्षिणायन स्थितियों के अनुसार वायुदाब पेटियों का मौसमी खिसकाव होता है। ऊँचाई की ओर जाने पर 300 मीटर यह 34 मिलीबार वायुदाब कम हो जाता है।

8.6 शब्दावली

वायुदाब पेटी (Air Pressure Belt)	:	समान दाब वाला निरन्तर क्षेत्र
वायुदाबमापी (Barometer)	:	वायुदाब को मापने वाला यंत्र
वायुदाब प्रवणता (Air Pressure Gradient)	:	वायुदाब का ढाल

तापजन्य वायुदाब पेटी(Thermal Pressure Belt)	:	ताप के कारण जनित
गतिजन्य वायुदाब(Dynamically induced Pressure Belt)	:	गति के कारण जनित
अभिसरण (Convergence)	:	दो भिन्न वायु राशियों का मिलना
व्यापारिक हवायें (Trade Winds)	:	भूमध्य रेखीय न्यून दाब व उपोष्ण उच्च दाब के मध्य चलने वाली पवनें
पछुवा हवायें (Westerlies)	:	उपोष्ण उच्च दाब व उपध्रुवीय न्यून दाब के मध्य चलने वाली पवनें
अश्व अक्षांश (Horse Latitude)	:	उपोष्ण उच्च दाब के क्षेत्र

8.7 सन्दर्भ ग्रंथ

1. शर्मा, शर्मा व मिश्रा : भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005
2. सविन्द्र सिंह : भौतिक भूगोल, प्रयाग पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद, 2006
3. F.J. Monkhouse : Principles of Physical Geography, London, 1962

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. वायुदाब की न्यूनता के कारण।
2. इंच, सेंटीमीटर व मिलीबार
3. विपरीत संबंध है।
4. दो स्थानों के मध्य वायुदाब का अन्तर।
5. डोलड्रम भूमध्यरेखीय न्यून वायुदाब तथा अश्व अक्षांश उपोष्ण उच्च वायुदाब की पेटी को।

बोध प्रश्न- 2

1. सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन होने से।
2. सूर्य 21 जून को कर्क रेखा तथा 23 दिसम्बर को मकर रेखा पर लम्बवत् चमकता है।
3. सामान्यत: 300 मीटर पर 34 mb की दर से कमी आती है।

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वायुदाब को प्रभावित करने वाले कारक कौन -कौनसे हैं?
2. वायुदाब पेटियों का विस्तृत वर्णन कीजिये ।
3. धरातल पर वायुदाब पेटियों के वितरण का चित्र बनाइये।
4. वायुदाब पेटियों के मौसमिक खिसकाव को स्पष्ट कीजिये।
5. वायुदाब के ऊर्ध्वाधर वितरण के बारे में लिखिए।

इकाई-9 :पवन परिसंचरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 पवन व उनके प्रकार

- 9.2.1 स्थायी पवनें
- 9.2.2 सामयिक पवनें
- 9.2.3 स्थानीय पवनें

9.3 वायु राशियाँ व उनका वर्गीकरण

9.4 चक्रवात व उससे संबंधित मौसम

- 9.4.1 उष्णकटिबंधीय चक्रवात
- 9.4.2 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात

9.5 प्रतिचक्रवात व उससे संबंधित मौसम

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ पायेंगे :

- पवन संचरण के लिये उत्तरदायी कारक तथा पवनों के विभिन्न प्रकार,
- वायुराशियों का निर्माण व उनका वर्गीकरण,
- चक्रवात व प्रतिचक्रवात की उत्पत्ति तथा उनसे संबंधित मौसम तथा
- मेघ निर्माण की प्रक्रिया तथा उनके प्रकार ।

9.1 प्रस्तावना

धरातल के गर्म होने की दर अलग-अलग होती है। इससे वायुदाब में भिन्नता उत्पन्न होती है। जिस प्रकार जल ऊंचे से निचले भागों की ओर बहता है ठीक वैसे ही पवनें उच्च वायुदाब क्षेत्र से निम्न वायुदाब की ओर प्रवाहित होती हैं। वायुमण्डल में होने वाले सभी प्रकार के इन परिसंचरण को तीन वर्गो में रखा जा सकता है : प्राथमिक, द्‌वितीयक व तृतीयक। सभी स्थायी पवनें प्राथमिक परिसंचरण तंत्र के अन्तर्गत आती हैं। चूंकि ये अन्य सभी परिसंचरण के लिये बुनियादी ढाँचा प्रदान करते हैं इसलिये इसे प्राथमिक परिसंचरण कहा जाता है। द्‌वितीयक परिसंचरण में चक्रवात, प्रतिचक्रवात, वायुराशियाँ व मानसून आते हैं जबकि तृतीयक परिसंचरण में वे सभी संचरण सम्मिलित हैं जो स्थानीय मौसम को प्रभावित करते हैं।

9.2 पवन व उनके प्रकार

हवा का क्षैतिज प्रवाह पवन कहलाता है। हवा के उर्ध्वाधर प्रवाह को वायु धारा (Air Current) कहते हैं। पवन का नामकरण उस दिशा से होता है जिधर से वह आती है। पश्चिम से आने वाली हवायें पछुआ हवायें कहलाती हैं। वायुदिग्दर्शी यंत्र (Wind Vane) से पवन की दिशा ज्ञात की जाती है। पवन की गति जानने के लिये पवन वेगमापी (Anemometer) का उपयोग होता है। धरातल पर पवन का वेग किलोमीटर प्रति घंटा में तथा समुद्र पर नॉट प्रति घंटा में दर्शाया जाता है।

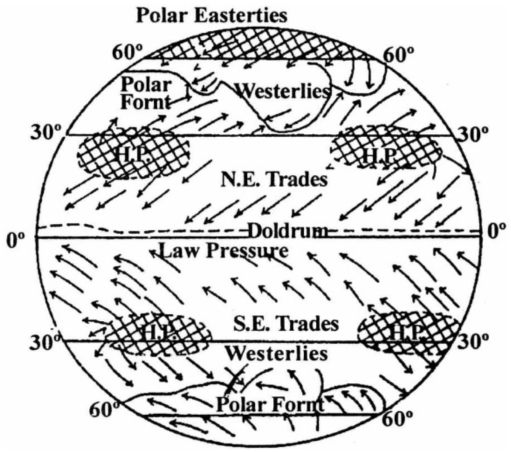

चित्र - 9.1 : स्थायी हवायें

घूमती हुयी पृथ्वी का प्रभाव पवनों की दिशा पर पड़ता है। इसे फेरल का नियम (Ferrel's Law) कहा जाता है। इसके अनुसार घूर्णन करती हुई पृथ्वी पर सभी स्वतंत्रतापूर्वक गतिमान वस्तुयें उत्तरी गोलार्द्ध में अपने दायीं ओर व दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बायीं ओर विस्थापित हो जाती हैं।

9.2.1 स्थायी पवनें

ये सम्पूर्ण भूमण्डल पर चलने वाली हवायें हैं जो साल भर एक निश्चित दिशा में चलती रहती हैं। ये विश्व की स्थायी वायुदाब पेटियों की स्थिति के अनुरूप संचरित होती हैं। इन्हें प्राथमिक अथवा ग्रहीय या स्थायी पवनें कहा जाता है। इन स्थायी पवनों में व्यापारिक, पछुआ व ध्रुवीय पवनें शामिल हैं (चित्र- 9.1)।

- **व्यापारिक पवनें :** ये पवनें उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी से भूमध्य रेखीय न्यून वायुदाब पेटी की ओर प्रवाहित होती हैं। इनका प्रवाह क्षेत्र दोनों गोलार्द्धों में 5^0 से 30^0 अक्षांशों के बीच है। दोनों गोलार्द्धों की व्यापारिक हवायें भूमध्य रेखा के समीप जहाँ आपस में मिलती हैं उसे अंतर-उष्टकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (Inter-Tropical Covergence Zone) क्षेत्र कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये उत्तर -पूर्वी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्वी दिशा से चलती हैं।
- **पछुआ पवनें :** ये पवनें उपोष्णकटिबंधीय उच्च वायुदाब पेटी से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी की ओर प्रवाहित होती हैं। ये दोनों गोलार्द्धों में 35^0 से 60^0 अक्षाशों के मध्य चलती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थलखण्ड अपेक्षाकृत कम हैं। स्थलीय बाधाओं के अभाव

में यहाँ पछुआ पवनें प्रचण्ड वेग से प्रवाहित होती हैं। इन वेगवती पवनों को ''गरजने वाली चालीसा' 'प्रचण्ड पचासा' व 'चीखती साठा' के नामों से पुकारा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये पवनें दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिणक्ष गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम से चलती हैं।

- **ध्रुवीय पवनें :** ध्रुवीय उच्च वायुदाब पेटी से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब पेटी की ओर बहने वाली हवायें ध्रुवीय पवनों के नाम से जानी जाती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये पवनें उत्तर-पूर्व तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्व से चलती हैं।

9.2.2 सामयिक पवनें

- **मानसूनी पवनें :** मानसून शब्द 'मौसिम' शब्द से बना है। मौसिम का शब्दिक अर्थ होता है -ऋतु। यह शब्द उन पवनों के लिये प्रयुक्त होता है जो ऋतु परिवर्तन के साथ अपनी प्रवाह दिशा में पूर्ण उत्क्रमण करती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में मानसूनी हवाओं का सर्वोत्तम विकास हुआ है। ग्रीष्म ऋतु में एशिया भूखण्ड तप्त हो जाता है और उत्तर-पश्चिमी भारत में निम्न वायुदाब क्षेत्र निर्मित हो जाता है। हिन्द महासागर पर स्थित उच्च वायुदाब क्षेत्र से हवायें न्यून वायुदाब केन्द्र की ओर बढ़ती हैं। भूमध्य रेखा के दक्षिण में इन हवाओं की दिशा दक्षिण-पूर्व होती है लेकिन जैसे ही ये उत्तरी गोलार्द्ध में प्रवेश करती हैं फेरल के नियमानुसार इनकी दायीं ओर विस्थापित होने से दक्षिण-पश्चिम हो जाती है। ये पवनें भारतीय उपमहाद्वीप पर भारी वर्षा करती हैं। सर्दियों में उत्तरी-पश्चिमी भारत में उच्च वायुदाब क्षेत्र व हिंद महासागर में न्यून वायुदाब केन्द्र बन जाते हैं। अब मानसूनी पवनों की दिशा भारतीय महाद्वीप से महासागर की ओर होती है। इसलिये ये सामान्यत: वर्षा नहीं कर पाती हैं। इसे शीतकालीन मानसून कहा जाता है।

9.2.3 स्थानीय पवनें

इस वर्ग में ऐसी हवायें आती हैं जो अपेक्षाकृत छोटे भूभाग के मौसम को प्रभावित करती हैं। ये पवनें अपनी स्थानीय परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं।

- **सागर-स्थल समीर :** ये समुद्र तटीय क्षेत्र में चलने वाली दैनिक पवनें हैं। दिन के समय तटीय क्षेत्र सागर की तुलना में शीघ्र गर्म हो जाते हैं और स्थल भागों पर निम्न वायुदाब निर्मित हो जाता है। इस समय समुद्र पर उच्च वायुदाब होने के कारण पवनें सागर से तट की ओर चलने लगती हैं। चूंकि हवा सागर की ओर से आ रही है इसलिये इसे सागरी अथवा जल समीर कहा जाता है। इसके चलने से तटीय प्रदेश में तापमान ज्यादा नहीं बढ़ पाते हैं क्योंकि सागर से आने वाली पवन अपेक्षाकृत शीतल होती है। रात्रि के समय स्थल शीघ्रता से ठण्डे हो जाते हैं लेकिन समुद्र गर्म रहता है। अर्थात् उच्च वायुदाब स्थल भागों पर व न्यून वायुदाब समुद्र पर स्थित होते हैं। अत: हवाओं का प्रवाह तट से समुद्र की ओर होता है। इसे स्थल समीर कहा जाता है। सागर -स्थल समीर से तटीय प्रदेशों में दैनिक व वार्षिक तापान्तर कम रहते हैं।

- **पर्वत-घाटी समीर :** पर्वतीय क्षेत्रों में दिन के समय सूर्यताप से घाटियाँ गर्म हो जाती हैं और उसके सम्पर्क में आने वाली वायु गर्म होकर हल्की हो जाती है तथा हवा घाटी से पर्वतीय ढलानों के सहारे ऊपर की ओर उठती है। चूंकि हवा घाटी की ओर से आती है इसलिये इसे घाटी समीर कहा जाता है। रात्रि के समय स्थिति विपरीत हो जाती है। पर्वतीय उच्च ढाल रात्रि के समय शीघ्रता से ठण्डे हो जाते हैं। यहाँ स्थित वायु भी ठण्डी होने से भारी हो जाती है। शीतल पवन ढलानों के सहारे घाटी में नीचे की ओर उतरती है। इन्हें पर्वतीय समीर के नाम से जाना जाता है।
- **लू (Loo) :** उत्तर भारत के मैदानों में मई -जून के गर्म महीनों में दोपहर के बाद लू चलती है। यह स्व तप्त व शुष्क हवा है। इस हवा का तापमान 45° से 50° सैल्सियस के बीच होता है। इसके झुलसाने वाले प्रभाव से अनेक लोग बीमार हो जाते हैं।
- **काल बैशाखी (Norwester) :** उत्तरी भारत के मैदानों में अप्रेल से जून में आने वाली आँधियां जो प्राय: धूल भरी होती हैं, काल बैशाखी के नाम से जानी जाती हैं। ये गरज-चमक के साथ वर्षा प्रदान करती हैं। आसाम में चाय की फसल के लिये यह वर्षा अत्यधिक लाभकारी होती है।
- **चिनूक (Chinook) :** यह एक शुष्क व गर्म हवा है जो संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा के मौसम को प्रभावित करती है। बसंत ऋतु में यह स्थानीय पवन रॉकी पर्वत को पार कर प्रेयरी घास के मैदानों में प्रवेश करती है और कुछ ही घंटों में 15° से 20° सेल्सियस तापमान बढ़ जाता है। इस कारण धरातल पर जमी हुई बर्फ की परत तेजी से पिघल जाती है। बर्फ पिघलने के साथ ही गेहूं की बुवाई प्रारंभ हो जाती है। रैड इण्डियन द्वारा बोली जाने वाली भाषा में चिनूक का अर्थ होता है - एक हिमभक्षी।
- **फोन (Foehn) :** चिनूक की तरह यह भी एक गर्म व शुष्क हवा है जो शीत ऋतु में आल्प्स पर्वत को पार कर यूरोप में राहत प्रदान करती है। इसके आगमन से तापमान 10° सेल्सियस तक बढ़ जाते हैं और अंगूर की फसल को पकने में मदद मिलती है।
- **हारमट्टन (Harmattan) :** यह उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका में चलने वाली नम व धूल भरी पवन है। इस पूर्वी हवा के आगमन से भीषण गर्मी में राहत मिलती है। इसे स्थानीय लोग डॉक्टर ' की संज्ञा देते हैं।

बोध प्रश्न- 1

निम्नलिखित के लिये एक पारिभाषिक शब्द बताइये।

1. धरातल के सहारे वायु का क्षैतिज प्रवाह।

   ……………………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………………

2. उर्ध्वाधर रूप से बहने वाली वायु।

   ……………………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………………

3. स्थायी पवन जो उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी से भूमध्य रेखीय निम्न वायुदाब पेटी की ओर बहती है।

....

....

4. रॉकी पर्वत के पूर्व की ओर बहने वाली गर्म और शुष्क पवन।

....

....

5. उत्तर भारत में ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली गर्म व शुष्क हवा।

....

....

6. आल्प्स पर्वत की उत्तरी ढलानों से होकर बहने वाली गर्म स्थानीय पवन।

....

....

7. पवनें जो ऋतुओं के अनुसार अपनी बहाव दिशा में परिवर्तन करती हैं।

....

....

8. पवनें जो उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी से उपध्रुवीय न्यून वायुदाब पेटी की ओर प्रवाहित होती हैं।

....

....

9.3 वायु राशियाँ व उनका वर्गीकरण

जब वायु लम्बे समय तक एक स्थान पर बनी रहती है तो उसमें धरातल की विशेषतायें आ जाती हैं। जैसे साइबेरिया के ठण्डे प्रदेश की वायु में शीतलता का गुण पैदा होना या महासागर पर स्थित वायु में आर्द्रता बढ़ना। वायु की स्व विस्तृत समरूप राशि जो एक बड़े भूभाग पर छायी रहती है और जिसमें तापमान, आर्द्रता आदि विशेषताओं की एकरूपता पायी जाती है, वायुराशि (Airmass) कहलाती है। इनका विस्तार कई बार हजारों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में होताहै। एक वायुराशि समरूप पिण्ड के रूप में व्यवहार करती है।

तापीय विशेषताओं के आधार पर वायु राशियों के दो प्रकार होते हैं: उष्णकटिबंधीय (T) तथा ध्रुवीय (P)। आर्द्रता के आधार पर इन्हें पुन: दो भागों में बांटा जा सकता है : महाद्वीपीय (c) व समुद्री (m)। इस प्रकार तापमान व आर्द्रता के आधार पर वायु राशियों के चार प्रमुख प्रकार होते हैं उष्णकटिबंधीय महाद्वीपीय (cT), उष्णकटिबंधीय समुद्री (mT), ध्रुवीय महाद्वपीय (cP), ध्रुवीय सागरीय (mP)।

वायुराशियों के गुणों में उस समय परिवर्तन आ जाता है जब वे एक स्थान से अन्यत्र स्थानांतरित होती है क्योंकि मार्ग में पड़ने वाली पृथक मौसमी दशाओं से वे प्रभावित होती हैं। जैसे तप्त धरातल पर गुजरते समय वायुराशि की निचली परतें गर्म हो जाती हैं और इससे वायुराशि में अस्थिरता भी आ सकती है। ध्रुवीय व उष्णकटिबंधीय वायुराशियों के प्रत्येक के 14 प्रकार होते हैं। वायुराशियों का वर्गीकरण यहां प्रस्तुत हैं:

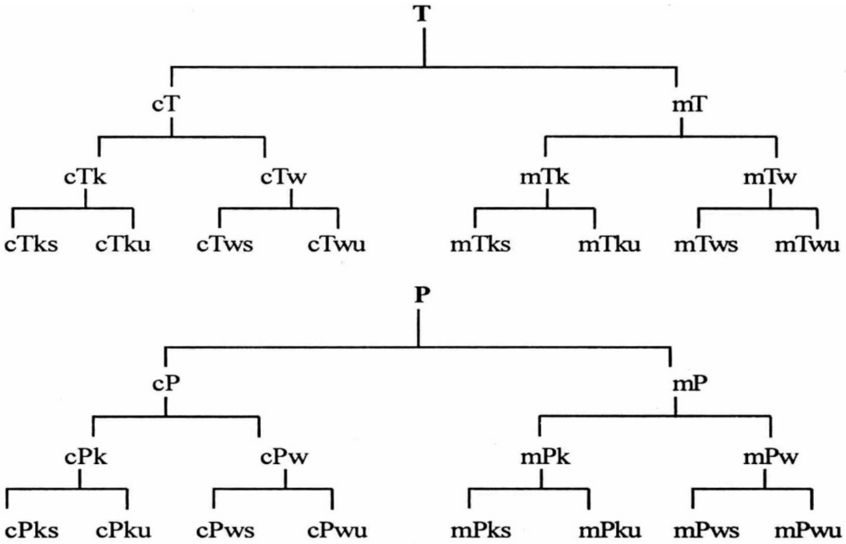

संकेत				
T – उष्णकटिबंधीय		k – नीचे से उष्मित		
P – ध्रुवीय		w – नीचे से शीतल		
c – महाद्वीपीय		s – स्थिर		
m – समुद्री		u – अस्थिर		

9.4 चक्रवात व उनसे सम्बन्धित मौसम

निम्न वायुदाब केन्द्र के चारों ओर उच्च वायुदाब के निर्माण से चक्रवात विकसित होते हैं। इसमें हवायें बाहर से भीतर की ओर तेजी से चक्राकार रूप में गमन करती हैं। हवाओं का गमन यहाँ भी फेरेल के नियम का अनुसरण करता है। उत्तरी गोलार्द्ध के चक्रवातों में हवा की दिशा घड़ी की सुइयों के विपरीत (Counter Clockwise) होती है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में ये घड़ी की सुइयों के अनुरूप (Clockwise) होती हैं (चित्र- 9. 2)।

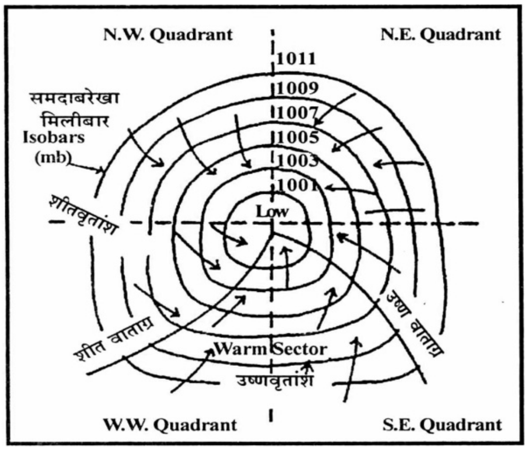

चित्र - 9.2 : चक्रवात

9.4.1 उष्णकटिबंधीय चक्रवात (Tropical Cyclone)

उष्णकटिबंधीय चक्रवात दोनों गोलार्द्धों में 8° से 15° अक्षाशों के बीच उत्पन्न होते हैं। इस क्षेत्र में आर्द्र हवाओं की बहुतायत होती है। साथ ही डोलड्रम क्षेत्र से उठती वायुधारायें मददगार साबित

होती हैं। इनका आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है। प्राय: इनका व्यास 80 से 320 किलोमीटर का होता है। दाब प्रवणता अधिक होने के कारण इनमें हवाओं की गति 100 से 200 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। हवाओं की तेज गति के कारण ये विनाशकारी होते है। समुद्रों पर इनकी गति तेज होती है लेकिन स्थल पर गुजरते समय ये धीमे व कमजोर हो जाते हैं और अंतत: समाप्त हो जाते हैं। चीन व जापान में इन्हें 'टाइफून' कहते हैं जबकि उत्तरी अमेरिका में 'हरीकेन' व ऑस्ट्रेलिया में इन्हें 'विली-विलीज' के नाम से जाना जाता है। उष्णकटिबंधीय चक्रवात के आगमन से पूर्व हवा शांत हो जाती है। इस दौरान तापमान व आर्द्रता दोनों का स्तर ऊंचा बना रहता है। वायुदाब में अचानक कमी आ जाती है तथा आसमान में घने बादल घिर आते हैं। हवा चलने के साथ ही बारिश प्रारंभ हो जाती है। ये भारी वर्षा लाते हैं। चक्रवात के केन्द्र को 'चक्रवात की आँख' कहा जाता है। वेगवती हवाओं से पेड़ उखड़ जाते हैं। भवनों के साथ विद्युत व संचार की लाइनें क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।

9.4.2 शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात (Temperate Cyclones)

दोनों गोलार्द्धों में 35° से 65° अक्षांशों के बीच के क्षेत्र में गर्म वायुराशि ठण्डी ध्रुवीय वायुराशि से मिलती है तो प्रतिकूल स्वभाव के कारण इनका मिश्रण नहीं हो पाता बल्कि वे एक सम्पर्क सतह से पृथक बनी रहती हैं। इस सम्पर्क तल को वाताग्र (Fronts) कहते हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति इन्हीं वाताग्रों से होती है। इनका व्यास 1500 से 3000 किलोमीटर तक का हो सकता है। बड़े आकार व कम दाब प्रवणता के कारण इनमें हवायें अपेक्षाकृत कम विनाशकारी होती हैं। भारी भरकम होने के कारण ये धीमे होते हैं। इनकी औसत गति 30 से 40 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। कई बार तो ये एक स्थान पर कई दिनों तक जमे रहते हैं। शीतोष्ण चक्रवात के आगमन पर सबसे पहले आसमान में ऊंचे पक्षाभ मेघ दिखायी देते हैं और मेघाच्छादन बढ़ता जाता है। इसके बाद वर्षा शुरू हो जाती है। इनसे रूक-रूक कर भारी वर्षा होती है।

9.5 प्रतिचक्रवात

प्रतिचक्रवात के केन्द्र में उच्च वायुदाब तथा चारों ओर न्यून वायुदाब होता है। इसमें हवायें केन्द्र से बाहर की ओर अपसारित होती हैं। इसमें हवाओं की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सूइयों के अनुरूप व दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सूइयों के विपरीत होती हैं। प्रतिचक्रवात का प्रतिरूप चक्रवात से ठीक विलोम होता है (चित्र- 9. 3)।

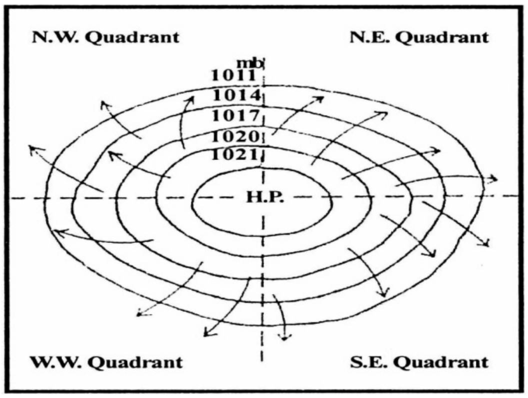

चित्र - 9.3 : प्रतिचक्रवात

वायुदाब में बढ़ोत्तरी प्रतिचक्रवात के आगमन की पूर्व सूचना होती है। इसमें मौसम साफ रहता है। आकाश मेघ रहित बना रहता है तथा वर्षा भी नहीं होती है। प्रतिचक्रवात के केन्द्र में हल्की हवा के साथ मौसम शांत रहता है।

बोध प्रश्न - 2

1. परिभाषित कीजिये :

(i) वायुराशि

....

....

(ii) वाताग्र

....

....

(iii) चक्रवात

....

....

(iv) प्रति चक्रवात

....

....

(v) टाइफून

....

....

(vi) चक्रवात की आँख

....

....

2. वायुदाब नापने की इकाई बताइये।

....

....

3. हवाओं की दिशा बताइये :

(i) उत्तरी गोलार्द्ध के चक्रवात में

....

....

(ii) उत्तरी गोलार्द्ध के प्रतिचक्रवात में

....

....

9.6 सारांश

वायु परिसंचरण अनेक प्रकार के होते है - स्थायी पवनें, चक्रवात, प्रतिचक्रवात, मानसून, जल-थल समीर, घाटी-पर्वतीय समीर, स्थानीय पवनें आदि। ये सभी संचरण वायुदाब में भिन्नताओं के कारण उत्पन्न होते है। विशिष्ट वायु राशियाँ भी इनमें योगदान करती हैं।

9.7 शब्दावली

डोलड्रम्स (Doldrums)	:	शांत दशाओं वाली न्यून दाब की भूमध्यरेखीय पेटी।
अश्व अक्षांश (Horse Latitude)	:	दोनों गोलार्द्ध में 30° से 35° आक्षांशों के बीच स्थित उपोष्ण उच्च वायुदाब का क्षेत्र।
तापान्तर (Range of Temperature)	:	एक निश्चित अवधि में किसी स्थान के निम्नतम व उच्चतम तापमानों के बीच का अन्तर।
मिलिबार (Millibar)	:	वायुदाब मापने की इकाई
आभामण्डल (Halo)	:	चन्द्रमा व सूर्य के चारों ओर बनी प्रकाश वलय।
संघनन (Condensation)	:	वाष्प का द्रव अथवा हिम में परिवर्तन।
ओसांक (Dew Point)	:	ताप जिस पर वायु ठण्डी हो जाने से जलवाष्प की दृष्टि से संतृप्त हो जाती है।
हिमांक (Freezing Point)	:	वह तापमान जिस पर कोई भी द्रव, ठोस अवस्था में परिवर्तित हो जाता है।
क्षोभमण्डल (Troposphere)	:	वायुमण्डल की सबसे निचली परत जिसमें मौसमी घटनायें घटती हैं।

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.	Critchfield, H.J. (2002)	:	General Climatology, Prentice Hall Inc., Englewood N.J. U.S.S. 2002
2.	Lal, D.S. (2003)	:	Climatology, Sharda Pustak Bhawan Allahabad India, 2003
3.	सिंह, सविन्द्र (2006)	:	भौतिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006
4.	गौतम, अल्का	:	वायुमण्डल व महासागर, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ,

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1.	पवन (Wind)	2. वायुधारा (Air Current)
2.	व्यापारिक पवनें	4. चिनूक
3.	लू (Loo)	6. फॉन
4.	मानसून	8. पछुआ पवनें

बोध प्रश्न - 2

1. (i) हवा की एक विशाल राशि जिसमें तापमान व आर्द्रता संबंधी गुण एक समान हों।
   (i) भिन्न गुणों वाली दो वायुराशियों के बीच की सम्पर्क रेखा।
   (ii) बाहर से केन्द्रीय न्यून दाब की चलने वाली पवनें।
   (iii) केन्द्रीय उच्च दाब से बाहर की अपसारित होने वाली पवनें।
   (iv) चीन व जापान में उष्णकटिबंधीय चक्रवात
   (v) चक्रवात का केन्द्रीय भाग
2. मिलिबार, इंच व सेंटीमीटर
3. (i) घड़ी की सूइयों के विपरीत (Anti Clockwise) बाहर से भीतर की ओर।
   (i) घड़ी की सूइयों के अनुरूप (Clock wise) केन्द्र से बाहर की ओर।

9.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पवनें कितनी प्रकार की होती हैं?
2. स्थानीय पवनें किसे कहते हैं? :
3. सामयिक पवन की व्याख्या कीजिये।
4. स्थायी पवनों की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
5. द्वितीयक पवनों पर एक लेख लिखिये।

इकाई - 10 : आर्द्रता, संघनन एवं वर्षा का वितरण प्रारूप

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 आर्द्रता - प्रकार एवं विश्व प्रतिरूप

10.2.1 निरपेक्ष आर्द्रता

10.2.2 विशिष्ट आर्द्रता

10.2.3 सापेक्षित आर्द्रता

10.2.4 विश्व प्रतिरूप संघनन के रूप

10.3 संघनन के रूप

10.3.1 ओस

10.3.2 पाला

10.3.3 कोहरा

10.3.3.1 कोहरे के प्रकार

10.3.3.2 कोहरे का विवरण

10.3.3.3 मेघ

10.4 वर्षा के प्रकार

10.4.1 संवाहनीय वर्षा

10.4.2 पर्वतीय वर्षा

10.4.3 चक्रवातीय वर्षा

10.5 वर्षा का विश्व वितरण

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 संदर्भ ग्रंथ

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नलिखत हैं -

- इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि वर्षा कितने प्रकार की होती है,
- आर्द्रता की परिभाषा एवं उसके विभिन्न प्रकारों में अंतर को आप समझने योग्य होंगे,
- इसके अध्ययन से आप आर्द्रता के विश्व प्रतिरूप को समझ पायेंगे,
- आप संघनन की परिभाषा एवं उसके विभिन्न रूपों को समझ जायेंगे तथा

- इससे आप विश्व में वर्षा के वितरण की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

10.1 प्रस्तावना

जलवायु तथा मौसम के विभिन्न तत्वों में से वर्षा एवं आर्द्रता का विशेष महत्व है। जल जीवन का आधार है तथा जल का अधिकांश भाग वर्षा से ही प्राप्त होता है। वर्षा का आधार आर्द्रता है। वायुमण्डल में आर्द्रता की मात्रा भी सर्वत्र समान नहीं पायी जाती है। आर्द्रता अनेक रूपों में पायी जाती है। आर्द्रता में स्थानीय, क्षेत्रीय व प्रादेशिक तौर पर भिन्नता पायी जाती है। जलवाष्प का संघनित होकर बरसना ही वर्षा कहा जाता है। ओस, पाला व कोहरा भी संघनन के ही रूप हैं। भूतल पर अनेक विभिन्नताओं के कारण ही वर्षा के वितरण प्रारूप में भी असमानताएँ मिलती हैं।

10.2 आर्द्रता (Humidity)

जलवायु तथा मौसम के विभिन्न तत्वों में आर्द्रता का विशिष्ट महत्व है। वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प को आर्द्रता कहते हैं। जलवाष्प गंधहीन, रंगहीन तथा स्वादहीन एवं अदृश्य होती है। विभिन्न गैसों के साथ जलवाष्प विभिन्न अवस्थाओं में विद्यमान रहती है, जिसे वायु मण्डलीय आर्द्रता कहते हैं। वायुमण्डल को जलवाष्प की प्राप्ति नदियों, जलाशयों, वनस्पतियों, झीलों एव सागरीय भागों में वाष्पीकरण से होती है। जब कोई द्रव निश्चित ताप पर शनैः शनैः वाष्प में परिवर्तित होता है तो इस परिवर्तन की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। जल के गैसीय रूप को जलवाष्प कहा जाता है।

किसी निश्चित तापमान पर वायु में निश्चित आयतन पर अधिकतम जल वाष्प धारण करने की क्षमता को वायु की 'आर्द्रता सामर्थ्य' कहा जाता है। वायु का तापमान जितना अधिक होगा, उसकी आर्द्रता धारण करने की क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी। आर्द्रता को मापने के लिए हाइग्रोमीटर (Hygrometer) यंत्र का उपयोग किया जाता है। आर्द्रता विभिन्न प्रकार की होती है -

10.2.1 निरपेक्ष आर्द्रता (Absolute Humidity)

वायु के निश्चित आयतन पर इसमें मिलने वाली कुल आर्द्रता की मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता या वास्तविक आर्द्रता कहा जाता है। यह आर्द्रता वायु के निश्चित आयतन पर जल वाष्प के भार को बताती है। इसे हम प्रति घन फुट पर ग्रेन में या प्रति घन सेन्टीमीटर पर ग्राम में बताते हैं। वर्षा की संभावना इसकी मात्रा पर ही निर्भर करती है। दिन में तथा ग्रीष्मकाल में निरपेक्ष आर्द्रता की मात्रा 16 अधिक पाई जाती है। ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर तथा महाद्वीपों के आंतरिक भागों से सागर तट की ओर निरपेक्ष आर्द्रता की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। निरपेक्ष आर्द्रता को सौर विकिरण की मात्रा, तापमान में कमी व अधिकता, पवनों की दिशा, महासागरों से दूरी आदि प्रभावित करती है।

10.2.2 विशिष्ट आर्द्रता (Specific Humidity)

जल वाष्प के भार और नम हवा के भार के बीच के अनुपात को विशिष्ट आर्द्रता कहा जाता है। इसे प्रति किलोग्राम नम हवा में ग्राम जल वाष्प मात्रा में प्रदर्शित किया जाता है।

10.2.3 सापेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity)

किसी निश्चित तापमान पर वायु में आर्द्रता धारण करने की क्षमता (आर्द्रता सामर्थ्य) तथा उसमें उपलब्ध आर्द्रता की वास्तविक मात्रा (निरपेक्ष आर्द्रता) के अनुपात को सापेक्षित आर्द्रता कहते हैं। इसका सूत्र

निरपेक्ष आर्द्रता = $\frac{\text{सापेक्षिक आर्द्रता}}{\text{आर्द्रता सामर्थ्य}}$x 100

तापमान व सापेक्षिक आर्द्रता में विपरीत संबंध पाया जाता है, अर्थात् तापमान घटने पर सापेक्षिक आर्द्रता अधिक तथा तापमान बढ़ने पर सापेक्षिक आर्द्रता कम हो जाती है। सापेक्षिक आर्द्रता का जलवायु व दैनिक जीवन में बहुत महत्व है। इसके महत्व के प्रमुख तथ्य हैं -

1. इसकी मात्रा पर ही वर्षा की संभावना निर्भर करती है। अधिक प्रतिशत पर वर्षा की संभावना अधिक रहती है।
2. सापेक्षिक आर्द्रता पर ही वाष्पीकरण की मात्रा निर्भर करती है। अधिक सापेक्षिक आर्द्रता पर वाष्पीकरण कम तथा कम सापेक्षिक आर्द्रता पर वाष्पीकरण अधिक होता है।
3. सामान्यत: 60 प्रतिशत आर्द्रता स्वास्थ्य के लिए सही रहती है।

10.2.4 विश्व प्रतिरूप

विश्व में सापेक्षिक आर्द्रता की अधिकतम मात्रा भूमध्य रेखीय प्रदेशों में पायी जाती है। 30° उत्तर से 30° दक्षिणी अक्षांश के मध्य स्थित क्षेत्रों में सापेक्षिक आर्द्रता शीत ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में अधिक होती है। उच्च अक्षांशों में शीत ऋतु में सापेक्षिक आर्द्रता अधिक पायी जाती है। इसका कारण महाद्वीपों का शीतकाल में अत्यधिक ठण्डा होना माना गया है। विश्व में सापेक्षिक आर्द्रता का प्रतिरूप अक्षांशों से अधिक प्रभावित है। भूमध्य रेखा से उपोष्ण कटिबंधीय उच्च वायु दाब पेटियों की ओर सापेक्षिक आर्द्रता की मात्रा में निरंतर ह्रास होता है। 30° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों के पास यह न्यूनतम पायी जाती है।

बोध प्रश्न- 1

1. आर्द्रता किसे कहते हैं?

   ………………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………………
2. वाष्पन क्या है?

   ………………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………………
3. आर्द्रता को मापने वाले यंत्र का क्या नाम है?

   ………………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………………
4. विशिष्ट आर्द्रता को परिभाषित कीजिये।

   ………………………………………………………………………………………

   ………………………………………………………………………………………
5. सापेक्षिक आर्द्रता सर्वाधिक कहां पायी जाती है?

....
....

10.3 संघनन के रूप (Forms of Condensation)

वायु का घनीभूत होना ही घनीभवन या संघनन है। जलवाष्प का जल या उसके विभिन्न रूपों में रूपान्तर ही संघनन है। संघनन वायुमण्डल में उपस्थित सापेक्षिक आर्द्रता की मात्रा पर आधारित है। जब वायु में सापेक्षिक आर्द्रता शत-प्रतिशत होती है तो उस वायु को संतृप्त वायु (Saturated Air) कहा जाता है। जिस तापमान पर वायु संतृप्त हो जाती है, उसे ओस बिन्दु या ओसांक (Dew Point) कहते हैं।

प्रकृति में संघनन अनेक रूपों में होता है जैसे ओस, पाला, कोहरा, बादल, वर्षा, हिम वर्षा, ओला वृष्टि आदि।

10.3.1 ओस (Dew)

रात्रि में धरातल ठण्डा हो जाता है तथा इसके सम्पर्क की वायु भी ठण्डी होने लगती है। वायु के ठण्डी होने पर इसमें जो जलवाष्प रहती है, वह घनीभूत होकर जल बिन्दुओं के रूप में ठण्डे तल पर पर बैठ जाती है। इसे ही 'ओस' कहते हैं। इसे प्रात: काल फूलों, घास आदि पर देखा जा सकता है। ओस के लिए स्वच्छ आकाश, शान्त वायु, लम्बी रात्रि, ओसांक की 0°C से अधिकता का होना आवश्यक है।

10.3.2 पाला (Frost)

यदि ओसांक हिमांक से कम रहता है तो ओस जल बूंदों की बजाय बर्फ के छोट-छोटे कणों के रूप में जम जाती है। इसे ही पाला कहा जाता है। पाला बनने हेतु आवश्यक है कि वायु का ताप शीघ्रता से गिरे, आकाश में बादल न हों, वायु में जलवाष्प रहे आदि। सामान्यत: पाला पर्वतीय घाटियों में पड़ता है। ऊंचे अक्षांशों के मैदानों में भी यह स्थिति देखने को मिलती है।

बादलों में जल कणों की उत्पत्ति होने पर यदि वायु राशि किसी प्रकार अधिक ऊँचाई पर चली जाती है, तो जलकण ठोस हिम कणों में परिवर्तित हो जाते हैं। इन हिमकणों के आपस में मिलने से ये बड़े आकार के हो जाते हैं तथा धरातल पर तेजी से गिरते हैं इसे ही ओला (Hail) वृष्टि कहते हैं। ये विभिन्न आकारों में धरती पर गिरते हैं।

10.3.3 कोहरा (Frog)

अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार कोहरा शब्द मौसम संबंधी वर्णनों (Weather Reports) में वायुमण्डलीय अदृश्यता के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमें एक किलोमीटर की दूरी की चीजें भी दिखाई नहीं देती हैं। धरातल के पास वायु का तापमान जब ओसांक बिन्दु को प्राप्त कर लेता है तब उसकी आर्द्रता के कण वायुमण्डल में व्याप्त धूल एवं धुएँ के कणों पर बैठ जाते हैं। इसके कारण वायुमण्डल में दृश्यता कम हो जाती है। इसके हल्के रूप को धुंध या कुहासा (Mist) कहा जाता है। इसमें 1-2 किलोमीटर तक की वस्तुएँ ही दृष्टिगत होती हैं।

कोहरे में धुंध की अपेक्षा जलकण अधिक छोटे व घने होते हैं इसमें धूल व धुएं का समावेश रहने से यह अधिक घना हो जाता है। घने कोहरे में बिलकुल पास की वस्तु भी स्पष्ट दृष्टिगत नहीं होती है। धरातल पर नदियों, झीलों व तालाबों आदि जलीय राशियों के निकट कोहरा अपेक्षाकृत सघन रहता है। कोहरे की उत्पत्ति सागरीय सतह पर भी होती है, जहाँ पर ठण्डी व गर्म धारायें परस्पर मिलती हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिका में न्यू फाउण्डलैण्ड के तट पर गर्म गल्फस्ट्रीम व ठण्डी लेब्रेडोर धारा के मिलने से सघन कोहरा उत्पन्न होता है।

10.3.3.1 कोहरे के प्रकार (Types of Fog)

स्वरूप के आधार पर इसे स्मॉग (Smog), स्मेज (Smaze) तथा पाला धूम (Frost Smobe) में बाट सकते हैं। बड़े-बड़े औद्योगिक शहरों में कारखानों से निकलने वाले धुएं युक्त वातावरण में उत्पन्न मटमेले रंग का कोहरा स्मॉग (Smog) कहा जाता है (Smoke + Fog = Smog)। धुएं व धुंध के मिश्रण से बने कोहरे को स्मेज (Smaze) कहा जाता है। आर्कटिक प्रदेशों में तापमान हिमांक से नीचे पहुंचने पर हिम कणों से निर्मित कोहरे को पाला-धूम (Frost Smobe) कहते हैं। इसे उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों में पोगोनिप (pogonip) नाम से जाना जाता है।

दृश्यता के आधार पर कोहरा चार प्रकार का होता है -

1. अति सघन कोहरा (दृश्यता 300 मीटर से कम)
2. सघन कोहरा (दृश्यता 300 से 550 मीटर)
3. साधारण कोहरा (दृश्यता 550 से 1100 मीटर)
4. हल्का कोहरा (दृश्यता 1100 मीटर या कुछ अधिक)

प्रसिद्ध विद्वान विलेट (Willet) ने कोहरे को निर्माण विधि के अनुसार इस प्रकार विभाजित किया है -

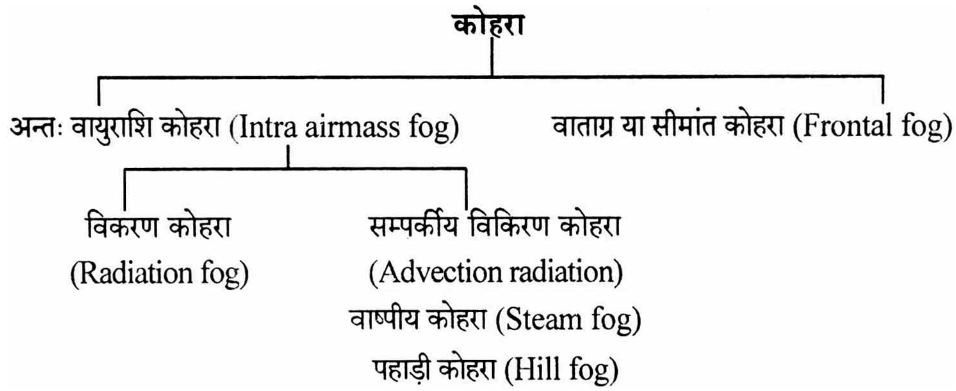

1. **अन्तः वायु राशि कोहरा -** इस कोहरे का निर्माण वायु के तापमान का ओसांक तक आ जाने पर होता है। इसके दो प्रकार हैं -

   (i) **विकिरण कोहरा -** ठण्डे धरातल के समीप गर्म एव आर्द्र वायु आ जाने पर इसका निर्माण होता है। इसके निर्माण के लिए पिछले दिनों वर्षा, रात्रि के तापमान का धरातलीय प्रतिलोमन (Surface inversion of temperature), रात्रि में स्वच्छ आकाश तथा वायु का मंद संचार होना आवश्यक दशायें हैं।

कोहरे का निर्माण रात्रि में धरातल के निकट होता है। यह धीरे-धीरे ऊँचाई में बढ़ता है। प्राय: ताप प्रतिलोमन के समाप्त होते ही अदृश्य हो जाता है क्योंकि सूर्यताप के कारण जल कणों का वाष्पीकरण हो जाता है। विकिरण कोहरा बड़े नगरों के ऊपर तथा इनके निकटवर्ती भागों में होता है। औद्योगिक शहरों से निकलने वाले कोयले व गंधक के कणों से इसका रूप अत्यधिक घना हो जाता है।

(ii) **सम्पर्कीय विकिरण कोहरा -** इसे अभिवहन कोहरा भी कहते हैं। ऐसा कोहरा ठण्डे धरातल पर गर्म या आर्द्र हवा के आगमन से उत्पन्न होता है। इस प्रकार का कोहरा प्राय: स्थलीय भागों पर जाड़े में तथा सागरीय भागों पर गर्मियों में होता है। इसका कारण शीतकाल में स्थलीय भागों का, सागरों की अपेक्षा ठण्डे रहना है। गर्मियों में उच्च अक्षांशों में हिम पिघलने से सागरीय जल ठण्डा हो जाता है। सम्पर्कीय विकिरण कोहरा भी दो प्रकार का होता है। (अ) वाष्पीय कोहरा (ब) पहाड़ी कोहरा।

2. **सीमान्त कोहरा -** दो भिन्न गुणों वाली गर्म एवं ठण्डी वायु राशियों के एक दूसरे के सामने से आकर मिलने से वाताग्र निर्माण होता है। इसी वाताग्र के सहारे गर्म वायु ठण्डी वायु के ऊपर उठती है तथा ठण्डी हो जाती है। इसमें उपस्थित नमी के संघनन से कोहरा उत्पन्न होता है।

10.3.3.2 कोहरे का वितरण (Distribution of fog)

सामान्यत: विश्व में निम्नलिखित क्षेत्रों व विभिन्न स्थितियों में कोहरा पाया जाता है -

1. ठण्डी एवं गर्म जलधाराओं के मिलने के स्थान कोहरे के प्रमुख क्षेत्र हैं जैसे-गल्फस्ट्रीम व लैब्रेडोर का मिलन स्थल-न्यूफाउण्डलैण्ड का ग्राण्ड बैंक तथा क्यूराइल व क्यूरोसीवो का मिलन स्थल-जापान का उत्तर पूर्वी तट।
2. अधिकतर कोहरा महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर बहने वाली ठण्डी धाराओं के तटवर्ती क्षेत्रों में पाया जाता है, जैसे -पीरू, बैंग्वेला व कैलीफोर्निया धारायें आदि।
3. ऊँचे अक्षांशों तथा हिमाच्छादित क्षेत्रों में शीत ऋतु में जलाशयों के निकट कोहरा मिलता है।
4. निम्न अक्षांशों में शीत ऋतु में कोहरा पाया जाता है।
5. उत्तरी अटलांटिक एवं उत्तरी प्रशांत महासागर के पूर्वी भागों के मध्य अक्षांशों में उत्पन्न चक्रवातों के कारण कोहरा उत्पन्न होता है।
6. शीतकाल में स्थल पर अधिकतर तथा ग्रीष्मकाल में समुद्रों पर कोहरा उत्पन्न होता है ।

10.3.3.3 मेघ (Clouds)

बादल वास्तव में जल और हिम कणों का बड़े पैमाने पर समूहन है। बादलों को ऊँचाई, रूप व विस्तार के आधार पर विभिन्न भागों में बांटा जाता है।

महासागरों व जलराशियों से वाष्पीकरण होता रहता है। प्राप्त आर्द्रता उर्ध्वगामी वायुधाराओं द्वारा धरातल से काफी ऊँचाई पर पहुँचा दी जाती है। यहाँ आर्द्र वायु में प्रसार होता है और वह ठण्डी होने लगती है। ओसांक बिन्दु (Dew Point) पर यह संघनित होकर जल की सूक्ष्म बूंदों में परिवर्तित होने लगती हैं। यदि तापमान हिमांक बिंदु (Freezing Point) से नीचे होता है तो बून्दें

हिम के सूक्ष्म कणों में तब्दील हो जाती हैं जिनका आकार 0.025 से 0.1 मिलिमीटर के बीच होता है । वायुमण्डल में ऊपर सूक्ष्म बून्दों व हिम कणों की निलम्बित राशि मेघ कहलाती है। मेघों को आकार, प्रकार व ऊंचाई के आधार पर चार वर्गों में रखा जा सकता है:

- **उच्च मेघ :** इनकी ऊंचाई समुद्र तल से 6000 से 12000 मीटर के बीच होती है। इसमें दो प्रकार के मेघ शामिल हैं।
  - (i) पक्षाभ मेघ : रेशमी धागों की तरह हिम कणों से बने मेघ जो साफ मौसम के सूचक होते हैं।
  - (ii) पक्षाभ-स्तरी मेघ : ये आकाश में सफेद चादर की तरह दिखाई पड़ते है। इनकी उपस्थिति में सूर्य व चंद्रमा के चारों ओर आभामण्डल निर्मित होता है।
- **मध्यम ऊंचाई के मेघ :** ये समुद्र तल से 2100 से 6000 मीटर की ऊँचाई के बीच पाये जाते हैं। इसमें दो प्रकार के मेघ सम्मिलित हैं।
  - (i) **कपासी मध्य मेघ :** ये गोलाकार उभार वाले मेघ होते हैं जिनका आधार चपटा होता है। ये साफ मौसम के सूचक होते है।
  - (ii) **स्तरी मध्य मेघ :** इनका रंग स्लेटी से काला हो सकता है। इनसे भारी वर्षा होती है।
- **निम्न मेघ** : इनकी ऊंचाई 2100 मीटर से कम होती है। इस प्रकार के मेघों को तीन उपवर्गो में रखा जा सकता है।
  - (i) **स्तरी कपासी मेघ :** ये हल्के काले रंग के लहरदार बादल होते हैं।
  - (ii) **वर्षा स्तरी मेघ :** इनका रंग गहरा काला होता है। ये मूसलाधार वर्षा करने में सक्षम होते हैं।
  - (iii) **स्तरी मेघ :** ये कोहरे की भांति दिखने वाले बहुत नीचे बादल होते हैं। इनसे प्राय: बूंदा-बांदी होती है।
- **उर्ध्वाधर विस्तार वाले मेघ :** इनका विस्तार 1500 मीटर से लेकर 9000 मीटर तक हो सकता है। इनके दो प्रमुख प्रकार हैं।
  - (i) कपासी मेघ: ये धुनी हुयी रूई के समान गोलाकार सफेद चमकीले बादल होते हैं। कई बार इनके आधार हल्के काले रंग के होते है। ये साफ मौसम के सूचक होते हैं।
  - (ii) कपासी-वर्षीले मेघ : यह एक विशिष्ट प्रकार का कपासी मेघ होता है। इसका आकार गोभी के फूल जैसा होता है। इसका रंग सफेद व काला होता है। इससे गरज व चमक के साथ वर्षा हाती है।

बोध प्रश्न- 2

1. ओसांक की परिभाषा बताइये ।

   ....

   ....

2. सामान्यत: पाला अधिक कहाँ पड़ता है?

   ....

....

3. उत्तरी अमेरिका में न्यूफाउण्डलैण्डल के पास किन दो धाराओं के मिलने से कोहरा उत्पन्न होता है?

....

....

4. स्मेज क्या है?

....

....

5. मेघ किसे कहते हैं?

....

....

6. सबसे अधिक ऊँचाई पर पाये जाने वाले मेघ का नाम बताइये?

....

....

7. उन मेघों के नाम बताइये जो वर्षा देते हैं?

....

....

10.4 वर्षा के प्रकार

वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प जब घनीभूत होकर जल बून्दों के रूप में धरातल पर गिरती है तो उसे वर्षा कहा जाता है। वर्षा के लिए वायु का अति संतृप्त (Super saturation) होना तथा मेघ कणों का परस्पर मिलना अति आवश्यक है।

वर्षा का मापन वर्षा मापी (Rain gauge) द्वारा किया जाता है। वर्षा का मापन मिलीमीटर या इंच में किया जाता है। आजकल स्वचालित वर्षा मापी का उपयोग किया जा रहा है, जिसे रेनोग्राफ (Rainograph) कहते हैं। जब वायु के ऊपर उठने की गति मंद हो तो सामान्य घनीभवन से छोटे - छोटे जलकण नीचे गिरते हैं जिन्हें फुहार या बौछार (Drizzle) कहा जाता है। जब घनीभवन हिमांक के नीचे होता है तो वर्षा हिम के रूप में होती है। इसे हिम वर्षा कहा जाता है।

वर्षा होने के लिए वायु का ऊपर उठना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामान्य तीन अवस्थाओं में वायु ऊपर उठती है और ठण्डी होकर वर्षा करती है -

1. गर्म धरातल के सम्पर्क में गर्म हो जाने पर वायु संवहनीय धारा के रूप में ऊपर उठ जाती है अथवा
2. पर्वतीय अवरोध आने पर वायु इसके सहारे ऊपर उठती है अथवा
3. चक्रवातों में वाताग्र या सीमांत के सहारे ऊपर उठती है।

उपरोक्त तीनों कारकों में से एक से अधिक कारक भी सक्रिय हो सकते हैं। इस स्थिति में सर्वाधिक प्रभावकारी कारक के आधार पर ही वर्षा के प्रकार को कहा जाता है। वर्षा को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है -

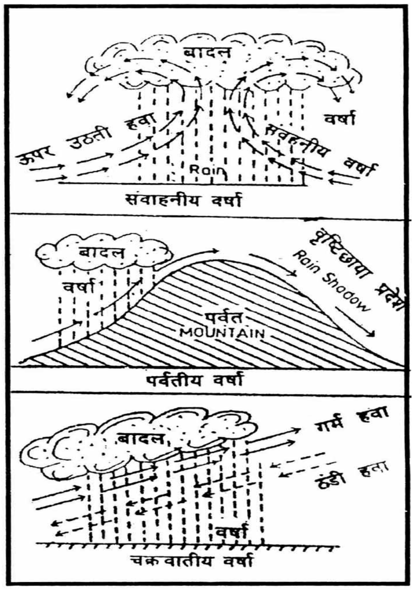

चित्र– 10.1 : संवाहनीय वर्षा

10.4.1 संवाहनीय वर्षा (Convectional Rainfall) इस प्रकार की वर्षा भूमध्य रेखीय प्रदेशों

(Equatarial Regions) में होती है। यहाँ दिन में धरातल के सम्पर्क में आकर वायु गर्म होने से हल्की होकर ऊपर की ओर उठने लग जाती है इसी क्रिया को संवाहन कहते हैं। ऊपर उठने से वाष्प युक्त वायु ठण्डी होकर वर्षा करती है। ऐसी वर्षा को ही संवाहनीय वर्षा कहते हैं।

10.4.2 पर्वतीय वर्षा (Orographical Rainfall)

इसको स्थलाकृतिक वर्षा भी कहते हैं। जब आर्द्रता से भरी हुई वायु के मार्ग में पर्वत का अवरोध आ जाता है तो वायु बाध्य होकर ऊपर उठती है। ऊपर उठने से वायु ठण्डी होने लगती है तथा घनीभूत होकर वर्षा करती है। ऐसी वर्षा ही पर्ततीय वर्षा कहलाती है। पर्वतीय वर्षा को पर्वतों की स्थिति व इनकी ऊँचाई, समुद्र से दूरी आदि प्रभावित करते हैं। विश्व की अधिकांश वर्षा पर्वतीय वर्षा के रूप में ही होती है। पर्वतों के पवनमुखी ढाल (Windward slope) पर वर्षा के उपरांत पर्वतों को पार करके पवनें जब दूसरी ओर नीचे उतरती हैं तो उसके तापमान में वृद्धि हो जाती है। इससे उसके आर्द्रता सामर्थ्य में वृद्धि होती है। फलत: उनकी आर्द्रता जल बिन्दुओं में नहीं बदल पाती है। इसलिए इस वायु से पवन विमुखी ढाल (Leeward slope) वाले भाग में वर्षा नहीं हो पाती। ऐसे भागों को वृष्टिछाया प्रदेश (Rain Shadow areas) कहा जाता है।

10.4.3 चक्रवातीय वर्षा (Cyclonic Rainfall)

जब ठण्डी व गर्म वायु आपस में मिलती हैं तो ठण्डी वायु गर्म वायु को ऊपर उठाती हैं। गर्म वायु ऊपर उठने से ठण्डी हो जाती है तथा संघनित होकर वर्षा करती है। ऐसी वर्षा ही चक्रवातीय वर्षा कहलाती है। चक्रवात गुजर जाने के साथ ही वर्षा भी समाप्त हो जाती है। शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अधिकांश वर्षा इसी प्रकार की होती है। ऊष्ण क्षेत्रों में गर्मियों में चक्रवातीय वर्षा होती है। भारत के उत्तरी-पश्चिमी भागों में सर्दी की ऋतु में होने वाली वर्षा पश्चिम से आने वाले चक्रवातों से ही होती है। भारत के पूर्वी तट पर भी कभी-कभी चक्रवातीय वर्षा होती है।

बोध प्रश्न - 3

1. वर्षा किसे कहते हैं?

   ....

   ....

2.	वर्षा मापन करने वाले स्वचालित यंत्र का क्या नाम है? …………………………………………………………………………………… ……………………………………………………………………………………
3.	बौछार व हिमवर्षा क्या है? …………………………………………………………………………………… ……………………………………………………………………………………
4.	भूमध्य रेखीय प्रदेशों में किस प्रकार की वर्षा होती है? …………………………………………………………………………………… ……………………………………………………………………………………
5.	पर्वतों के वर्षा न होने वाले पवन विमुखी ढाल को क्या कहते हैं? …………………………………………………………………………………… ……………………………………………………………………………………
6.	चक्रवातीय वर्षा अधिकांशत: किस कटिबंध में होती है? …………………………………………………………………………………… ……………………………………………………………………………………

10.5 वर्षा का विश्व वितरण (World Distribution of Rainfall)

विश्व में वर्षा का वितरण असमान है। वर्षा के वितरण को जल एवं स्थल की स्थिति, प्रचलित पवनों की दिशा, वायुदाब पेटियों का खिसकाव, तापमान, जलधारायें, पर्वत श्रणियों की स्थिति व दिशा आदि कारक प्रभावित करते हैं।

विश्व में वर्षा की 6 पेटियों का निर्धारण किया जा सकता है -

1. **अत्यधिक वर्षा वाली भूमध्यरेखीय पेटी -** इसका विस्तार 10^0 उत्तरी से 10^0 दक्षिणी अक्षांशों के मध्य है। यहाँ पर संवाहनीय वर्षा होती हैं जो कि प्रतिदिन दोपहर के बाद गर्जन के साथ होती है। यहाँ पर वार्षिक वर्षा की मात्रा 175 से 200 सेंटीमीटर तक रहती है। इसमें मुख्यत: अफ्रीका के कांगो बेसिन का मध्यवर्ती भाग, न्यूगिनी, फिलीपीन्स एवं मैडागास्कर के पूर्वी तटीय भाग, मध्य अमेरिका व दक्षिणी अमेरिका का अमेजन क्षेत्र शामिल हैं।
2. **व्यापारिक पवनों की वर्षा पेटी -** इसका विस्तार 10^0 से 30^0 अक्षांशों के मध्य उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों में महाद्वीपों के पूर्वी भागों में है। यहाँ व्यापारिक पवनें सागरों को पार करके महाद्वीपों के पूर्वी भागों में वर्षा करती हैं। महाद्वीपों के पश्चिमी भागों तक पहुँचते - पहुँचते ये पवनें शुष्क हो जाने से वर्षा नहीं कर पाती हैं। इसी कारण इन अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में उष्ण मरूस्थल मिलते हैं।

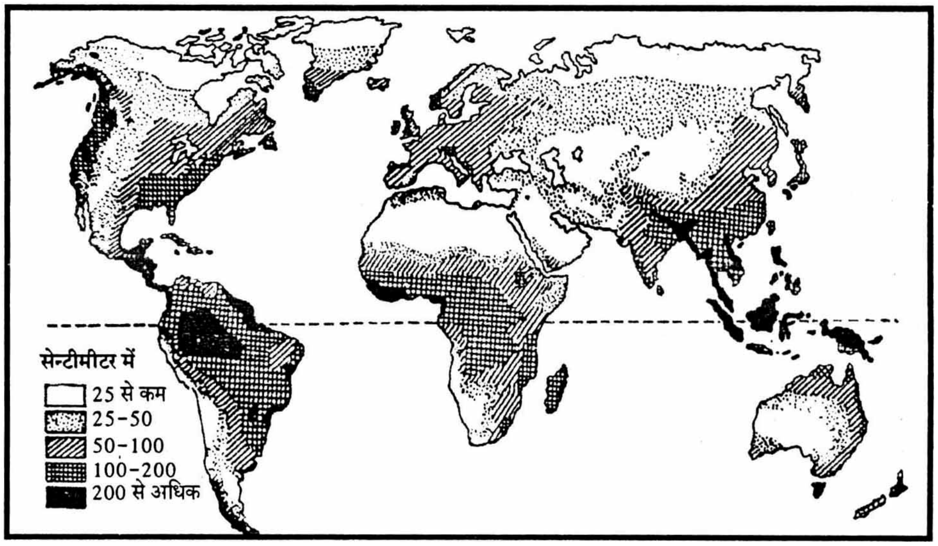

चित्र-10.2 : विश्व मे वर्षा का वितरण

3. **उपोष्ण कटिबंधीय न्यूनतम वर्षा की पेटी -** इसका विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर आर्द्रता, संघनन एवं वर्षा का वितरण प्रारूप 20° से 30° अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में पाया जाता है। यहाँ उच्च वायुदाब मिलता है। फलत: प्रतिचक्रवातों के आविर्भाव से वर्षा नहीं होती। इस पेटी में विश्व के प्रसिद्ध उष्ण मरुस्थल भी है जहां पर वार्षिक वर्षा का औसत 25 सेंटीमीटर से भी कम है।

4. **भूमध्य सागरीय वर्षा की पेटी -** इस पेटी का विस्तार 30^0 से 40^0 अक्षांशों के मध्य उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों में पाया जाता है। यहां वर्षा शीतकाल में चक्रवातों व पछुआ पवनों द्वारा होती है। यहां का वार्षिक औसत 100 सेंटीमीटर है। इस पेटी की विशेषता शुष्क ग्रीष्म ऋतु है क्योंकि इस समय व्यापारिक पवनों अथवा प्रति चक्रवातीय दशाओं का प्रभाव रहता है। इस पेटी में कैलीफोर्निया, मध्य चिली, ऑस्ट्रेलिया का दक्षिण पश्चिमी भाग तथा दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिण पश्चिमी भाग शामिल हैं।

5. **मध्य अक्षांशीय अधिक वर्षा की पेटी -** यह पेटी 40^0 से 60^0 आक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धो में विस्तृत है। यहां वर्षा का वार्षिक औसत 100 से 125 सेंटीमीटर है। उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में चक्रवातों के कारण अधिक वर्षा होती है। इस पेटी में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में पछुआ पवनों से अधिक वर्षा होती है तथा आंतरिक भागों की ओर क्रमश: घटती जाती है।

6. **ध्रुवीय न्यून वर्षा की पेटी -** इसका विस्तार 60^0 अक्षांशों से ध्रुवों तक दोनों गोलार्द्धों में है। यहां पर अधिकांश वर्षा हिमपात के रूप में होती है। यहाँ वृष्टि का वार्षिक औसत 25 सेंटीमीटर ही है।

10.6 सारांश

वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प को आर्द्रता कहते हैं। आर्द्रता को मापने के लिए हाइग्रोमीटर का उपयोग किया जाता है। आर्द्रता के विभिन्न रूप हैं- निरपेक्ष या वास्तविक आर्द्रता, विशिष्ट आर्द्रता एवं सापेक्षिक आर्द्रता। निरपेक्ष आर्द्रता प्रति घन फुट पर ग्रेन या प्रतिघन सेंटीमीटर पर ग्राम में

तथा सापेक्षिक आर्द्रता प्रतिशत में मापी जाती है। सापेक्षिक आर्द्रता की मात्रा पर वर्षा की संभावना निर्भर करती है। इसकी अधिकतम मात्रा भूमध्य रेखीय प्रदेशों में पायी जाती है।

संघनन जलवाष्प का विभिन्न रूपों में रूपान्तर है। यह ओस, पाला, कोहरा व बादल आदि रूपों में होता है। वायु के ठण्डी हो जाने पर उपस्थित जलवाष्प घनीभूत होकर धरातल पर जल बिन्दुओं के रूप में बैठ जाती है, इसे ही ओस कहा जाता है। जल बिन्दुओं का हिम कणों के रूप में पृथ्वी पर इकट्ठा होना पाला कहलाता है। वायुमण्डल में लटके हुए संघनित सूक्ष्म जलकण समूह के रूप में होने से धुएं की तरह दिखाई देते हैं इसे कोहरा कहा जाता है। इसके हल्के रूप को धुंध कहते हैं। धरातल पर नदियों, झीलों, तालाबों आदि जलीय राशियों के निकट कोहरा अपेक्षाकृत घना होता है। कोहरे को स्परूप, दृश्यता व निर्माण के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। स्वरूप के आधार पर स्मॉग, स्मेज, पाला धूम, दृश्यता के आधार पर अति सघन, सघन, साधारण व हल्का कोहरा तथा निर्माण विधि के आधार पर प्रमुखतः अन्तः वायु राशि कोहरा व वाताग्र या सीमांत कोहरा कहलाता है। प्रायः गर्म व ठण्डी जलधाराओं के मिलन स्थल पर घना कोहरा मिलता है, जैसे - गल्फ स्ट्रीम व लैब्रेडोर का मिलन स्थल।

वर्षा तथा आर्द्रता जलवायु व मौसम के महत्तपूर्ण घटक हैं। वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प का संघनित होकर जल बूंदों के रूप में गिरना ही, वर्षा कहा जाता है। वर्षा होने के लिए वायु का ऊपर उठना आवश्यक है। वर्षा के तीन प्रमुख प्रकार हैं - संवहनीय वर्षा, पर्वतीय वर्षा तथा चक्रवातीय वर्षा। संवहनीय वायु धाराओं के उत्पन्न होने पर आर्द्र वायु ठण्डी होकर जो वर्षा करती है, उसे संवहनीय वर्षा कहते हैं। पर्वतों के अवरोध से ऊपर उठने वाली वायु में जलवाष्प के संघनित होने पर हुई वर्षा पर्वतकृत वर्षा कही जाती है। चक्रवातों के कारण वायु के ऊपर उठने और ठण्डी होकर वर्षा करने को चक्रवातीय वर्षा कहते हैं।

विश्व में वर्षा का असमान वितरण है। सामान्यतः विश्व को वर्षा की 6 पेटियों में विभाजित किया जाता है - अत्यधिक वर्षा वाली भूमध्य रेखीय पेटी, व्यापारिक पवनों की वर्षा पेटी, उपोष्ण कटिबन्धीय न्यूनतम वर्षा पेटी, भूमध्यसागरीय वर्षा पेटी, मध्य अक्षांशीय अधिक वर्षा पेटी तथा ध्रुवीय न्यून वर्षा की पेटी।

10.7 शब्दावली

संवहन (Convection)	:	वायु की ऊर्ध्वाधर धाराएँ
संतृप्तवायु (Saturated)	:	वायु में उसकी सामर्थ्य के बराबर आर्द्रता की उपलब्धि
वृष्टि छाया प्रदेश (Rainshadow region)	:	पवनविमुखी ढाल
ओस (Dew)	:	जलवाष्प का ठण्डे तल पर जल-बून्दों के रूप में बैठना
पाला (Frost)	:	ओस का हिमकणों में परिवर्तन
कोहरा (Fog)	:	दृश्यता को कम करने जितनी सघनता लिए हुए धुलकणों पर बैठी - बून्दें
धुन्ध (Mist)	:	कोहरे का हल्का रूप
अर्हता (Humidity)	:	वायु में उपलब्ध जल वाष्प

हाइग्रोमीटर (Hygrometer) : आर्द्रतामापी

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

शर्मा, शर्मा, व मिश्रा	:	भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005
सविन्द्र सिंह	:	भौतिक भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006
F.J. Monkhouse	:	Principles of Physics Geography,London,1962
लाल, डी. एस.	:	जलवायु एव समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003
Critch Field,H.J.	:	General Climatology,Prentice Hall Inc., Engleswood N.J.U.S.S.,2002

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा।
2. किसी द्रव का वाष्प की अवस्था में बदलना।
3. हाइग्रोमीटर।
4. जलवाष्प के भार तथा नाम हवा के भार के मध्य के अनुपात को विशिष्ट आर्द्रता कहते है।
5. भूमध्य रेखीय प्रदेशों में।

बोध प्रश्न - 2

1. जिस तापमान पर वायु संतृत्व हो जाती है, उसे ओसांक कहते हैं।
2. पर्वतीय घाटियों में।
3. गल्फ स्ट्रीम एवं लैब्रेडोर
4. धुएं व धुंध के मिश्रण से बना कोहरा।
5. ऊपर वायु में निलम्बित जल या हिम के सूक्ष्म कणों की संहति
6. पक्षाभ मेघ
7. स्तरी मध्य मेघ - (i) वर्षा स्तरी मेघ, (ii) स्तरी मेघ, (iii) कपासी वर्षीले मेघ हैं।

बोध प्रश्न- 3

1. वायु में उपस्थित जलवाष्प का संघनित होकर जल के रूप में गिरना ही वर्षा है।
2. रैनोग्राफ।
3. जलवाष्प का संघनित होकर छोटे-छोटे जलकणों के रूप में गिरना बौछार तथा जब घनीभवन हिमांक के नीचे होता है तो वर्षा हिम के रूप में होती है, इसे हिम वर्षा कहते हैं।
4. संवाहनीय वर्षा।
5. वृष्टि छाया प्रदेश।
6. शीतोष्ण कटिबंध।

10.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वर्षा के प्रकारों का वर्णन कीजिये।
2. विश्व में वर्षा के वितरण को समझाइये।
3. सापेक्षिक व निरपेक्ष आर्द्रता में अन्तर स्पष्ट करने के साथ ही सापेक्षित आर्द्रता के महत्व व वितरण की विवेचना कीजिये।
4. वृष्टि छाया प्रदेश को स्पष्ट कीजिये।
5. संघनन क्या है? इसके विभिन्न रूपों को समझाये।

इकाई-11 : विश्व के जलवायु प्रदेश

इकाई की रूप रेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 जलवायु
    11.2.1 जलवायु वर्गीकरण के उपागम
    11.2.2 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण
    11.2.3 थॉर्नथ्वेट का जलवायु वर्गीकरण
    11.2.4 कोपेन व थॉर्नथ्वेट के वर्गीकरण की तुलना
11.3 विश्व के जलवायु प्रदेश एवं उनकी विशेषताएँ
11.4 जलवायु एवं मानव स्वास्थ्य
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 संदर्भ ग्रन्थ
11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप समझ सकेंगे : -

- जलवायु का अर्थ,
- जलवायु वर्गीकरण के आधार,
- विभिन्न विद्‌वानों द्‌वारा दिये गये जलवायु वर्गीकरण,
- विश्व के विभिन्न जलवायु प्रदेशों की सामान्य विशेषताएँ,
- जलवायु के मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव।

11.1 प्रस्तावना

जलवायु किसी स्थान की दीर्घकालीन मौसमी दशाओं के औसत तथा उन दशाओं में पायी जाने वाली भिन्नताओं को दर्शाती है। मानव जीवन पर भौतिक पर्यावरण के जिन तत्वों का प्रभाव पड़ता है, उनमें जलवायु का स्थान प्रमुख है।

विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति व उच्चावच की असमानता के कारण उनकी जलवायु में भिन्नता होना स्वाभाविक है। जलवायु तत्वों की इन्हीं क्षेत्रीय समानताओं रख असमानताओं के आधार पर जलवायुविदों ने जलवायु के वर्गीकरण दिये हैं ताकि विभिन्न प्रकार की जलवायु को कुछ विशिष्ट श्रेणियों में रखा जा सके। जलवायु वर्गीकरण से एक सामान्य चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रत्येक जलवायु प्रदेश में ऐसे क्षेत्रों को रखा जाता है, जिनमें जलवायु की समांगता मिलती है।

11.2 जलवायु

जलवायु के विभिन्न तत्व तापमान, वायुदाब, पवनें, आर्द्रता, वायु राशियाँ आदि जलवायु को परिभाषित करते हैं। जब आकाश स्वच्छ एवं शीतल मंद पवन चलती है तो हम कहते हैं कि आज मौसम सुहावना है। यदि दूसरे दिन अचानक वर्षा हो जाती है और घने बादल छा जाते हैं तो हम कहते हैं कि आज मौसम खराब है। अत: स्पष्ट है कि मौसम वायुमण्डल की अल्पकालिक दशा होती है, जबकि जलवायु शब्द से किसी स्थान के मौसम की दीर्घकालीन औसत दशाओं का बोध होता है। वर्ष भर की विभिन्न ऋतु संबंधी औसत दशाओं के सम्मिलित रूप को ही जलवायु कहते हैं.

मॉंकहाउस के अनुसार - "जलवायु सामान्यत: किसी स्थान विशेष की दीर्घकालीन मौसमी दशाओं के विवरण को शामिल करती है।

बोध प्रश्न - 1

1. जलवायु एवं मौसम में क्या अन्तर है।

   ....

   ....

2. जलवायु के प्रमुख तत्व कौन-कौन से हैं?

   ....

   ....

11.2.1 जलवायु वर्गीकरण के उपागम

जलवायु का वर्गीकरण करने के लिए जिस विधि का सहारा लिया जाता है, उसे उपागम कहा जाता है। जलवायु वर्गीकरण के तीन मुख्य उपागम हैं - (i) आनुभाविक (Empirical), (ii) जननिक (Genetic) तथा (iii) व्यावहारिक या क्रियात्मक (Applicational or Functional)।

आनुभाविक वर्गीकरण

इसमें जलवायु की प्रेक्षित विशेषताओं के आधार पर जलवायु का विभाजन करते हैं। इस उपागम में विभिन्न तत्वों के उपलब्ध आकड़ों अथवा प्रभाव के आधार पर जलवायु के विविध प्रकारों एवं उनकी सीमाओं का निर्धारण करते हैं। कोपेन तथा थॉर्नथ्वेट ने प्राकृतिक वनस्पति को जलवायु का सूचक मानकर जलवायु वर्गीकरण किया। थॉर्नथ्वेट ने 1940 में अपने संशोधित वर्गीकरण में तापमान व वर्षा के तत्वों के आधार पर जलवायु वर्गीकरण किया।

जननिक वर्गीकरण

इस वर्गीकरण में विभिन्न प्रकार की जलवायु की उत्पत्ति के कारणों को आधार माना जाता है। सामान्यत: यह वर्गीकरण सैद्धांतिक हो जाता है, उपयोगी नहीं, क्योंकि इसमें धरातल पर जलवायुविक विभिन्नता के कारणों का विश्लेषण करना पड़ता है। इसके अलावा यह वर्गीकरण भूगोलवेत्ताओं की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायक नहीं हो सकता क्योंकि जननिक वर्गीकरण पर आधारित जलवायु के एक प्रकार में एक से अधिक आनुमानित जलवायु समूह आ जाते हैं।

व्यावहारिक या क्रियात्मक वर्गीकरण

जलवायु का अन्य वस्तुओं पर पड़ने वाला प्रभाव ही इस वर्गीकरण का आधार है। इस वर्गीकरण से उन विशिष्ट समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है, जिसका संबंध जलवायु के एक या दो तत्वों से होता है। इसमें जलवायु तथा मानव जीवन के विविध पक्षों के सहसंबंधों का विवेचन करते हैं।

11.2.2 कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

प्रसिद्ध जर्मन जलवायुवेत्ता डॉ. ब्लादिमिर कोपेन ने सर्वप्रथम सन् 1900 में जलवायु वर्गीकरण की योजना प्रस्तुत की जिसका प्रमुख आधार वनस्पति प्रदेश थे। सन् 1931 में तापमान, वर्षा के मासिक व वार्षिक औसत के आधार पर संशोधित वर्गीकरण प्रस्तुत किया जिसका अन्तिम रूप 1936 में अपनी संशोधित पुस्तक Hand buch der Kilatologle में किया। यह पुस्तक 5 खण्डों में जादूगर के साथ निकलकर लिखी गई थी, इसलिए इसे कोपेन जादूगर वर्गीकरण भी कहा जाता है।

कोपेन का वर्गीकरण आनुभाविक है जिसमें प्राकृतिक वनस्पति के वितरण के अनुभव को देखकर यह वर्गीकरण किया है। कोपेन का मानना है कि वनस्पति का विकास केवल वर्षा की मात्रा पर निर्भर न होकर वर्षा की प्रभावशीलता पर निर्भर करता है। वर्षा की प्रभाविता, वर्षा की मात्रा और वाष्पन की तीव्रता पर निर्भर करती है।

कोपेन के जलवायु वर्गीकरण के आधार

तापमान

कोपेन ने तापमान की विशेषताओं को सांकेतिक शब्दावली द्वारा प्रकट किया। मासिक औसत तापमान के आधार पर 5 जलवायु वर्ग बनाये हैं -

(A) **उष्ण कटिबन्धीय जलवायु -** इसमें सबसे ठण्डे माह का तापमान 18 डिग्री सैल्सियस से अधिक रहता है।

(B) **शुष्क जलवायु -** यह मरूस्थलीय जलवायु है जिसमें वाष्पीकरण की मात्रा, वर्षा की मात्रा से अधिक होती है।

(C) **उष्णार्द्र समशीतोष्ण जलवायु -** यह मध्य तापीय जलवायु है जिसमें सबसे ठण्डे महीने का औसत तापमान 18 डिग्री सैल्सियस से नीचे और 1 डिग्री सैल्सियस से ऊपर रहता है।

(D) **शीतोष्ण जलवायु -** इसे निम्न तापीय जलवायु भी कहा जाता है। इसमें सबसे ठण्डे माह को औसत तापमान -3 डिग्री सैल्सियस से कम और सबसे गर्म माह का औसत तापमान 10 डिग्री सैल्सियस से अधिक रहता है।

(E) **ध्रुवीय जलवायु -** इस जलवायु में सबसे गर्म माह का औसत तापमान 10 डिग्री सैल्सियस से नीचे रहता है अर्थात् इस जलवायु में ग्रीष्म ऋतु नहीं होती।

शुष्कता

शुष्कता का तात्पर्य वर्षा एवं वाष्पीकरण की मात्रा के अनुपात से है। कोपेन ने वर्षा के मौसमी वितरण एवं शुष्कता के आधार पर मुख्य जलवायु विभागों को निम्न संकेताक्षरों द्वारा उप विभागों में बांटा है-

S - अर्द्धशुष्क (स्टैप्स) तथा **W** - शुष्क (मरूस्थल)

S व **W** बड़े अक्षरों को केवल B समूह की जलवायु के लिए काम में लिया है जबकि अन्य दशाओं के लिए निम्न छोटे अक्षरों का प्रयोग किया है -

f = वर्षभर वर्षा, कोई भी शुष्क काल नहीं

m = घनघोर ग्रीष्मकालीन मानसून वर्षा, वर्ष के कुछ महीने पूर्णतः शुष्क

s = ग्रीष्मकाल शुष्क (भूमध्य सागरीय प्रदेश)

w = शीतकाल शुष्क

तापमान की गौण विशेषताएँ

तापमान की अन्य विशेषताओं के आधार पर उपरोक्त जलवायु विभागों को उपविभागों में विभाजित करने के लिए निम्न अक्षर समूहों को तीसरे अक्षर के रूप में प्रयोग किया है -

(a) जब ग्रीष्म ऋतु में सबसे गर्म माह का औसत तापमान 22^0C होता है। इस अक्षर का उपयोग C व D वर्ग की जलवायु के साथ किया है।

(b) ग्रीष्म ऋतु में सबसे गर्म माह का औसत तापमान 22^0C से कम होता है अर्थात् ग्रीष्म ऋतु साधारण होती है।

(c) सबसे ठण्डे माह का तापमान -38^0C से अधिक तथा 4 माह तक तापमान 10^0C से अधिक रहता है। लघु एवं कम गर्म ग्रीष्मकाल।

(d) सबसे ठण्डे महीने का औसत तापमान -38^0C से कम होता है। शीत ऋतु अत्याधिक सर्द रहती है।

(e) औसत तापमान 18^0C से अधिक, यह गर्म व शुष्क जलवायु छोटी है जो B वर्ग की जलवायु का गौण भाग है।

(f) औसत तापमान 18^0C से कम, यह ठण्डी व शुष्क जलवायु होती है जो B वर्ग की जलवायु का गौण भाग है।

(g) वर्ष भर कोहरे की अधिकता।

इस प्रकार उपरोक्त आधारों पर कोपेन ने विश्व की जलवायु को पांच प्रमुख समूहों, ग्यारह उपसमूहों तथा इन्हें पुनः गौण भागों में विभाजित कर कुल 24 प्रकार के जलवायु प्रदेश बताये हैं-

कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

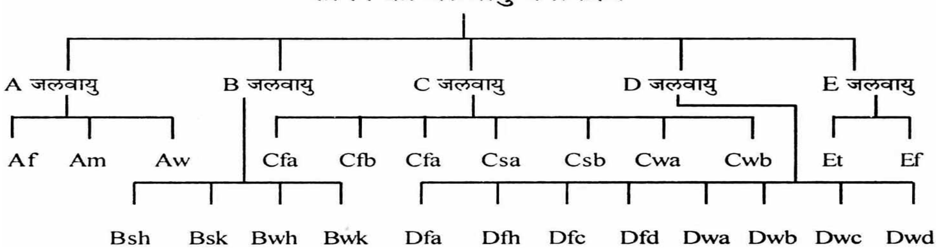

1. Af : उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा, शुष्क ऋतु नहीं, प्रचुर वन, शुष्क महीने में भी 6 सेमी से अधिक वर्षा।

2. Ab : उष्ण कटिबधीय मानसूनी जलवायु, लघु शुष्क काल, शीष्म ऋतु में वर्षा अधिकतम तथा सघन वन।

3. Aw : उष्ण कटिबन्धीय सवाना घास के मैदान, शीत ऋतु शुष्क, अधिकशुष्क माह में 6 सेमी. से कम वर्षा होती है।

4.	Bsh	:	उष्ण कटिबन्धीय स्टैप जलवायु, औसत वार्षिक तापमान 18^{0}C, अल्पकालीन वर्षा ऋतु।
5.	Bsk	:	शीतोष्ण कटिबन्धीय स्टैप जलवायु, औसत वार्षिक तापमान 18^{0}C से कम, अर्द्ध शुष्क शीत प्रधान क्षेत्र।
6.	Bwh	:	उष्ण कटिबन्धीय गर्म मरूस्थलीय जलवायु, औसत वार्षिक तापमान 18^{0}C से अधिक, गर्म व शुष्क क्षेत्र।
7.	Bwk	:	शीतोष्ण मरूस्थलीय जलवायु, औसत वार्षिक तापमान 18^{0}C, शुष्क व शीतल क्षेत्र।
8.	Cfa	:	आर्द्र उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु, शीत ऋतु साधारण ठण्डी, सभी ऋतुओं में वर्षा, ग्रीष्मऋतु लम्बी व गर्म।
9.	Cfb	:	सागरीय जलवायु, शीत ऋतु सामान्य, सभी ऋतुओं में वर्षा, ग्रीष्प ऋतु साधारण गर्म।
10.	Cfc	:	सागरीय जलवायु, शीत ऋतु सामान्य, सभी ऋतुओं में वर्षा, ग्रीष्म ऋतु छोटी एवं शीतल।
11.	Csa	:	आंतरिक भूमध्य सागरीय जलवायु, शीत ऋतु सामान्य व वर्षा, ग्रीष्म ऋतु लम्बी व गर्म।
12.	Csb	:	तटीय भूमध्य सागरीय जलवायु, शीत ऋतु सामान्य व वर्षा, ग्रीष्म ऋतु सामान्य गर्म।
13.	Cwa	:	उपोष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु, शीत ऋतु साधारण ठण्डी, शीत ऋतु शुष्क, ग्रीष्म ऋतु उष्ण।
14.	Cwb	:	अयनवर्ती उच्च प्रदेश, शीत ऋतु साधारण एवं शुष्क, ग्रीष्म ऋतु साधारण गर्म।
15.	Dfa	:	आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु, शीत ऋतु कठोर, वर्ष भर वर्षा, लम्बी एवं गर्म ग्रीष्म ऋतु।
16.	Dfh	:	आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु जिसमें वर्ष भर वर्षा, शीत ऋतु कठोर, ग्रीष्म ऋतु साधारण गर्म।
17.	Dfc	:	उप आर्कटिक जलवायु, शीत ऋतु ठण्डी, वर्ष भर वर्षा, ग्रीष्म ऋतु छोटी व शीतल।
18.	Dfd	:	आर्कटिक जलवायु, शीत ऋतु अपेक्षाकृत अधिक ठण्डी, वर्ष भर वर्षा, ग्रीष्म ऋतु छोटी व शीतल।
19.	Dwa	:	आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु, शीत ऋतु कठोर व शुष्क, ग्रीष्म ऋतु साधारण शुष्क।
20.	Dwb	:	आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु, शीत ऋतु कठोर व शुष्क, ग्रीष्म ऋतु साधारण गर्म।
21.	Dwe	:	उप आर्कटिक जलवायु, शीत ऋतु कठोर व शुष्क, ग्रीष्म ऋतु छोटी व

शीतल।

22. Dwd : उप आर्कटिक जलवायु, शीत ऋतु अत्यधिक ठण्डी एवं शुष्क, ग्रीष्म ऋतु छोटी व शीतल।

23. ET : टुण्ड्रा जलवायु, अत्यन्त छोटी ग्रीष्म ऋतु, सबसे गर्म माह का औसत तापमान 0° C से 10° C के मध्य रहता है।

24. FE : ध्रुवीय जलवायु, वर्ष भर हिमाच्छादित तथा वर्ष भर तापमान 0° C से कम रहता है।

कोपेन के वर्गीकरण का मूल्यांकन

कोपेन के वर्गीकरण का मूल्यांकन निम्न गुण दोष के आधार पर किया जा सकता है -

गुण

(a) सांख्यिकीय चरों पर आधारित होने के कारण, प्रत्येक जलवायु प्रदेश को वास्तविक रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

(b) कोपेन द्वारा प्रतिपादित जलवायु प्रदेशों की सीमाएँ प्राकृतिक वनस्पति प्रदेशों की सीमाओं के अनुरूप होने के कारण इसकी भौगोलिक उपादेयता बढ़ जाती है।

(c) कोपेन ने वर्षण प्रभाविता को वर्गीकरण का आधार बनाया है जो कि प्राकृतिक वनस्पति से घनिष्ठ संबंध रखती है।

(d) इनका वर्गीकरण सरल, आनुभविक एवं अध्ययन व अध्यापन में सुविधाजनक है।

दोष

(a) अनेक बार संशोधन के बावजूद स्वयं कोपेन अपने वर्गीकरण की शुद्धता से संतुष्ट नहीं हो सके, क्योंकि वर्षण प्रभाविता का शुद्ध मापन संभव नहीं है।

(b) कोपेन ने अपने वर्गीकरण में तापमान व औसत मासिक वर्षा को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया परन्तु मौसम के अन्य तत्वों में मेघाच्छादन, वर्षा की गहनता, ताप की विषमता, पवनों आदि की उपेक्षा की है।

(c) इस वर्गीकरण में वायु राशियों को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

(d) कोपेन का वर्गीकरण जलवायु निरीक्षण से प्राप्त आकड़ों पर आधारित है जबकि जलवायु उत्पत्ति कारकों पर विचार नहीं किया गया है।

कोपेने के जलवायु वर्गीकरण की कुछ कमियों के बावजूद इसका अत्यधिक महत्व है, क्योंकि यह विश्व की जलवायु की सामान्य तस्वीर प्रस्तुत करता है ।

बोध प्रश्न - 2

(1) कोपेन के जलवायु वर्गीकरण के आधार क्या हैं?

....

....

(2) कोपेन के अनुसार पृथ्वी तल पर कितने जलवायु प्रदेश पाये जाते हैं?

....

....

(3)	कोपेन के वर्गीकरण में प्रमुख दोष क्या हैं?
	....
	....

11.2.3 थॉर्नथ्वेट का वर्गीकरण

अमेरिका के जलवायुवेत्ता सी. वारेन थोर्नथ्वेट ने उत्तरी अमेरिका की जलवायु दशाओं का सर्वेक्षण करने के उपरांत सन् 1931 में मिट्टी-पानी बजट को मूल आधार मानकर विश्व के जलवायु का वर्गीकरण किया। इनका मानना था कि प्राकृतिक वनस्पति के विकास में वर्षण के साथ साथ वाष्पन की दर का उतना ही महत्व है। थॉर्नथ्वेट ने दो वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं -

1931 का वर्गीकरण - थॉर्नथ्वेट ने वनस्पति के विकास में केवल ताप या वर्षा की मात्रा को ही नहीं बल्कि वर्षण प्रभाविता, तापीय दक्षता तथा वर्षा के मौसमी वितरण को भी महत्वपूर्ण माना है-

वर्षण प्रभाविता

वर्षण प्रभाविता से अभिप्राय सम्पूर्ण वार्षिक वर्षा का वह भाग जो पौधों, वनस्पति के निवास तथा वृद्धि में प्रभावशाली होता है। यह अनुपात ज्ञात करने के लिए उन्होंने कुल मासिक वर्षा को मासिक वाष्पीकरण से विभाजित किया है तथा 12 माह के P/E तह अनुपात ज्ञात करके P/E सूची तैयार की जाती है। इसके लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है -

P/E अनुपात = $= 11.5\left[\frac{r}{t-10}\right]^{\frac{10}{9}}$

P/E सूची = $= \sum_{i=1}^{12} 11.5\left(\frac{r}{t-10}\right)^{10/9}$

(r = औसत मासिक वर्षा इंच में, t = औसत मासिक तापमान इंच में)

थॉर्नथ्वेट ने P/E सूची के आधार पर जलवायु को 5 प्रदेशों में बांटा है जिनमें विशिष्ट प्रकार की वनस्पति मिलती है -

आर्द्रता प्रदेश	**वनस्पति प्रकार**	**P/E सूचकांक**
A अत्यधिक आर्द्र	वर्षा के वन	128 से अधिक
B आर्द्र	घास के मैदान	64 से 127
C उपार्द्र	वन	32 से 67
D अर्द्ध शुल्क	स्टैप	16 से 31
D शुष्क	मरूस्थल	16 से कम

वर्षा का मौसमी विवरण

ग्रीष्म काल व शीतकाल में वर्षा के असमान वितरण के कारण मौसमी परिवर्तन आ जाता है। अत: थॉर्नथ्वेट ने छोटे अक्षरों द्वारा प्रत्येक अर्द्रता प्रदेश को चार उपभागों में बांटा है -

(a) r = वर्ष भर भारी वर्षा

(b) s = ग्रीष्मकाल में कम वर्षा

(c) w = शीतकाल में कम वर्षा

(d) d = सभी ऋतुओं में कम वर्षा

तापीय दक्षता

थॉर्नथ्वेट ने तापमान को वनस्पति की उत्पत्ति तथा विकास में महत्वपूर्ण माना है। तापमान के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने प्रत्येक तापीय दक्षता T/E ज्ञात कर तापीय दक्षता सूची बनायी है -

1. तापीय दक्षता अनुपात (T/E) = $\left\{\frac{T-32}{4}\right\}$

2. तापीय दक्षता सूची (T/C इंडेक्स) = $\sum_{i=1}^{12}\left\{\frac{T-32}{4}\right\}$

तापीय दक्षता सूची के आधार पर थॉर्नथ्वेट ने विश्व को 6 तापीय प्रदेशों में विभाजित किया है -

तापीय प्रदेश	**T/E सूचकांक**
A उष्णकटिबन्धीय प्रदेश	128 से अधिकअत्यधिक
B मध्य तापीय प्रदेश	64 से 127
C सूक्ष्म तापीय प्रदेश	32 से 63
D टैगा प्रदेश	16 से 31
D टुण्ड्रा प्रदेश	1 से 15
F हिमाच्छादित प्रदेश	1 से 15

थॉर्नथ्वेट के अनुसार वर्षण प्रभाविता, वर्षा के मौसमी वितरण एवं तापीय दक्षता के आधार पर सैद्धांतिक तौर पर जलवायु के 120 खण्ड बनते हैं, परन्तु थॉर्नथ्वेट ने केवल 32 जलवायु खण्डों का मानचित्रण किया है-

1.	AA'r	:	उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
2.	AB'r	:	मध्यतापीय आर्द्र जहयायु, वर्ष भर वर्षा
3.	AC'r	:	सूक्ष्य तापीय आर्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
4.	BA'r	:	उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
5.	BA'r	:	उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
6.	BB'r	:	मध्य तापीय आर्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
7.	BB'w	:	आर्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
8.	BB'w	:	मध्य तापीय आर्द्र जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा
9.	BC'r	:	सूक्ष्म तापीय आर्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
10.	BC'r	:	सूक्ष्म तापीय आर्द्र जलवायु, वर्षा ग्रीष्मकाल में कम वर्षा
11.	CA'r	:	उष्ण कटिबन्धीय उपार्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
12.	CA'w	:	उष्ण कटिबन्धीय उपार्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
13.	CA'd	:	उष्ण कटिबन्धीय उपार्द्र जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
14.	CB'r	:	मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, वर्ष भर वर्षा
15.	CB'w	:	मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा

16.	CB’s	:	मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, ग्रीष्म काल में कम वर्षा
17.	CB’d	:	मध्य तापीय उपार्द्र जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
18.	CC’r	:	सूक्ष्म तापीय उपार्द्र जलवायु, वर्ष भर
19.	CC’r	:	सूक्ष्म तापीय उपार्द्र जलवायु, ग्रीष्म काल में कम वर्षा
20.	CC’d	:	सूक्ष्म तापीय उपार्द्र जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
21.	.DD’w	:	उष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
22.	DA’d	:	उष्ण कटिबन्धीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
23.	DB’s	:	मध्य तापीय, अर्द्ध शुल्क जलवायु, शीतकाल में कम वर्षा
24.	DB’s	:	मध्य तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा
25.	DB’d	:	मध्य तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, ग्रीष्मकाल में कम वर्षा
26.	DC’d	:	सूक्ष्म तापीय अर्द्ध शुष्क जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
27.	EA’d	:	उष्ण कटिबन्धीय जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
28.	EB’d	:	मध्य तापीय शुष्क जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
29.	ED’d	:	सूक्ष्मतापीय शुष्क जलवायु, वर्ष भर कम वर्षा
30.	D’	:	टैग तुल्य जलवायु
31.	E’	:	टुण्ड्रा तुल्य जलवायु
32.	F’	:	सतत हिमाच्छादित या ध्रुवीय जलवायु

मूल्यांकन

(a) थॉर्नथ्वेट द्वारा प्रतिपादित विश्व वर्गीकरण अत्यधिक जटिल होने के कारण विश्व मानचित्र पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।

(b) थॉर्नथ्वेट ने अपने वर्गीकरण में प्राकृतिक वनस्पति के प्रकार एवं वनस्पति प्रदेशों का कोई ध्यान नहीं रखा है।

(c) संभाव्य वाष्पोत्सर्जन के आकड़े उपलब्ध करना कठिन है। इसे दूर करने के लिए थॉर्नथ्वेटने एक जटिल सूत्र प्रतिपादित किया ।

(d) इसके वर्गीकरण के आधार सहज मापनीय नहीं है। अत: थॉर्नथ्वेट के वर्गीकरण को पर्याप्त लोकप्रियता नहीं मिल पायी।

11.2.4 कोपेन व थॉर्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण की तुलना

(1)	इनका वर्गीकरण संख्यात्मक है।	(1)	यह भी संख्यात्मक वर्गीकरण है।
(2)	यह पूर्णत: सैद्धांतिक वर्गीकरण है।	(2)	यह केवल जलवायु तत्वों पर निर्भर है।
(3)	इन्होंने जलवायु सीमाएं ताप व वर्षा के आधार पर मानी हैं जोकि अत्यन्त सरल हैं।	(3)	थॉर्नथ्वेट ने तापीय दक्षता एवं वर्षण दक्षता का उपयोग किया है, अत जलवायु सीमाएँ जटिल हैं।
(4)	इसमें छोटे अक्षरों वाले संकेत अधिक हैं, जिन्हें स्मरण रखना कठिन है।	(4)	छोटे अक्षरों के संकेत कम होने के कारण अधिक सरल है ।
(5)	इन्होंने 24 जलवायु प्रदेश निर्धारित	(5)	थॉर्नथ्वेट के 32 जलवायु प्रदेश बताये

किये हैं। हैं।

बोध प्रश्न- 3

1. थॉर्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण के आधार क्या हैं?

....

....

2. थॉर्नथ्वेट ने तापीय दक्षता के लिए किस सूत्र का उपयोग किया?

....

....

3. थॉर्नथ्वेट द्वारा प्रतिपादित वर्षण प्रभाविता को स्पष्ट कीजिये।

....

....

4. कोपेन व थॉर्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण में मुख्य अन्तर क्या हैं?

....

....

11.3 विश्व के जलवायु प्रदेश एवं उनकी विशेषताएं

कोपेन व थॉर्नथ्वेट के जलवायु वर्गीकरण के अध्ययन से आप यह समझ गये होंगे कि पृथ्वीतल पर ऐसे क्षेत्र पाये जाते हैं जहाँ जलवायु के प्रमुख तत्वों में समानता पायी जाती है। जलवायु तत्वों मैं समानता वाले प्रदेश को जलवायु प्रदेश कहा जाता है। विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने विश्व को कुछ सामान्य जलवायु प्रदेशों में बांटने का प्रयास किया है। विभिन्न जलवायु तथ्यों के आधार पर विश्व को 14 जलवायु प्रदेशों में बांटा है -

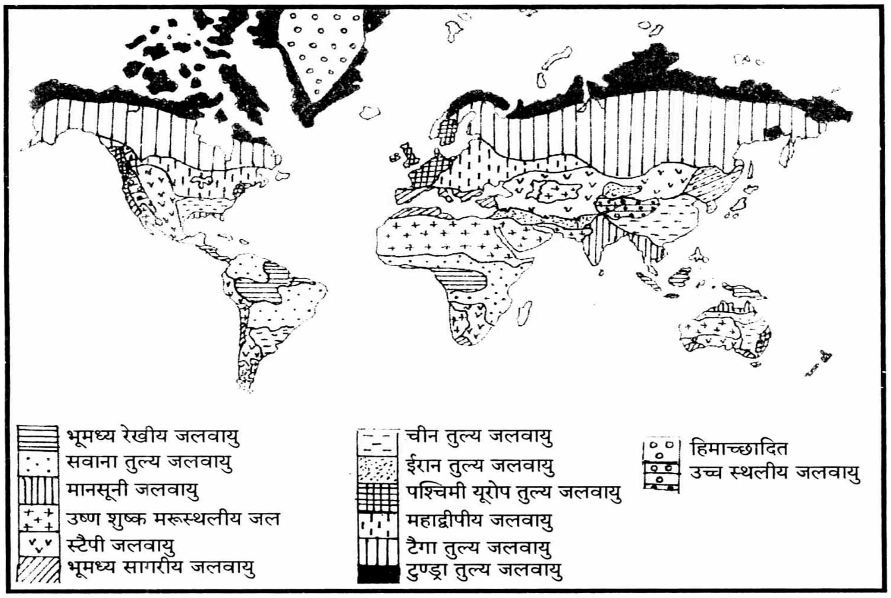

मानचित्र - 11.1 विश्व के जलवायु प्रदेश

भूमध्यरेखीय जलवायु प्रदेश

स्थिति एवं विस्तार - यह जलवायु प्रदेश भूमध्यरेखा के दोनों ओर 5° उत्तरी व 5° दक्षिणी अक्षांश तक विस्तृत है। परन्तु सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन स्थिति के कारण कभी-कभी इसका विस्तार 10° अक्षांशों तक भी मिलता है। इस प्रदेश में दक्षिणी अमेरिका का अमेजन बेसिन, मध्य अमेरिकी क्षेत्र, अफीका का काँगो बेसिन व गिनी तट एवं एशिया के पूर्वी द्वीप समूह व मलाया प्राय: द्वीप शामिल हैं।

जलवायु दशाऐं - भूमध्यरेखा पर सूर्य वर्षभर लम्बवत् चमकने के कारण दिन रात बराबर होते हैं तथा सूर्यातप प्राप्ति समान रूप से होती है। औसत वार्षिक तापमान 26°C या 27°C रहते हैं। वार्षिक तापान्तर केवल 2°C से 3°C तक पाये जाते हैं। वर्षा का औसत 250 से मी. तक रहता है। वर्षा प्राय: संवाहनिक है जो प्रतिदिन दोपहर बाद होती है। कभी-कभी व्यापारिक हवाओं के आगमन से अन्तर उष्ण कटिबन्धीय अभिसरण की स्थिति बन जाती है। चक्रवातीय दशाओं के कारण तड़ित झंझावात उत्पन्न होते हैं। इस प्रदेश में शुष्क ऋतु नहीं होती है।

प्राकृतिक वनस्पति - वर्ष भर ऊँचे तापमान, अधिक वर्षा एवं उच्च आर्द्रता के कारण इस प्रदेश में चौड़ी पत्ते वाले सदाबहार सघन वन पाये जाते हैं। इस प्रदेश में वृक्ष इतने सघन होते हैं कि धरातल पर सूर्य की रोशनी भी नहीं पहुँच पाती। रबड़, एबोनी, गटापार्चा, ताड़, बाँस, बेंत, चन्दन, सिनकोना आदि इस जलवायु के प्रमुख वृक्ष है।

जीव जन्तु - सघन वनस्पति के कारण इस प्रदेश में विविध प्रकार के जीव जन्तु पाये जाते हैं। यहाँ चार प्रकार के जीव पाये जाते हैं -

(a) असंख्य कीड़े -मकोड़े, विषैले कीट आदि।

(b) भूमि पर विचरण करने वाले विशाल जीव हाथी, शेर, गैंडा, चीता, जंगली सूअर आदि।

(c) नदियों में रहने वाले, मगर, घड़ियाल, दरियाई, घोड़े आदि।

(d) वृक्षों पर रहने वाले गिरगिट, सांप, बन्दर, चमगादड़ आदि प्रमुख हैं।

अस्वास्थ्य कर जलवायु एवं जहरीले कीड़े -मकोड़ों के कारण ये प्रदेश मानव निवास के योग्य नहीं है।

सवाना तुल्य जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - भूमध्य रेखा के दोनों ओर 5°C से 2°C अक्षांशों के मध्य दोनों गौलार्द्धो में इसका विस्तार मिलता है। इसमें दक्षिणी अमेरिका के वैनिज्वे, कोलम्बिया, गायना, दक्षिणी मध्य ब्राजील, पैराग्वे, अफ्रीका में जायर का दक्षिणी भाग, अंगोला, जाम्बिया, मोजाम्बिक, युगान्डा, एवं सूडान व उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के कुछ भाग शामिल हैं।

जलवायु - भूमध्यरेखीय प्रदेशों की भांति इस प्रदेश में वर्ष भर उच्च तापमान रहते है। औसत वार्षिक तापमान 25°C तथा औसत वार्षिक वर्षा 100 से 150 सेमी होती है। अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकाल में होती है और शीतकाल शुष्क रहता है। इस प्रदेश के उत्तरी भागों में शुष्क व धूलभरी हवाऐं चलती हैं जिन्हें सहारा के मध्य में खमसिन व दक्षिण में हारमट्टन कहते है।

प्राकृतिक वनस्पति - इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति सवाना घास है जिसके आधार पर इस जलवायु प्रदेश का नामकरण किया गया है। बीच-बीच में विरले वृक्ष भी पाये जाते हैं। भूमध्यरेखीय प्रदेशों के निकट सदाबहार एवं सवाना के शुष्क क्षेत्रों में पर्णपाती वृक्ष मिलते हैं। जैसे-जैसे वर्षा की मात्रा कम होती जाती है, वैसे-वैसे घास व वृक्षों की ऊँचाई कम होती जाती है।

जीव जन्तु - सवाना घास के मैदान प्राणी उद्यान के नाम से जाने जाते हैं अर्थात् यहाँ वन्य जीवन विविधतापूर्ण पाया जाता है। यहाँ दो प्रकार के जन्तु पाये जाते हैं।

(i) **शाकाहारी** - हिरण, जिराफ, कंगारू, जेब्रा, एन्टीलोप, बारहसिंगा, नीलगाय, बंदर आदि।

(ii) **मांसाहारी** - मांसाहारी जीवों में शेर, चीते, तेन्दुए, गीदड़, मगर, लकड़बग्घे, दरियाई घोड़े, गैंडे आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा शुतुर्मुर्ग, हाथी एवं जंगली भैंसा भी यहाँ के विशिष्ट जन्तु हैं। जैव विविधता के कारण ही सवाना प्रदेश विश्व के प्रमुख आखेट स्थल (Hunting Grounds) कहलाते हैं।

मानसूनी जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - इस जलवायु का विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 5° से 30° अक्षांशों के मध्य मिलता है। इसमें दक्षिणी पूर्वी एशिया के भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यानमार, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, लाओस, उत्तर व दक्षिण वियतनाम आदि, दक्षिण पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, अफ्रीका का पूर्वी तटीय क्षेत्र तथा उत्तरी ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं।

जलवायु - तापमान रख वर्षा के आधार पर यहाँ तीन मौसम (ग्रीष्मकाल, शीतकाल एवं वर्षाकाल) पाये जाते है। ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 26°C से 32°C तथा शीतकाल में 10°C से 27°C रहते हैं। वार्षिक तापान्तर अधिक रहते हैं। ग्रीष्मकाल में सागर से स्थल की ओर तथा शीतकाल में विश्व के जलवायु प्रदेश स्थल से सागर की ओर हवाऐं चलती हैं जिन्हें क्रमश: भारत में दक्षिण-पश्चिमी मानसून तथा उत्तरी पूर्वी मानसून कहते हैं। मानसूनी प्रदेशों में वर्षा का अधिकांश भाग ग्रीष्मकाल में होता है, परन्तु वर्षा अनिश्चित, अनियमित और असमान होती है। वर्षा का औसत भारत के मेघालय में 300 से. मी. तो थार के मरूस्थल में 25 से. मी. रहता है।

प्राकृतिक वनस्पति - मानसूनी जलवायु प्रदेशों में वर्षा की विभिन्नता के कारण प्राकृतिक वनस्पति में भी विभिन्नता पायी जाती है। 200 सेमी से अधिक वर्षा वाले भागों में उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन जिनमें महोगनी, सिनकोना, बांस, रबड़, गटापार्चा आदि वृक्ष मिलते हैं। 100 से 200 सेमी वर्षा वाले मानसूनी वन पाये जाते हैं। 50 से 100 सेमी वर्षा वाले भागों में खैर, बबूल, नीम, कीकर जैसे वृक्षों वाले पतझड़ वन एवं घास के मैदान तथा 50 सेमी से कम वर्षा वाले भागों में शुष्क कंटीले वन मिलते हैं। नदियों के डेल्टाई भागों में ज्वारीय वन एवं ऑस्ट्रेलिया में यूकेलिप्टस के वन पाये जाते हैं।

जीव-जन्तु : - मानसूनी प्रदेशों में विभिन्न प्रकार के जीवजन्तु पाये जाते हैं। यहाँ कीड़े-मकोड़े, पक्षी, रेंगने वाले जन्तु, गीदड़, शेर, बाघ, चीते, हिरण, भेड़िया आदि वन्यजीव, घड़ियाल, मगरमच्छ जैसे जलचर एवं ऑस्ट्रेलिया में कंगारू पाये जाते हैं। इसके अलावा गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, भेड़, बकरियां, सुअर आदि पालतु पशु भी मिलते हैं।

उष्ण शुष्क मरूस्थलीय जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - दोनों गोलार्द्धों में 15°C से 30°C अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में यह जलवायु पायी जाती है। इसका विस्तार एशिया के थार, सिंध, दक्षिण बलुचिस्तान, अरब, अफ्रीका के सहारा, कालाहारी, दक्षिणी अमेरिका के अटाकामा, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया एवं दक्षिणी पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका में पाया जाता है। विश्व के 17 प्रतिशत क्षेत्र में उष्ण मरूथलीय भाग पाये जाते हैं।

जलवायु - तापमान के आधार पर यहाँ दो ऋतुएँ ग्रीष्मकाल व शीतकाल मिलती हैं । ग्रीष्मकाल में यहाँ उच्च तापमान 35°C से 22°C डिग्री सैल्सियस तक रहते हैं। अब तक का सर्वाधिक तापमान लीबिया के अजीजिया नामक स्थान पर 58°C (सन् 1922) में अंकित किया गया है। वर्षा का वार्षिक औसत 12 सेमी रहता है। परन्तु वर्षा अनिश्चित होती है। कभी-कभी वर्षों तक एक बूंद नहीं गिरती तो कभी एक साथ इतनी वर्षा होती है कि बाढ़े आ जाती हैं। वाष्पीकरण वर्षा से अधिक होता है। धूलभरी आँधियों के कारण वायुमण्डल की पारदर्शिता कम हो जाती है।

प्राकृतिक वनस्पति - यहाँ प्राकृतिक वनस्पति के रूप में मरूस्थलीय वनस्पति पाई जाती हैं जो शुष्क, कंटीली, चिकनी व चमकदार पत्तियाँ, मोटी छाल, लम्बी जड़ों वाली होती है। यहाँ की वनस्पति उच्च तापमान, व्यापक शुष्कता एवं उच्च वाष्पीकरण सहन करने में समर्थ होती है। नागफनी बबूल, कीकर, कैक्टस, एनेशिया, ताड़, खजूर आदि यहाँ की प्रमुख वनस्पति हैं।

जीव जन्तु - गर्म व शुष्क कठोर जलवायु के कारण मरूस्थलीय जलवायु में विशिष्ट जीवन पाया जाता है। ऊँट, भेड़, बकरी यहाँ के प्रमुख पालतू पशु हैं। शुतुर्मुर्ग आर्थिक महत्व का पक्षी है जिसके पंखों का व्यापार किया जाता है। लोमड़ी, खरगोश, गीदड़, चूहा, छिपकली, गिरगिट, एन्टीलोप आदि मुख्य: वन्य जीव बहुतायत से पाये जाते हैं।

स्थिति एवं विस्तार - इस जलवायु प्रदेश की स्थिति 30°C से 45°C उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों में महाद्वीपों के मध्यवर्ती भागों में मिलती है जो कि उष्ण मरूस्थलीय प्रदेशों एवं आर्द्र जलवायु प्रदेशों के बीच संक्रमण प्रदेश में स्थित हैं। इसका विस्तार एशिया में कैस्पियन सागर से रूसी तुर्किस्तान की सीमा तक, यूरोप में रूस के दक्षिणी पूर्वी भाग व डैन्यूब घाटी, उतरी अमेरिका में मिसीसिपी बेसिन, ऑस्ट्रेलिया में मरे-डार्लिंग बेसिन तथा अफ्रीका में वैल्ड प्रदेश तक है। एशिया के स्टैप प्रदेश के आधार पर इसका नामकरण किया गया है।

जलवायु - महाद्वीपों के आन्तरिक भाग में स्थित होने के कारण ग्रीष्म ऋतु साधारण गर्म एवं शीत ऋतु बहुत कठोर होती है। ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 27°C तथा शीतकाल में हिमांक से नीचे रहते हैं। यहाँ मौसमी विषमता अधिक नहीं होती परन्तु दैनिक तापान्तर अधिक पाया जाता है। वर्षा का वार्षिक औसत 25 से 50 से.मी. रहता है। उच्च अशांक्षों वाले भागों में शीतकाल में अधिक वर्षा तथा निम्न अक्षांशों वाले भागों में ग्रीष्मकाल में अधिक वर्षा होती है।

प्राकृतिक वनस्पति - अल्प वर्षा के कारण यहाँ झाड़ियाँ, घासें उत्पन्न होती हैं। छोटी घास वाले ये क्षेत्र उत्तरी अमेरिका में प्रेरीज, एशिया में स्टैप, दक्षिण अफ्रीका में वैल्ड, अर्जेन्टीना में पाम्पास तथा ऑस्ट्रेलिया में डाउन्स कहलाते हैं। इन मैदानों में भेड़, बकरियाँ पाली जाती हैं परन्तु जहाँ सिंचाई सुविधायें विकसित हो गयी हैं, वहाँ व्यापारिक कृषि की जाने लगी है।

जीव-जन्तु - इस प्रदेश में कीड़े, मकोड़े, टिडिड्याँ बहुतायत से पायी जाती हैं। एशियाई स्टैप्स में हिरण, घोड़े, जंगली गधे, ऊँट, भेड़िये आदि, अमेरिकी प्रेयरी में गोफर, खरगोश, प्रेयरी कुत्ते, बाइसन आदि तथा ऑस्ट्रेलिया में कंगारू, एमू, डिंगो आदि मिलते हैं।

भूमध्य सागरीय जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - इसकी स्थिति 30°C से 40°C अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्ध में महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर पायी जाती है। सीरिया, इजरायल एवं अल्जीरिया, उत्तरी अमेरिका में कैलिफोर्निया के तटीय भाग, दक्षिणी अमेरिका में मध्य चिली, दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिणी

पश्चिमी भाग तथा दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया के भागों तक विस्तृत है। भूमध्य सागर के आस-पास इसका सर्वाधिक विस्तार होने के कारण भूमध्य सागरीय जलवायु नामकरण किया गया है।

जलवायु - इस जलवायु की तीन प्रमुख विशेषताऐं हैं - (i) ग्रीष्मकाल गर्म व शुष्क तथा शीतकाल साधारण, (ii) शीतकाल में वर्षा तथा (iii) वर्षभर पर्याप्त मात्रा में धूप।

ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 20 से 27^0C तथा शीतकालीन और तापमान 5^0C से 10^0C रहते हैं। शीतकालीन तापमान हमेशा हिमांक से ऊपर रहने के कारण यह जलवायु आनंददायक होती है। शीतकाल में शीतोष्ण चक्रवातों से वर्षा होती है। वर्षा का औसत 35 से 75 सेमी के बीच रहता है। ग्रीष्मकाल में यहाँ प्रति चक्रवातीय दशाऐं रहती हैं।

प्राकृतिक वनस्पति - यहाँ ग्रीष्म ऋतु में शुष्कता को सहन करने वाली लम्बी जड़ों, चिकनी मोटी छाल, कम व छोटे पत्ते वाली सदापर्णी वनस्पति पायी जाती है। इस प्रदेश में वालनट, साइप्रस, ओक, चैस्टनट, सीडर, फर, पाइन, लॉरेल आदि वृक्ष पाये जाते हैं। इस प्रदेश में सघन झाड़ियाँ भी पायी जाती हैं, जिन्हें मैटोरल (Mattoral) और ऑस्ट्रेलिया में माली (Mallee) कहते हैं। यह जलवायु प्रदेश रसीले फलों नीबू संतरा, जैतून, अंजीर, अंगूर, खूबानी आदि के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

जीव-जन्तु - इस प्रदेश में वन्य जीवों की अपेक्षा पालतू पशुओं की प्रधानता है। चरागाहों की कमी के कारण पर्ततीय भागों पर भेड़ बकरी पालन एवं अन्य भागों में घोड़े, गधे, खच्चर, सुअर पालन होता है। टर्की में अंगोरा, बकरी एवं अन्य शुष्क पठारी भागों में मैरिनो भेड़ पाली जाती है।

चीन तुल्य जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - चीन तुल्य जलवायु का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 25^0C से 40^0C अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पूर्वी भागों में पाया जाता है। इसमें दक्षिणी पूर्वी एवं दक्षिणी चीन, डेन्यूब बेसिन, पो बेसिन, द. पू. संयुक्त राज्य अमेरिका, द. पू. ब्राजील, युरूग्वे, द. अफ्रीका का द. पू. भाग एवं द. पू. ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं।

जलवायु - चीन तुल्य जलवायु एक प्रकार की ठण्डी मानसूनी जलवायु है। यहाँ महासागरीय उष्ण कटिबन्धीय वायु राशियों की प्रमुखता रहती है, जिसके कारण ग्रीष्म ऋतु में संवाहनिक वर्षा एवं तड़ित झंझाओं का विकास होता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 24^0C से 26^0C तथा शीतकालीन औसत तापमान 4^0C से 12^0C रहता है। वर्षा के मौसमी व प्रादेशिक वितरण में अत्यधिक विषमता मिलती है। तट के आंतीरक भागों की ओर तथा दक्षिण से उत्तर की ओर वर्षा की मात्रा घटती जाती है।

प्राकृतिक वनस्पति - पर्याप्त वर्षा एवं तापमान के कारण इस जलवायु प्रदेश में सघन सदापर्णी वनस्पति मिलती है । ऊँचे दुर्गम पर्वतीय भागों में कोणधारी वन, निचले भागों में चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ी वन तथा शुष्क भागों में केवल घास पायी जाती है । मुख्यत: वृक्ष रोजवुड, साइप्रस, ऐश, चैस्टनट आदि हैं। दक्षिणी अमेरिका में पराना बेसिन में पाइन व पर्णपाती मिश्रित वनों में विशिष्ट मोटे वृक्ष पाये जाते हैं ।

जीव-जन्तु - इस जलवायु प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में जैव विविधता पायी जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में हिरण, लोमड़ी, गिलहरी, छछुन्दर, बक, ऊदबिलाव, रैकून, घड़ियाल, सारस आदि रण ऑस्ट्रेलिया में कंगारू, एमू तथा ओपोसम आदि वन्य जीव मिलते हैं।

ईरान तुल्य जलवायु (मध्य अंक्षाशीय मरूस्थल)

स्थिति एवं विस्तार - इस प्रकार की जलवायु महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में 23°C से 48°C अंक्षाशों के मध्य पायी जाती है। इसका विस्तार एशिया में ईरान, अफगानिस्तान, तारिम बेसिन, गोबी मरूस्थल, संयुक्त राज्य अमेरिका में ग्रेट बेसिन, अर्जेन्टीना में पैटागोनिया मरूस्थल में मिलता है।

जलवायु - ये प्रदेश निम्न अंक्षाशीय मरूस्थलों की भांति शुष्क एवं भीषण गर्म होते हैं परन्तु शीतकाल अत्यन्त कठोर होता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 27°C से 32°C तक तथा शीतकालीन औसत तापमान 3°C से 8°C तक रहते हैं। वर्षा बहु त कम केवल ग्रीष्मकाल में होती है। वर्षा का औसत 3० से 35 से मी. है।

प्राकृतिक वनस्पति - पठारी धरातल, उच्च तापमान एवं अल्पवर्षा के कारण यहां वनस्पति के रूप में केवल कंटीली झंडियाँ व घास मिलती है। ईरान के पठार के उत्तरी भाग में पहाड़ी ढालों पर वन पाये जाते है तथा मैक्सिको, टर्की व तारिम बेसिन में कंटीली झाड़ियाँ मिलती हैं।

जीव-जन्तु - झाड़ियों एक् घास की प्रधानता के कारण इस प्रदेश में शाकाहारी, मांसाहारी एवं रेंगने वाले जीव जन्तुओं की विविधता मिलती है। उत्तरी अमेरिका में एन्टलोप, खरगोश, गोफर, कोयोट, एशिया में जंगली घोड़े, गधे, बैक्ट्रियन ऊँट, भेड़िये, अफ्रीका में ग्नू. जेब्रा तथा ऑस्ट्रेलिया में कंगारू व एमू पाये जाते हैं।

पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - इस जलवायु का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 40°C से 65°C अंक्षाशों के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में पाया जाता है। इस प्रदेश में पश्चिमी यूरोप के ब्रिटिश द्वीप समूह, नॉर्वे, डेनमार्क, उत्तरी पश्चिमी जर्मनी, उत्तर पश्चिमी फ्रांस, कनाडा में ब्रिटिश कोलम्बिया, संयुक्त राज्य अमेरिका में वाशिंगटन तथा ओरीगन, दक्षिणी चिली, ऑस्ट्रेलिया का दक्षिणी पूर्वी तट, तस्मानिया एवं न्यूजीलैण्ड शामिल हैं।

जलवायु - इस प्रदेश की जलवायु पर सागरीय जल धाराओं रख पछुआ हवाओं का प्रभाव पड़ता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 15°C से 21°C तक रहते हैं। शीत ऋतु सामान्य ठण्डी होती है। उत्तरी पश्चिमी यूरोप के तटीय भागों में गर्म उत्तरी अटलांटिक प्रवाह के कारण तापमान सामान्य से अधिक रहते हैं। यह प्रदेश पछुआ पवनों रथ चक्रवातों के प्रभाव में रहने के कारण वर्ष भर पर्याप्त वर्षा प्राप्त करता है। वर्षा को औसत 50 से 75 से.मी. के बीच रहता है, परन्तु तटीय भागों से आन्तरिक भागों की ओर इसकी मात्रा कम होती जाती है।

प्राकृतिक वनस्पति - इस प्रदेश में वर्षभर वर्षा के कारण सघन वनस्पति का आवरण मिलता था जो वर्तमान में मावन अधिवास एवं कृषि भूमि में परिवर्तित हो गया है। अब केवल उच्च पहाड़ी भागों में वन पाये जाते हैं जिनमें ओक, एल्म, डगलस फर, स्प्रूस, सीडर, हेमलॉक आदि प्रमुख वृक्ष हैं।

जीव-जन्तु - इस जलवायु प्रदेश में वन्यजीव में भालू लोमड़ी, खरगोश, हिरन, भेड़िया, गिलहरी आदि प्रमुख हैं। यहाँ बड़े पैमाने पर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

सेन्ट लारेन्स तुल्य जलवायु

स्थिति एवं विस्तार : - दोनों गोलार्द्धों में 45° से 65° अंक्षाशों के बीच यह जलवायु प्रदेश विस्तृत है। उत्तरी अमेरिका में सेंट लॉरैन्स नदी के क्षेत्र में स्थिति के कारण इसे सेंट लॉरैन्स तुल्य जलवायु कहते हैं। इसका विस्तार उत्तरी अमेरिका में कनाडा के सागरीय प्रान्त क्विबेक,

ओण्टेरियो, संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यू इंग्लैण्ड प्रदेश, एशिया में मंचूरिया, कोरिया, उत्तरी जापान एवं दक्षिणी अमेरिका में पैटागोनिया में मिलता है ।

जलवायु - यहाँ सूर्य की किरणें वर्ष भर तिरछी पड़ने के कारण शीत ऋतु अत्यन्त कठोर एवं ग्रीष्म ऋतु साधारण होती है । ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 17 से 22°C के बीच रहते हैं। शीत ऋतु में बर्फीली हवाओं के कारण तापमान हिमांक के नीचे गिर जाते हैं और कई दिनों तक हिमपात होता है। वर्षा वर्ष भर होती हैं परन्तु ग्रीष्मकाल में अधिक होती है। वर्षा का औसत 50 से 125 से मी. है परन्तु तट से आन्तरिक भागों की ओर कम होती जाती है।

प्राकृतिक वनस्पति - अधिक वर्षा वाले पर्वतीय भागों में कोणधारी वन तथा कम वर्षा वाले भागों में घास के मैदान पाये जाते हैं। उत्तरी अमेरिका व यूरोप के उच्च भागों में पाइन, स्प्रूस, हेमलॉक, फर आदि सदापर्णी वृक्ष तथा निम्न भागों में बर्च, बीच, पोपलर, सेवल, चेस्टनट आदि चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ी वृक्ष पाये जाते हैं। एशिया के भागों में कोणधारी व चौड़ी पत्ती वाले मिश्रित वन पाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा में इन कोमल लकड़ी के वनों के आधार पर कागज व लुग्दी उद्योग का अत्यधिक विकास हुआ है। घास के मैदान अब कृषि फार्मों में बदल दिये गये हैं। यहाँ फर वाले जन्तु, भालू लोमड़ी एवं खरगोश पाये जाते हैं।

टैगा या साइबेरिया तुल्य जलवायु

स्थिति एवं विस्तार - यह प्रदेश केवल उत्तरी गोलार्द्ध में 55 से 70°C अंक्षाशों के मध्य पायी जाती है। इसके अन्तर्गत यूरेशिया के उत्तरी भाग में नॉर्वे, फिनलैण्ड, स्वीडन, उत्तरी कनाडा शामिल हैं। इस जलवायु का सर्वाधिक विस्तार रूस के टैगा प्रदेश अर्थात् साइबेरिया में मिलता है। अत: इस जलवायु का नामकरण टैगा या साइबेरिया जलवायु रखा गया है।

जलवायु - यह जलवायु लम्बी, कठोर, विषम एवं अत्यधिक ठण्डी शीत ऋतु के लिए प्रसिद्ध है। यह प्रदेश वर्ष के 6 से 9 माह तक बर्फ से ढका रहता है। ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 1°C तथा शीतकाल में हिमांक से नीचे रहता है। विश्व का न्यूनतम तापमान इसी जलवायु प्रदेश के वर्खोयान्स्क में -69°C (फरवरी 1892 में) अंकित किया गया है। बर्फीली हवाऐं एवं तूफान इस प्रदेश की सामान्य बात है। वर्षा वर्ष भर होती है, परन्तु अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकाल में होती है। यह वर्षा हिमपात के रूप में होती है। वर्षा का औसत साइबेरिया में 38 से मी. तथा उत्तरी कनाडा में 38 से 50 सेमी. है।

प्राकृतिक वनस्पति - सम्पूर्ण टैगा प्रदेश कोणधारी वनों से आवृत है। हिमपात के कारण वृक्षों की पत्तियाँ कठोर व नुकीली होती हैं। इन वनों में स्प्रूस, फर, पाइन, सीडर, लार्च, चीड़, ऑल्डर आदि वृक्ष मिलते हैं। उत्तर में ध्रुवों की ओर वनस्पति विरल होती जाती है।

जीव-जन्तु - इन प्रदेशों में फर वाले जन्तुओं में रेण्डियर, बारहसिंगा, फिशर, हिरण, बीयर, वीजल, लोमड़ी प्रमुखतया मिलते हैं। इसके अलावा तीतर, कठफोड़वा आदि पक्षी एवं कीड़े-मकोड़े पाये जाते हैं। शीतकाल में आर्कटिक पशु -पक्षी यहाँ प्रवास करते हैं।

टुण्ड्रा जलवायु स्थिति एवं विस्तार - यह जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में 55 से 70° उत्तरी अंक्षाशों के मध्य विस्तृत है। इसमें कनाडा के उत्तरी द्वीप ग्रीनलैण्ड, अलास्का, तटवर्ती साइबेरिया आदि क्षेत्र आते हैं।

जलवायु - अत्यधिक लम्बी व कठोर शीत ऋतु, छोटी व ठण्डी ग्रीष्म ऋतु इस जलवायु प्रदेश की प्रमुख विशेषताऐं हैं। वर्ष के 9 माह तापमान 0°C से नीचे रहते हैं। औसत वार्षिक तापमान -

12°C तथा सबसे गर्म माह का तापमान 10°C से कम ही रहते हैं। वर्षा का औसत 30 से मी. से कम रहता है। ग्रीष्मकाल में चक्रवातीय वर्षा होती है। अधिकांश वर्षा हिमपात के रूप में होती है।

प्राकृतिक वनस्पति - टुण्ड्रा प्रदेशों में केवल माँस व लाइकेन प्रमुख वनस्पति के रूप में मिलती है। ग्रीष्मकाल में हिम पिघलने के बाद छोटी-छोटी झाड़ियों, फूल वाले पौधे, बर्च, आल्डर आदि वनस्पति उग आती हैं। शीत ऋतु के आगमन के साथ ही सभी प्रकार की वनस्पति नष्ट हो जाती है ।

जीव-जन्तु - इस प्रदेश में रेन्डियर, ध्रुवीय भालू लोमड़ी, खरगोश आदि समूर वाले जानवर पाये जाते हैं। समुद्री ठण्डे पानी में अनेक प्रकार की मछलियां एवं सागरीय स्तनधारी जीव मिलते हैं। ग्रीष्मकाल में दलदली भूमि पर मच्छर, मक्खियाँ एवं कीट-पतंगे भी पाये जाते हैं।

हिमाच्छादित या आर्कटिक जलवायु

स्थिति - इस जलवायु प्रदेश में अन्टार्कटिका, आइसलैण्ड एवं ग्रीनलैण्ड के आन्तरिक भाग शामिल है। यह पृथ्वी के सर्वाधिक क्षेत्र में पायी जाती है।

तापमान - सूर्यातप की न्यूनतम प्राप्ति के कारण इस प्रदेश का तापमान सदैव 0°C से नीचे रहते हैं। ग्रीनलैण्ड में आईस्मिट नामक स्थान पर गर्म महीने का औसत तापमान -11°C तथा शीतकाल में औसत तापमान 40°C रहता है। अन्टार्कटिका विश्व का सबसे ठण्डा प्रदेश है। यहाँ भयंकर बर्फीले तूफान चलते हैं। वर्षा केवल हिम के रूप में प्राप्त होती है।

प्राकृतिक वनस्पति - अत्यन्त कठोर व शीत जलवायु के कारण यहाँ वनस्पति का अभाव मिलता है। ग्रीष्मकाल में माँस, लाइकेन व काई जहाँ-तहाँ उग आती हैं।

जीव-जन्तु - इस जलवायु प्रदेश में अनेक प्रकार के समुद्री जीव पाये जाते हैं। यहीं सील, हेम तथा वालरस मछलियाँ, पैंग्विन पक्षी, ध्रुवीय भालू आदि जीव मिलते है।

उच्च पर्वतीय जलवायु

स्थिति एवं विस्तार- यह जलवायु पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है, जहाँ ऊँचाई जलवायु को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। रॉकीज, एण्डीज, आल्प्स, हिमालय, एटलस, सुलेमान, त्यानशान, अल्टाई आदि उच्च पर्वतीय भागों में इस जलवायु का विस्तार मिलता है।

जलवायु - ऊँचाई के साथ-साथ तापमान की भिन्नता पायी जाती है। दक्षिणी ढालों पर तापमान अधिक तथा उत्तरी ढालों पर तापमान कम मिलते हैं। दैनिक तापान्तर अधिक पाये जाते हैं। शीतकाल में हिम वर्षा के कारण उच्च भाग सदैव हिमाच्छादित रहते हैं। इस प्रदेश की जलवायु पर सह तल से ऊँचाई के अनुसार वनस्पति में अन्तर मिलता है। तलहटी में चौड़ी पत्ती वाले वन एवं ऊँचे ढालों पर नुकीली पत्ती वाले वन पाये जाते है। कोणधारी वनों के बाद घास मिलती है। तापमान व वर्षा की मात्रा में परिवर्तन के कारण कुछ दूरी पर वनस्पति में अन्तर आ जाता है।

जीव-जन्तु - इस प्रदेश में पर्यावरण समायोजन के अनुरूप जीव-जन्तु पाये जाते हैं। इनके शरीर में घने बाल व समूर पाये जाते हैं। नील गाय, यारू, जंगली भेड़िये आदि प्रमुखता से पाये जाते हैं।

बोध प्रश्न- 4

1. पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु की क्या विशेषता है?

....

....

2. भूमध्य रेखीय जलवायु प्रदेश में किस प्रकार की वनस्पति मिलती है?

....

....

3. स्टैप तुल्य जलवायु की मुख्य क्या विशेषता है?

....

....

4. मानसूनी जलवायु प्रदेश में आने वाले प्रमुख क्षेत्रों के नाम लिखिये।

....

....

5. टैगा जलवायु प्रदेश के जीव जन्तुओं का उल्लेख कीजिये।

....

....

11.4 जलवायु एवं मानव स्वास्थ्य

मानव जहाँ भी निवास करता है जैसे - पर्वत, पठार, मैदान, वनों या मरूस्थलों आदि में, उसे जलवायु के प्रभावों के अनुसार व्यवहार एवं क्रियाऐं करनी पड़ती हैं। भौगोलिक तत्वों में जलवायु सबसे महत्वपूर्ण तत्व है जो मानव की समस्त शारीरिक व मानसिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव डालती है। यहाँ तक कि मनुष्य के भोजन, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य, सामाजिक जीवन एवं संस्कृति पर जलवायु की छाप स्पष्ट नजर आती है।

मानव शरीर कुछ निश्चित जलवायु दशाओं में ही सही ढंग से क्रियाशील हो सकता है। अत्यधिक ऊँचाई पर मानव को ऑक्सीजन की कमी के कारण श्वास लेने में कठिनाई आती है। अत्यधिक उष्ण तथा आर्द्र प्रदेशों में मानव शरीर तथा मस्तिष्क का विकास अवरूद्ध होता है। उष्ण व शुष्क मरूस्थलीय भागों व अत्यधिकतर शीत प्रदेशों में बीजों का अंकुरण नहीं होने से खाद्यान्न उत्पन्न करना असंभव होता है। गर्मी व अधिक आर्द्रता मानवीय ऊर्जा को कम कर देती है जिससे मनुष्य को शीघ्र थकान हो जाती है। अत्यधिक ठण्डी जलवायु भी मानवीय स्वास्थ्य व मानसिक ऊर्जा के लिए हानिकारक होती है। शीत प्रदेशों के लोगों की अधिकांश ऊर्जा जीवन भी नितान्त आवश्यकताओं की पूर्ति में ही खर्च हो जाती है जबकि शीतोष्ण जलवायु के निवासी शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार से परिश्रमी होते हैं तथा स्वस्थ व फुर्तीले होते हैं। यही कारण है कि ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान आदि देशों ने इतनी अधिक उन्नति की है।

जलवायु एवं रोग

- गर्म व आर्द्र जलवायु में कीटाणु अधिक पनपते हैं, जिससे जल जनित रोग अधिक उत्पन्न होते हैं जैसे - मलेरिया, हैजा आदि।
- गर्म व शुष्क जलवायु में अधिक तापमान के कारण मानव की चमड़ी में मेलेनिन का स्राव अधिक होने से चमड़ी का रंग काला हो जाता है।

- शीत जलवायु वाले प्रदेशों में कीटाणु सुषुप्त अवस्था में रहने से व्यक्ति स्वस्थ रहते हैं तथा चमड़ी का रंग पीला या गेहुंआ होता है।
- शीत जलवायु को अस्थमा रोग से जोड़ा जाता है। 1965 में डेरिक ने एक अध्ययन में स्पष्ट किया कि वर्ष में जिस समय तापमान, आर्द्रता एवं वर्षा में गिरावट होती है, उस समय अस्थमा की घटनाओं में वृद्धि होती है।
- शोध में यह देखा गया है कि कुछ रोगों में मौसमी प्रकृति होती है - जैसे स्विटजरलैण्ड में शीतकाल में लोहित ज्वर, पीलिया तथा डिप्थीरिया एवं बसंत में चेचक व इन्फ्लुएन्जा अधिक देखा गया है।
- आर्द्रता भी मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। उष्ण प्रदेशों में अधिक आर्द्रता बेचैनी पैदा करती है तो अत्यन्त कम आर्द्रता भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।

बोध प्रश्न-5

1. मानव की कौन सी क्रियाओं पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है?
   ....
   ....
2. मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से कौन सी जलवायु सर्वोपयुक्त है?
   ....
   ....
3. गर्म व शुष्क प्रदेशों में मनुष्य की चमडी काले रंग की क्यों होती है?
   ....
   ....
4. अस्थमा एवं मलेरिया रोग का संबंध किस जलवायु से है?
   ....
   ....

11.5 सारांश

भौगोलिक स्थिति एवं उच्चावच की असमानताओं के कारण जलवायु दशाओं में भिन्नताऐं पायी जाती हैं। जलवायु तत्वों की समानताओं रख असमानताओं के आधार पर कोपेन एवं थॉर्नथ्वेट ने जलवायु का वर्गीकरण किया है। जहाँ एक ओर कोपेन ने तापमान एवं वर्षा के आधार पर जलवायु सीमाओं का निर्धारण किया है, वहीं दूसरी ओर थॉर्नथ्वेट ने वर्षण प्रभाविता एवं तापीय दक्षता का उपयोग कर जटिल सीमाऐं निर्धारित की हैं। अधिकांश विद्वानों ने जलवायु की सामान्य दशाओं की समानता के आधार पर विश्व को 14 जलवायु प्रदेशों में बांटा है जिनका नामकरण प्रदेश विशेष की भौगोलिक स्थिति के आधार पर किया गया है। प्रत्येक प्रदेश में तापमान, वर्षा, प्राकृतिक वनस्पति रण जीव जन्तुओं में अत्यधिक भिन्नताऐं पायी जाती हैं। जलवायु मानव की समस्त शारीरिक, मानसिक, आर्थिक रख सामाजिक क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। मनुष्य के रहन सहन, भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, शारीरिक बनावट, मानसिक क्षमता आदि पर जलवायु का

स्पष्ट प्रभाव नजर आता है। कुछ रोग जैसे मलेरिया, अस्थमा आदि जलवायु विशेष में उत्पन्न होते हैं। कुछ रोग मौसम परिवर्तन के साथ भी उत्पन्न होते हैं। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जलवायु भौतिक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है जो पर्यावरण के सभी पक्षों एवं घटकों को प्रभावित करता है।

11.6 शब्दावली

मौसम	:	वायुमण्डल की अल्पकालिक अवस्था
जलवायु	:	वायुमण्डल की दीर्घकालिक अवस्था

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गौतम, अल्का	:	वायुमण्डल व महानगर, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 2006
2. डब्ल्यू जी. केन्ड्रयू	:	दी क्लाइमेट ऑफ दी कॉन्टीनेन्ट, आक्सफोर्ड, 1957
3. ई. टी. स्ट्रीन्जर	:	फाउण्डेशन ऑफ क्लाइमेटोलॉजी
4. Lal, D.S.	:	Climatology, Sharda Pustak Bhawan, Allahabad, 2003
5. तिवाड़ी एवं शर्मा	:	जलवायु विज्ञान के मूल तत्व
6. Criteh Field H.J.	:	General Climatology, Prientice Hall, Inc., Englewood, N.J.U.S.S., 2002

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. किसी भी स्थान की वायुमण्डलीय दशाओं के अल्पकालिक योग को मौसम कहते हैं, जबकि दीर्घकालीन मौसमी दशाओं के विवरण को जलवायु कहते हैं।
2. तापमान, वायुदाब, हवाऐं, आर्द्रता, वायुराशियाँ आदि जलवायु के प्रमुख तत्व हैं।

बोध प्रश्न- 2

1. तापमान एवं वर्षा की प्रभावशीलता के आधार पर वनस्पति प्रदेश कोपेन के जलवायु वर्गीकरण का आधार है।
2. 24 जलवायु प्रदेश ।
3. कोपेन ने मौसम के अन्य तत्वों मेघाच्छादन, वर्षा की गहनता, ताप की विषमता, पवनों, वायु राशियों आदि की उपेक्षा की है तथा इनका वर्गीकरण निरीक्षण से प्राप्त आकड़ों पर आधारित है जबकि जलवायु उत्पत्ति कारकों पर विचार नहीं किया गया है।

बोध प्रश्न- 3

1. थॉर्नथ्वेट ने 'मिट्टी पानी बजट' को मूल आधार मानकर वर्षण के साथ -साथ वाष्पन की दर को भी आधार बनाया है।
2. थॉर्नध्वेट ने तापीय दक्षता के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया है -

   T/E Ratio = T - 32 / 4

3. वर्षण प्रभाविता से तात्पर्य सम्पूर्ण वार्षिक वर्षा का वह भाग है जो पौधों, वनस्पति के विकास तथा वृद्धि में प्रभावशाली होता है।
4. कोपेन का वर्गीकरण सैद्धान्तिक, सरल सीमाओं वाला एवं अधिक संकेतों वाला है, वहीं थॉर्नथ्वेट का वर्गीकरण तापीय दक्षता, वर्षण दक्षता जैसी जटिल सीमाओं एवं कम संकेताक्षरों वाला है।

बोध प्रश्न- 4

1. प. यूरोपीय जलवायु में पछुआ पवनों एवं सागरीय धाराओं के प्रभाव के कारण कम तापान्तर, शीतकाल सामान्य ठण्डा, ग्रीष्मकाल साधारण, वर्ष भर पर्याप्त वर्षा आदि प्रमुख विशेषताएँ हैं।
2. चौड़ी पत्ती वाली सदाबहार सघन वनस्पति।
3. महाद्वीपों के आन्तरिक भाग में स्थित होने के कारण ग्रीष्म-ऋतु साधारण गर्म, शीत ऋतु, कठोर, दैनिक तापान्तर अधिक एवं घास के मैदानों का विस्तार पाया जाता है।
4. द.पू. एशिया में भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, म्यानमार, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, लाओस, उ. व. द. वियतनाम, द. पू. संयुक्त राज्य अमेरिका, अफ्रीका का पूर्वी तटीय भाग, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया आदि शामिल हैं।
5. टैगा प्रदेश में फर वाले जन्तु जैसे - रैण्डियर, बारहसिंगा, फिशर, हिरण, वीपर, वीजल, लोमड़ी, आदि जीव जन्तु प्रमुखता से मिलते हैं।

बोध प्रश्न - 5

1. मानव की समस्त शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाओं पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है।
2. शीतोष्ण जलवायु
3. चमड़ी में मेलेनिन के स्राव के कारण।
4. अस्थमा का सम्बन्ध शीत जलवायु से रख मलेरिया रोग का सम्बन्ध गर्म व आर्द्र जलवायु से किया जाता है।

11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कोपेन द्वारा प्रतिपादित विश्व जलवायु वर्गीकरण का वर्णन कीजिये।
2. थॉर्नथ्वेट द्वारा सुझाये गये जलवायु वर्गीकरण की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
3. सवाना तुल्य एवं मानसूनी जलवायु प्रदेशों कीं प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
4. भूमध्यसागरीय एवं टैगा तुल्य जलवायु प्रदेशों का तुलनात्मक विवेचन कीजिये।
5. जलवायु एवं मानव स्वास्थ्य पर एक लेख लिखिये।

इकाई - 12 : जल मण्डल

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 सागर विज्ञान
  12.2.1 सागर विज्ञान की परिभाषा
  12.2.2 विषय क्षेत्र रख प्रकृति
  12.2.3 सागर विज्ञान का महत्व
12.3 जलीय चक्र
12.4 महासागरीय नितल
12.5 हिन्द महासागर का नितल
  12.5.1 महाद्वीपीय निमग्न तट
  12.5.2 महाद्वीपीय निमग्न ढाल
  12.5.3 महासागरीय गर्त
  12.5.4 मध्यवर्ती कटक
  12.5.5 महासागरीय बेसिन
  12.5.6 हिन्द महासागर के द्वीप
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप समझ सकेंगे :

- सागर विज्ञान की परिभाषा, महत्व, विषय क्षेत्र एवं इसकी प्रकृति,
- जलीय चक्र
- महासागरीय नितल (परिकल्पित)
- हिन्द महासागर नितल का विस्तृत अध्ययन।

12.1 प्रस्तावना

पृथ्वी तल का 3/4 भाग जलमण्डल से घिरा हुआ है, जिसका भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन करना विशेष महत्वपूर्ण रख आवश्यक है। समुद्रविज्ञान भौतिक भूगोल की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण जलमण्डल का अध्ययन किया जाता है। जलमण्डल में संसाधनों का विपुल भण्डार है, जिनमें अनेक प्रकार के जैविक एव अजैविक संसाधन मिलते हैं।

12.2 सागर विज्ञान

12.2.1 सागर विज्ञान की परिभाषा

समुद्र विज्ञान के अन्तर्गत महासागरों की भौतिक - रासायनिक विशेषताएँ, तापमान, लवणता, लहरें, ज्वारभाटा, महासागरीय नितल, महासागरीय निक्षेप रख इसके अन्तर्गत पाए जाने वाले संसाधनों का अध्ययन किया जाता है। सुनामी के प्रभाव का विश्लेषण भी महासागरों के अध्ययन में आवश्यक है।

मारमर एस. ए. के अनुसार - "समुद्र विज्ञान, सागरों का विज्ञान है जिसमें समुद्री बेसिनों के आकार एवं प्रकृति, बेसिनों के जल की विशेषताओं एवं ऐसी शक्तियाँ जो जल की गतियों से सम्बन्धित हैं, का अध्ययन मुख्य रूप से सम्मिलित किया जाता है।"

प्राउडमैन (Proudman) के अनुसार - "समुद्र विज्ञान महासागरीय जल के भौतिक गुणधर्मों के सन्दर्भ में गतिकी तथा उष्मागति की के मूलभूत सिद्धान्तों का अध्ययन करता है।"

फ्रीमैन (Freeman) डब्ल्यू के अनुसार - "मौसम विज्ञान की भाँति समुद्र विज्ञान भी भौगोलिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न विज्ञान है। यह जलमण्डल से सम्बन्धित है जो पृथ्वी का अत्यन्त गतिशील भाग है।

स्वर्ड्रूप जॉन्सन तथा फ्लेमिंग (H. V. Sverdrup, M.W. Johnson and R.H. Fleming) के अनुसार"समुद्र विज्ञान समुद्र से सम्बन्धित सभी पक्षों का अध्ययन करता है। इसके साथ ही यह सागरीय विज्ञानों (Marine Science) जो महासागरीय सीमाओं तथा उनके नितल के उच्चावच सागरीय जन्म की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं, धाराओं तथा सागरीय जीव विज्ञान का अध्ययन करता है।

अत: सागर विज्ञान, पृथ्वी के धरातल के उस 70.8 प्रतिशत जलावृत भाग जिसे जलमण्डल (Hydrosphere) कहते हैं, का अध्ययन करने वाला विज्ञान है जिसके अन्तर्गत जलमण्डल के भौतिक एवं जैविक पक्षों तथा उनकी जटिलताओं का अध्ययन और व्याख्या समाहित है। इन्हीं जटिलताओं का अध्ययन करने के क्रम में सागर विज्ञान अन्तर्विषयक (Inter-disciplinary) विज्ञान के रूप में जाना जाता है।

12.2.2 सागर विज्ञान का विषय क्षेत्र एवं प्रकृति

सागर विज्ञान की प्रकृति विभिन्न प्रकार की घटनाओं एवं द्रुतगामी सामुद्रिक परिवहन का विकास होने से अत्यधिक प्रभावित हुई है । मानव अपने विकास के लिए समुद्र का विभिन्न रूपों में उपयोग करता है, ऐसी स्थिति में भूमण्डलीयकरण के प्रभाव एवं आर्थिक, तकनीकी विकास का इसके ऊपर प्रभाव पड़ा है । धरातल पर जल का अधिक विस्तार होने के कारण इसे कई वैज्ञानिक जलीय ग्रह (Water Planet) कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। गतिशीलता जलमण्डल की विशेषता है। महासागरीय विज्ञान या समुद्र विज्ञान के अन्तर्गत महासागरों एवं सागरों की भौतिक एवं रसायनिक अवस्था, वहाँ के जैवजगत के विकास की विविधता का बहुआयामी स्वरूप, जल के घुलनशील व अघुलनशील तत्व एवं उनके जमाव, महासागरीय नितल एव यहाँ की त्रिस्तरीय गतियों का सकारण अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार समुद्र विज्ञान के जल संसाधनों के सभी संबंधित पहलुओं की विस्तृत एवं सकारण व्याख्या अपेक्षित है।

महासागरों का विविध प्रकार से महत्व चौदहवीं सदी के पश्चात् तेजी से बढ़ने लगा। उस काल से ही मानव की उत्कण्ठा विश्व के सुदूर किन्तु अज्ञात अथवा सम्भावित क्षेत्रों की खोज हेतु समुद्री मार्गो का उपयोग में लाने के प्रति बढ़ी। महासागरों का उपयोग सैनिक एवं असैनिक दोनों ही कार्यो के लिए प्रारम्भ से ही होता रहा है। अरब सागर एवं भूमध्यसागर हजारों वर्षो से व्यापार के विकास के मूर्त भागीदार बने रहे। कोलम्बस, वास्कोडिगामा, प्रिंस हेनरी, मेगलन, केलटलॉज, कमान कुक जैसे महान नाविकों ने अपना जीवन संकट में डालकर भी महासागरों के अज्ञात भागों की यात्रा की रण विश्व यातायात प्रणाली के विकास में महासागरों के महत्व को प्रतिस्थापित किया। महासागरों द्वारा व्यापार सुगम माना गया एवं तेजी से इस पर निर्भरता बढ़ती गयी।
उपरोक्त तथ्य को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है -
सागर विज्ञान

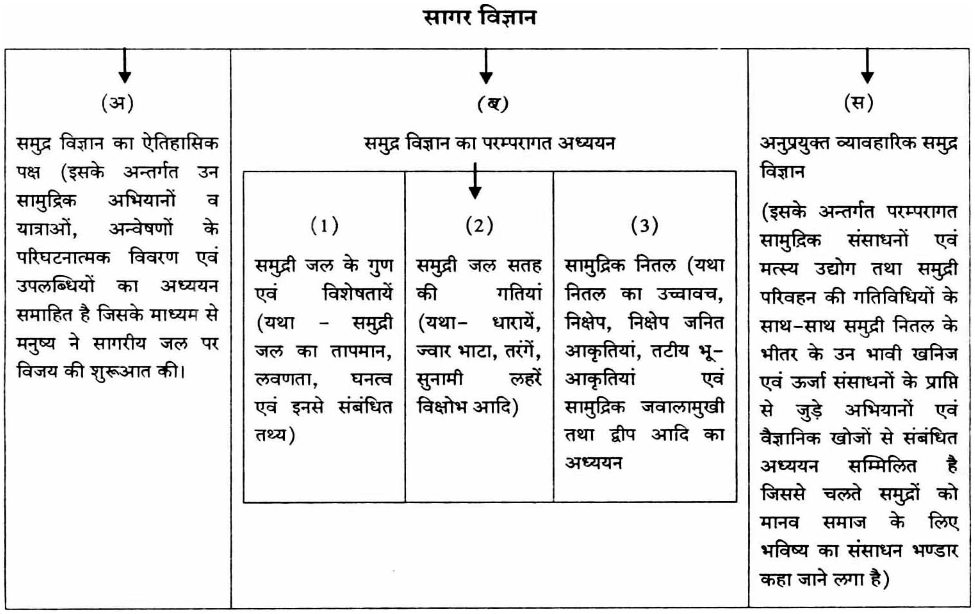

12.2.3 सागर विज्ञान का महत्व (Importance of Oceanography)

वैज्ञानिकों के अनुसार महासागरों में सभी प्रकार के खनिजों को प्राप्त किया जा सकता है। कम्प्यूटर तथा कृत्रिम उपग्रहों के प्रयोग ने समुद्र विज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। सम्पूर्ण ग्लोब के 70.8 प्रतिशत पर महासागर फैले हुए हैं। इनकी औसत गहराई 3800 मीटर है। ऐसा अनुमान है कि सभी महासागरों एवं संलग्न सागरों में जल का कुल आयतन 1.37×10^9 घन किलोमीटर है। इस कारण इस विशाल जलराशि का मानव जीवन के लिए अनेक रूपों में महत्व है क्योंकि महासागर स्वयं संसाधन है। इनमें मछलियाँ, घोंघे, अनेक खाद्य पदार्थ, विभिन्न वनस्पतियां, विशालकाय जीव आदि हैं। महासागरों की तली से अनेक प्रकार के खनिज विशेष रूप से खनिज तेल, प्राकृतिक गैस आदि प्राप्त होता है। महासागरों की गतिज शक्ति से (ज्वारभाटा, ज्वारीय लहर, गतिशील तेज धाराऐं) के द्वारा विद्युत उत्पादन किया जाने लगा है। महासागर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व व्यापार महासगरों के समुचित वितरण एवं विश्व यातायात एवं संचार व्यवस्था में सबल सहयोगी प्रमाणित हो रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक देश की महासागरीय सीमा उपयुक्त तट से 20 कि.मी. तक है जबकि उसका महासागरों के संसाधनों का विदोहन करने का अधिकार उपयुक्त तट से 200 कि.मी. तक की दूरी पर माना गया है। इसके महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझाया गया है -

(i) **महासागर एवं खाद्य सामग्री :** आज विश्व की जनसंख्या 6.30 अरब से अधिक हो गई है। इस कारण प्रमुख रूप से विकासशील देशों के अन्तर्गत खाद्यान्न की समस्या बढ़ती जा रही है, ऐसी स्थिति में कृषि उत्पादों के बाद मानव के लिए दूसरा सबसे बड़ा भोजन का स्रोत समुद्र में पाई जाने वाली मछलियां व अन्य समुद्री जीव हैं, जिन्हें समुद्री भोजन (See, Food) के लिए बड़े पैमाने पर पकड़ा जाता है। आदिम ढंग से मत्स्य आखेट मानव आदिकाल से करता आया है। अनेक देश वाणिज्यिक स्तर पर मछली पकड़ने का कार्य करते हैं। जापान, आइसलैण्ड, कोरिया, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, नॉर्वे, कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन आदि मछली पकड़ने वाले प्रमुख देश हैं। यूरोप में ऑइस्टर, ईल, मुलैट आदि, जापान में श्रिम्प व संयुक्त राज्य अमेरिका में ऑइस्टर के पालन पर विशेष बल दिया जा रहा है।

(ii) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार :** परिवहन लागत कम होने से आज विकसित और विकासशील देशों के बीच में सामुद्रिक मार्गो के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तीव्र गति से हो रहा है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजों ने पनामा एवं स्वेज नहर का निर्माण करवाया था। सामुद्रिक परिवहन मार्गो की क्षमता एवं विशेषता के अनुसार उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सामुद्रिक मार्गो के रूप में विकसित किया, जिससे जापान रख यूरोपीय देशों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से सीधे व्यापार किया जाता है। इन्हीं मार्गो के कारण दक्षिणी पूर्वी एशिया अपने यहां से बागाती फसल उत्पाद का विकसित देशों के साथ व्यापार करते हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के साथ-साथ सामरिक दृष्टि से भी महासागरों का विशेष महत्व है।

(iii) **महासागर एवं खनिज संसाधन :** औद्योगिक क्रान्ति एवं तकनीकी विकास के कारण खनिजों के अत्यधिक दोहन के कारण स्थल पर विभिन्न खनिजों के भण्डार समाप्त होते जा रहे हैं। समुद्रों में खनिजों के अकूत भण्डार पाए गए हैं। समुद्र में पाए जाने वाले खनिज पदार्थ निलम्बित या विलयन के रूप में पाए जाते हैं। पृथ्वी तल पर पाए जाने वाले लगभग सभी तत्व समुद्री जल में भी पाए जाते हैं।

(अ) जल में घुले हुए खनिज - सागरीय जल में नमक, मैगनीशियम, क्लोरीन, पोटेशियम, आयोडीन, ब्रोमीन आदि विभिन्न प्रकार के खनिज घुले रहते हैं। प्रतिवर्ष सागरीय जल से बड़ी मात्रा में नमक तैयार किया जाता है। कुछ मात्रा में जिंक, तांबा, शीशा, चांदी आदि के संकेन्द्रित कण भी पाए जाते हैं।

(ब) असंघठित खनिज - इस प्रकार के खनिज समुद्रों की गहराई के अनुसार वितरित पाए जाते हैं। इसमें बालू बजरी, चूना, सिलिका, आर्गोनाइट, ग्लूकोनाइट, मैग्रेटाइट, रूटाइल, मोनोजाइट, जिरकॉन, क्रोमाइट, कैसीराइट, हीरा, प्लैटिनम, सोना, तांबा, फॉस्फोराइट, फेरामेंग्नीज ऑक्साइड, धातुमय पंक, तांबा 300 मीटर तक की गहराई में पाये जाते हैं। कोबाल्ट, निकिल, तांबा, लाल पंक, कैल्शियम, एव विभिन्न प्रकार के पंक, 4000 से 6000 मीटर तक की गहराई तक सागरों -महासागरों के अन्तर्गत पाए जाते हैं। महासागरीय तलों पर लोहे-मैगनीशियम की ग्रन्थिकाएं भी पाई जाती हैं। यहां तक कि

अकेले प्रशांत महासागर में 10,000 करोड़ टन से अधिक मैग्नीशियम की ग्रन्थिकाएं पाई जाती हैं।

(iv) **शक्ति के स्त्रोत-**विश्व के उर्जा संकट का समाधान महासागरों में है। आज विश्व का लगभग 40 प्रतिशत खनिज तेल महासागरीय तली से मिलता है। खनिज तेल उत्तरी सागर, फारस की खाड़ी, मैक्सिको की खाड़ी, कैलिफोर्निया तट, ऑस्ट्रेलिया तट, बॉम्बे हाई आदि अपतटीय समुद्रों से निकाला जाता है। महाद्वीपीय निमग्न तट पर पाई जाने वाली तेलयुक्त अवसादी शैलों (Combusible shate) में अनुमानत: 40,000 करोड़ बैरल निकाले जाने योग्य खनिज तेल उपलब्ध है। महासागरों में खनिज तेल के साथ ही प्राकृतिक गैस के भी विशाल भण्डार हैं। अनेक समुद्री क्षेत्रों में कोयले के भण्डार भी पाए जाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन के पूर्व में उत्तरी सागर की तली में कोयले के बड़े भण्डार पाए गए हैं।

(v) ऊर्जा के परम्परागत श्रोतों के अलावा गैर परम्परागत या विभव ऊर्जा (Potential Energy) के भी स्त्रोत हैं, जिसमें ज्वारीय उर्जा तथा भूतापीय ऊर्जा उल्लेखनीय है। महासागरीय जल के नियमित रूप से ऊपर उठने व नीचे गिरने से संयंत्र, लगाकर ऊर्जा प्राप्त की जाती है। फ्रांस में रेन्स नदी की एस्चुरी पर प्रथम ज्वारीय संयंत्र स्थापित किया गया, जिसकी विद्युत उत्पादन क्षमता 204 लाख किलोवाट है। रूस, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, फ्रांस आदि देशों के तटवर्ती भागों में ज्वारीय संयंत्र स्थापित किए जा रहे हैं। महासागरों के तटीय भागों में भूतापीय उर्जा का भी पर्याप्त सम्भावनाऐं हैं।

(vi) **महासागर एवं जलवायु -** स्थल की अपेक्षा जल की विशिष्ट उष्मा (Specific heat) अधिक होने के कारण स्थल की अपेक्षा जल देर में गर्म और शीतल होता है। अत: समुद्रों के निकटवर्ती क्षेत्रों की जलवायु सम (Moderate) बनी रहती है।

(vii) **महासागरीय वनस्पति एवं जीव -** महासागरों में कई प्रकार के जीव तथा वनस्पतियां पाई जाती है। इसमें पादप प्लवक (Phytoplankton) तथा प्राणिप्लवक (Zoo Plankton) अतिसूक्ष्म होते हुए भी अन्य महासागरीय जीवों की उत्पत्ति एव विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महासागर की सतह पर पड़ने वाले सूर्य ताप की सहायता से ये प्लवक समुद्री जल में घुले हुए रासायनिक तत्वों से जीवों की उत्पति करने में सहायक होते हैं।

(viii) **पेयजल के स्त्रोत -** बढ़ती जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं में पेयजल प्रमुख है। विश्व के विभिन्न भागों में गहराते पेयजल संकट का समाधान महासागरीय जल हैं यद्यपि अत्यधिक खारा होने के कारण महासागरों के जल का उपयोग अब तक पेयजल हेतु अधिक नहीं हो पाया है, किन्तु अब वैज्ञानिक तरीकों से समुद्रों के पानी से खारापन निकालकर पानी को शुद्ध किया जा रहा हैं, सोलर, स्टिल्स रिवर्स औस्मोसिस और इलेक्ट्रोडाइलेसिस आदि तकनीकों से सागरीय जल को पेयजल के रूप में बदला जा रहा है। विभिन्न देशों में समुद्रतटों पर विलवणीकरण संयंत्र (Desalinization Plant) स्थापित किए गए हैं, जिनमें उद्योगों व नगरों में पेयजल की आपूर्ति हो रही है। गुजरात में भावनगर में भी एक विशाल विलवणीकरण संयंत्र स्थापित किया गया है।

बोध प्रश्न- 1

1. सागर विज्ञान किसे कहते हैं?

   ....

   ....

2. पृथ्वी के धरातल का कितना प्रतिशत जलावृत है?

   ....

   ....

3. कई वैज्ञानिक इसे जलीय ग्रह () करना क्यों उपयुक्त समझते हैं?

   ....

   ....

4. महासागरों का विविध प्रकार का महत्व कौनसी सदी के पश्चात् तेजी से बढ़ने लगा?

   ....

   ....

5. अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक देश का महासागरों के संसाधनों का विदोहन करने का अधिकार तट से कितने किलोमीटर छू तक माना गया है?

   ....

   ....

6. कौनसे देश की नदी पर प्रथम ज्वारीय संयंत्र स्थापित किया गया?

   ....

   ....

12.3 जलीय चक्र

विश्वस्तरीय जलीय चक्र की क्रियाविधि में सर्वप्रथम समुद्री जल सूर्यताप द्वारा गर्म होता है जिससे समुद्री जल का कुछ भाग वाष्पीकृत होता है जिससे वायुमण्डलीय आर्द्रता का निर्माण होता है। यह जलवाष्प पवनों द्वारा महासागरों एवं महाद्वीपों के ऊपर ले जायी जाती है। तत्पश्चात् ऊपर उठती हवाओं के कारण वायु में संरक्षित नमी का संघनन हो जाता हैं तथा वर्षण (Precipitation) प्रारम्भ हो जाता है। भूतल पर सम्पन्न इस वर्षण के कई रूप एवं अवस्थायें होती हैं - (1) कुछ वर्षा सीधे नदियों, झीलों तथा स्थल स्थित अन्य जल भण्डारों में होती हैं जिसे प्रत्यक्ष वर्षा अथवा सीधा वर्षण (Direct Fall) कहते हैं। वर्षा के इस जल का नदियों के माध्यम से सीधे सागरों में विलय हो जाता है। (2) जल वर्षा का कुछ भाग वनस्पतियों विशेषकर वनों के शीर्ष (ऊपरी भाग) द्वारा अन्तरारोपित (Intercepted) हो जाता है यद्यपि इस अन्तरारोपित जल के कुछ भाग का वाष्पीकरण हो जाता है तथा शेष भाग वृक्षों की शाखाओं एवं वनों से होकर तना प्रवाह (Stem Flow) या हवाई सरिता (Aerial Streamlets) के रूप में जमीन में पहुँचता है, (3)

जल वर्षा का कुछ हिस्सा विरल वनस्पति या वनस्पति विहीन क्षेत्रों में सीधे जमीन में पहुंचता है। जल वर्षा का कुछ भाग वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन (Evapo-Transpiration) होने से खर्च हो जाता है तथा कुछ जल का नदियों, तालाबों, झीलों आदि से वाष्पीकरण के माध्यम से क्षय हो जाता है।

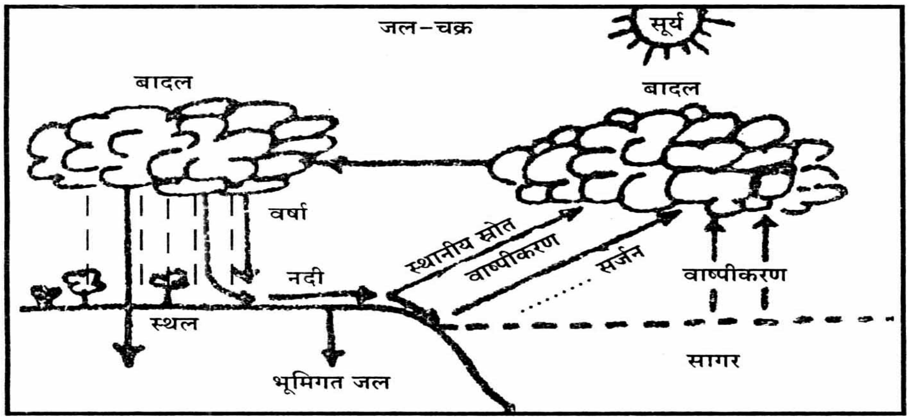

चित्र-12.1:

भूतल पर होने वाली जल-वर्षा का एक बड़ा भाग प्रभावी स्थल प्रवाह (Effective Overland) का रूप धारण कर लेता है। भू-सतह पर फैलकर बहने वाले जल को वाही-जल या बहता हुआ जल (Run off) के नाम से जाना जाता है। यह भू-सतह के निचले हिस्से अर्थात् नदियों में समाहित हो जाता है। वर्षा के जल के कुछ भाग का भू-सतह के नीचे अंत: संचरण (Infilteration) हो जाता है जो मृदा शैलों में भण्डारित होता है। इसे मृदा जल भण्डार करते हैं। इस भण्डार से कुछ जल का वाष्पीकरण द्वारा एवं कुछ जल का पौधों के माध्यम से वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमण्डल में नष्ट हो जाता है। यद्यपि कुछ जल झरनों (Springs) के रूप में पुन: सतह पर आ जाता है, जबकि मृदा जल भण्डार का कुछ जल नीचे की तरफ अन्त: संचरित होकर भूमिगत जल भण्डार का रूप ले लेता है। इस भूमिगत जल भण्डार से कुछ जल आधार-प्रवाह (Base Flow) के रूप में नदियों में पहुंच जाता है, जबकि कुछ जल कोशिका - क्रिया द्वारा ऊपर उठता है तथा मृदा - जल भण्डार में मिल जाता है तथा शेष जल और भी नीचे छनते हुए गहराई में स्थित आधार - शैलों (Bed rocks) में अवरूद्ध हो जाता है ।

भूमण्डलीय (विश्वस्तरीय) जल -चक्र के घटक एवं जल का अनुपात

घटक	**जल की मात्रा (प्रतिशत में)**
समुद्र	97.200
स्थलीय जल	0.017
हिम सरियायें	2.150
भूमिगत जल	0.620
मृदा की आर्द्रता	0.005
वायुमंडलीय आर्द्रता	0.001
अन्य	0.007
कुल	**100.00**

इस प्रकार समुद्री एवं स्थलीय भागों से जल की जितनी मात्रा वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमण्डल को जाती है उतनी मात्रा वर्षण द्वारा द्रव अथवा हिम को रूप में धरातल से होते हुए समुद्र को वापस प्राप्त हो जाती है। जलीय प्रणाली में संचरित होने वाला यह जल धरातल और महासागरों को अनवरत प्राप्त होता रहता है जिससे धरातलीय, महासागरीय एवं वायुमण्डलीय जल में परस्पर संतुलन बना रहता है।

जलीय चक्र एवं मानवीय हस्तक्षेप

वर्तमान समय में, मानव के कतिपय कार्यो द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर जलीय -चक्र में जो व्यवधान उत्पन्न हो रहे हैं, वे निम्नवत हैं -

1. ओजोन के स्तर में ह्रास, वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन आदि द्वारा स्थलों एवं महासागरों के ऊपर जलवाष्प के गमन रख स्थानान्तरण में परिवर्तन हो रहा है।
2. मानव द्वारा निर्मित कल-कारखानों से अधिकाधिक मात्रा में ठोस-कणों का वायुमण्डल में विसर्जन होता है। ये ठोस-कण वर्षा की बूंदों के निर्माण के लिए 'आर्द्रताग्राही नाभिक' का कार्य करते हैं। इस तरह वायुमण्डल में ठोस-कण-प्रदूषण (Particulate Pollution) द्वारा बादलों का निर्माण तथा वर्षा की प्रकृति एवं मात्रा प्रभावित होती है।
3. वन विनाश, नगरीकरण आदि क्रियाओं से वाष्पीकरण में ह्रास हुआ है जबकि बांधों एवं जल भण्डारों के निर्माण, वृक्षारोपण एवं फसल की सिंचाई आदि द्वारा वाष्पीकरण में वृद्धि होती है।
4. वनों के विनाश के कारण जलीय चक्र प्रभावित हुआ है। नगरीय केन्द्रों के विकास के चलते भी अन्त: संचरण प्रभावित हुआ, जिससे अनेक भागों के भूमिगत जल-तल में विगत कुछ वर्षो में उल्लेखनीय गिरावट देखने को मिल रही है।

बोध प्रश्न-2

1. मृदा जल भण्डार किसे कहते हैं?

   ....

   ....
2. भूमण्डलीय जलचक्र के कौन -कौन से घटक हैं?

   ....

   ....
3. भूमण्डलीय जलचक्र घटकों में सर्वाधिक जल का अनुपात कौन-से घटक में मिलता है?

   ....

   ....

12.4 महासागरीय नितल (Ocean Floor)

महासागरीय तली के विन्यास तथा उच्चावच लक्षणों से अभिप्राय महासागरों में जल के महासागर भी महाद्वीपों की भांति प्रथम श्रेणी के उच्चावच हैं। जिस प्रकार महाद्वीपों पर पर्वत, पठार, मैदान, आदि के रूप में धरातलीय विषमता दिखायी देती है, ठीक इसी प्रकार महासागरीय तली पर भी पर्वत, पठार, मैदान, घाटियाँ, गर्त आदि पाये जाते हैं।

सम्पूर्ण भूतल का क्षेत्रफल 50 करोड़ 99 लाख 50 हजार (50,99,50,000) वर्ग कि.मी. है। इसका 70.8 प्रतिशत अर्थात् 36 करोड़ 10 लाख 50 हजार वर्ग किलोमीटर में महासगरों या जल क्षेत्र का विस्तार है। जलमण्डल का लगभग सारा ही भाग चार महासागरों एवं संलग्र सागरों में आता है। यह निम्न प्रकार से है।

क्र. सं.	**महासागर**	**क्षेत्रफल (लाख वर्ग किमी)**	**औसत गहराई (मीटर)**
1.	प्रशान्त महासागर	1655	5000
2.	अन्ध या अटलांटिक महासागर	821	3920
3.	हिन्द महासागर	736	4000
4.	आर्कटिक महासागर	140	1280

महासागरों की खुली का माप व उनकी गहराई जहाजों के पैदे में लगे विशेष यंत्रों से प्राप्त ध्वनि तरंगों के द्वारा मालूम की जाती हैं

चित्र में महासागरों की गहराई एवं स्थल की ऊंचाई उच्चतादर्शी वक्र द्वारा प्रदर्शित की गई है।

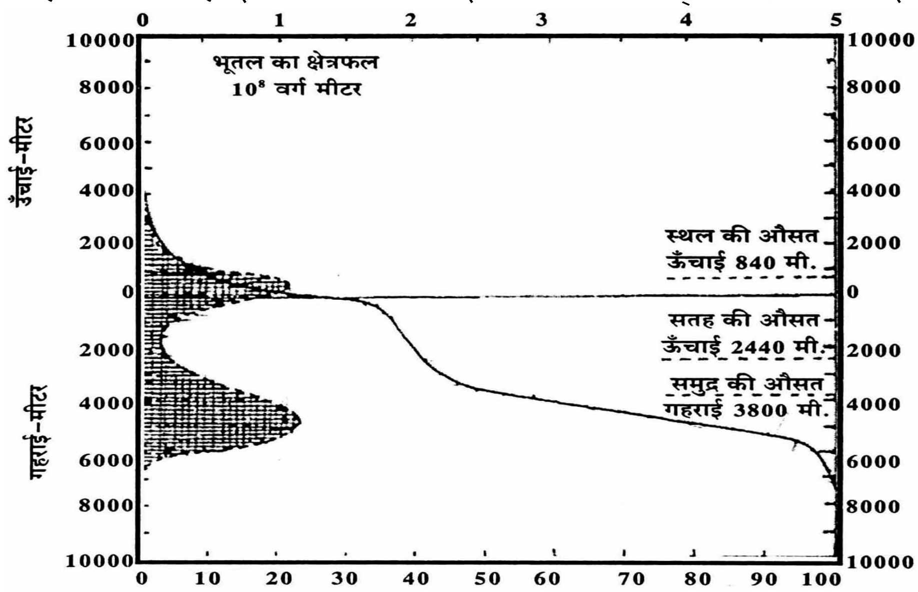

चित्र - 12.2 : उच्चतादर्शी चक्र (Hypsographic Curve)

समुद्री पैंदे से ऊपर उठी हुई लगातार पर्वत श्रेणी कटक (Ridge) कहलाती है। आयताकार उठा हुआ भाग उभार (Rise) और चपटा उभार पठार कहलाता है। समुद्री पैंदे पर फैली हुई वक्राकार पहाड़ियों को चाप (Arc) कहते हैं। गहरे लम्बे गड्ढे को ट्रैंच और दीर्घ वृत्ताकार गड्ढे को द्रोणी (Basin) कहा जाता है। समुद्री हल्के ढालों पर संकरी नालियाँ सी पाई जाती हैं जिन्हें सामुद्रिक

कन्दराएं (Submarine Canyons) कहलाती हैं। समुद्र में पायी जाने वाली वे पहाड़ियां जो बड़ी हों, अलग-थलग हो, तो उन्हें समुद्र की "उठान" कहते हैं। "सी माउन्ट और निमग्र द्वीप" पानी के नीचे डूबी चोटियां होती है जो कि समुद्र के तली से प्रारम्भ होती हैं, किन्तु पानी से ऊपर नहीं पहुँचती। जिन निमग्र द्वीपों की ज्वालामुखी चोटियां चपटी होती हैं, वे "ग्योट" कहलतो हैं। महासागरीय आकृतियों को निम्न उच्चावच मण्डलों में विभक्त किया जा सकता है।

1. महाद्वीपीय निमग्र तट (Continental Shelf)
2. महाद्वीपीय निमग्र ढाल (Continental Slope)
3. गहरे समुद्री मैदान (Deep Sea Plain)
4. महासागरीय गर्त (ocean Deeps or Trenches)

1. **महाद्वीपीय निमग्र तट (Continental Shelf) :** यह भाग सागर तल से 100 फैदम की गहराई तक पाया जाता है। इसका विस्तार भिन्न-भिन्न पाया जाता है। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तटों पर प्रशान्त महासागर से सटा हुआ महाद्वीपीय निमग्र स्थल केवल 16 किमी. ही चौड़ा है, जबकि उत्तरी अमेरिका के उत्तरी पूर्वी भाग पर यह 360 किमी., साइबेरिया के आर्कटिक तट पर 1350 किमी., गुजरात में 100 किमी., आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तट पर 5 कि मी. तक चौड़ा है। महाद्वीपीय निमग्र तट का क्षेत्रफल करीब 1.75 करोड़ वर्ग कि. मी. माना जाता है जो पूरे समुद्री क्षेत्रफल का केवल 8 प्रतिशत के लगभग है। अटलाण्टिक महासागर में सम्पूर्ण जलीय क्षेत्र का 13.3 प्रतिशत, प्रशान्त महासागर में 5.7 प्रतिशत और हिन्द महासागर में 4.2 प्रतिशत भाग पर ही महाद्वीपीय निमग्न तट का विस्तार है। औसत रूप से इसकी चौड़ाई 72 कि मी. मानी जाती है। महाद्वीपीय निमग्न तट की ये विशेषताएं हैं कि यह प्रारम्भ में स्थल का भाग रहा है तथा छिछला होता है। इसमें प्लैंकटन, मछलियाँ आदि यहाँ खूब पनप जाती हैं। इनका ढाल बहुत धीमा होता है अर्थात् औसतन एक किलोमीटर में 2 मीटर होता है।
2. **महाद्वीपीय निमग्र ढाल (Continental Slope) :** महाद्वीपीय निमग्र तट की समाप्ति एवं गहरे सागरीय मैदान के मध्य स्थित तीव्र ढाल को महाद्वीपीय ढाल कहा जाता है। इसकी गहराई 100 फैदम से 1700 फैदम तक होती है। इसका ढाल 35 से 61 मीटर प्रति किलोमीटर होता है। पहाड़ी तटों पर महाद्वीपीय ढाल अधिक और तटीय मैदानों के पास कम होता है। कालीकट तट के पास महाद्वीपीय ढाल 5^o से 15^o तक देखा गया है। जबकि औसत महाद्वीपीय ढाल $4^o17'$ होता है। सेंट हैलेना द्वीप के पास महाद्वीपीय ढाल 40° और सेंट पॉल के निकट ढाल 62° तक पाया जाता है। महाद्वीपीय ढाल का कुल क्षेत्रफल 5 करोड़ वर्ग कि मी. है। समस्त सागरीय क्षेत्रफल के केवल 85 प्रतिशत भाग पर ही निमग्र ढाल पाये जाते हैं। हिन्द महासागर में 6.5 प्रतिशत, अटलाण्टिक महासागर में 12.4 प्रतिशत एवं प्रशान्त महासागर में 7 प्रतिशत पर निमग्न ढाल पाये जाते है।
3. **गहरे सागरीय मैदान (Deep Sea Plain) :** यह महासागरीय नितल का सबसे अधिक क्षेत्रफल वाला भाग होता है जिसकी गहराई 3000 मीटर से 6000 मीटर के मध्य पाई जाती है। महाद्वीपीय ढाल के आगे अगाध समुद्री मैदान पाए जाते हैं। जिनका क्षेत्रफल सम्पूर्ण समुद्री क्षेत्र का करीब 75 प्रतिशत है। अटलांटिक महासागर में 54.9 प्रतिशत

भाग पर इनका विस्तार है तो हिन्द महासागर में यह प्रतिशत 80 एवं प्रशान्त महासागर में 80.3 है। समुद्री जल के भीतर ये मैदान अत्यन्त विस्तृत होते हैं तथा कहीं-कहीं इन पर कटक मिलते है। गहरे सागरीय मैदानों पर समुद्री जीवों, वनस्पतियों एवं क्षारीय पदार्थों के जमाव मिलते हैं।

गहरे समुद्री मैदान में पटल विरूपणी एवं ज्वालामुखी भूकम्प की क्रियायें सक्रिय रहती हैं जिसके द्वारा मैदानों के नितल पर विभिन्न स्थालाकृतियों का उद्भव हुआ है। इन गहरे समुद्री मैदानों पर महासागरीय कटक, सीमाउन्टस, खाइयां आदि पायी जाती हैं।

4. **महासागरीय गर्त (Oceanic Deeps Trenches) :** महासागरीय नितल पर विभिन्न प्रक्रियाओं से सृजित सर्वाधिक गहरे भाग को महासागरीय गर्त कहा जाता है जो सम्पूर्ण सागरीय नितल के 7 प्रतिशत भाग पर फैले हुए हैं। महाद्वीपों पर विस्तृत पर्वतीय श्रृंखलाओं एवं सागर में स्थित द्वीपों के तटीय क्षेत्रों के निकट महासागरीय गर्तो की स्थिति होती है जिनके ढाल अत्यन्त तीव्र होते हैं। आकारीय विषमता के आधार पर इन गर्तो को दो वर्गो - (1) महासागरीय द्रोणी तथा (2) महासागरीय खाई में विभाजित किया जाता है। जो गर्त गहरे हैं उन्हें महासागरीय गर्त कहते हैं। इसके विपरीत जो गर्त लम्बे, संकरे, अत्यन्त गहरे एवं चापाकर होते हैं, उनको महासागरीय द्रोणी कहा (Oceanic Trenches) कहा जाता है। महासागरीय गर्तो की सबसे अधिक संख्या प्रशान्त महासागर (57 गर्त) में है जबकि अटलाण्टिक महासागर में 19 गर्त हैं। सबसे कम महासागरीय गर्तो की संख्या हिन्द महासागर (6 गर्त) में है। विश्व का सबसे गहरा गर्त चैलेन्जर (मैरियाना) गर्त है जो प्रशान्त महासागर में फिलीपीन्स के निकट स्थित है। सुण्डा (7,450 मी.) पूर्वी हिन्द महासागर, रोमेश (1,631 मी.) दक्षिणी अटलाण्टिक महासागर, क्यूराइल (10,498 मी.), सखालिन, पोर्टोरिको (8,385 मी.) प. दीप समूह, स्वायर (10,475 मी.) उत्तरी-पश्चिमी प्रशान्त महासागर, टोंगा (10,882 मी.) तथा चैलेंजर (11,022 मी.) प्रशान्त महासागर में स्थित प्रमुख गर्त हैं।

12.5 हिन्द महासागर का नितल (Floor of the Indian Ocean)

हिन्द महासागर उत्तर एवं पूर्व में एशिया, दक्षिण-पूर्व में ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण में अण्टार्कटिका तथा पश्चिम में अफ्रीका महाद्वीप से घिरा हुआ है। इसका आकार अंग्रेजी के 'M' अक्षर की तरह है। सुदूर दक्षिण में इस महासागर की संधि अटलाण्टिका एवं प्रशान्त महासागर से भी हो गई है। इस महासागर की औसत गहराई 4000 मीटर है। उत्तर में भारतीय प्रायद्वीपीय भाग इसको दो भागों में विभाजित करता है, जो क्रमश: अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी हैं। हिन्द महासागर के तटीय भाग का अधिकांश भाग गोण्डवाना शैलों से निर्मित होने के कारण कठोर तथा सघन हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्द महासागर खोज कार्य अभियान (International Indian Ocean Expendition) (IIOE) के तत्वाधान में सन् 1959 से 1969 तक पूर्व सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, ब्रिटेन, फ्रांस और दो दर्जन अन्य राष्ट्रों ने सम्मिलित प्रयासों से हिन्द महासागर की कई रहस्यमयी स्थालाकृतियों का रहस्योद्घाटन किया। हिन्द महासागर अपने कई सीमान्त सागरों से भी आवृत्त है जैसे फारस की खाड़ी, लाल सागर, अदन की खाड़ी, अण्डमान सागर, मन्नार की

खाड़ी, मोजाम्बीक चैनल आदि। पूर्वी-द्वीप समूह के तटीय भाग के समानान्तर वलित पर्वतों की श्रृंखलाएँ भी पायी जाती हैं। हिन्द महासागर की अन्य विशेषताऐं इस प्रकार हैं -

(अ) हिन्द महासागर के निमग्र तटों की चौड़ाई में बहुत भिन्नतायें हैं।

(ब) इस महासागर का मध्यवर्ती भाग छिछला है जहां महासागरीय कटक तथा उसके ऊपर द्वीप स्थित है एवं द्रोणियों की बहुलता है तथा खाइयों एवं गर्तों की संख्या कम है।

(स) हिन्द महासागर का पूर्वी भाग अत्यन्त गहरा है, जिसकी गहराई 3000 फैदम तक भी मिलती है। इसलिए इस भाग में निमग्रतट संकरे एवं तीव्र ढाल वाले हैं।

(द) इसका पश्चिमी भाग अफ्रीका महाद्वीप के सहारे फैला है जिसकी गहराई 2000 फैदम से कम ही है तथा इसमें अनेक द्वीप स्थित हैं।

(य) इसका मध्य भाग उठे हुए 'कटक' के रूप में है जिसकी गहराई 1200 फैदम से भी कम है तथा इस भाग में भी कई द्वीप स्थित हैं।

12.5.1 महाद्वीपीय निमग्न तट (Continental Shelf)

हिन्द महासागर के निमग्रतटों का विस्तार बहुत अधिक नहीं हैं परन्तु चौड़ाई में विविधता भी व्याप्त है। अरब सागर के पूर्वी तटों, अफ्रीका के पूर्वी भाग रख बंगाल की खाड़ी में चौड़े निमग्रतट मिलते हैं, जबकि अन्य भागों में अपेक्षाकृत कम चौड़े निमग्न तट पाये जाते है। तट, पूर्व -दिशा में संकीर्ण है जबकि पश्चिम में यह औसतन 640 किमी. तक चौड़ा है। सुमात्रा रख जावा के निकटवर्ती के भागों में ये मात्र 160 किमी तक विस्तृत रह गये है जबकि अधिकतम चौड़े निमग्न तट मेडागास्कर (मलागासी) के पास स्थित हैं। हिन्द महासागरीय निमग्न तटों की उत्पत्ति विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूपों में हुई है। अण्डमान निकोबार दीपसमूह, लक्षद्वीप एव श्रीलंका तथा भारत के मध्य पाक-जलडमरूमध्य निमग्रतट, प्रवाल भित्ति एवं जमाव के कारण निर्मित है जबकि तटीय भाग के निमग्रतट भ्रंशन के द्वारा उत्पन्न हुए हैं, किन्तु पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर से मदुराई तक के निमग्रतट का निर्माण जमाव एवं अवतलन के कारण हुआ है।

भारत के निमग्नतटी की अन्तिम सीमा रेखा 180 मीटर की गहराई वाली समोच्च रेखा से सीमांकित है। पूर्वी तट पर इन निमग्रतटों की औसत चौड़ाई 50 किलोमीटर है जबकि अरब सागरीय तट पर ये औसतन 17 किलोमीटर तक चौड़े हैं। इसी प्रकार गंगा, महानदी, कृष्णा, गोदावरी तथा कावेरी जैसी बड़ी नदियों के मुहाने अपेक्षाकृत कम चौड़े निमग्रतट (30 से 35 कि.मी.) वाले हैं, नर्मदा, ताप्ती एव माही आदि नदियों की एस्चुअरी के सम्मुख निमग्न-तट का सामान्य ढाल 29° है जबकि पश्चिमी तट पर यह दक्षिण से उत्तर की तरफ क्रमश: 1° से 10° तक होता गया है।

12.5.2 महाद्वीपीय निमग्न ढाल (Continental Slope)

हिन्द महासागर के निमग्र ढाल पर्याप्त गहरे हैं। पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया की तरफ तो यह सीढ़ी की आकृति में बहुत अधिक गहरा हो गया है।

12.5.3 महासागरीय गर्त (Oceanic Deeps)

हिन्द महासागर में गर्तो की संख्या अपर्याप्त है। जावा के दक्षिण में सुण्डा द्वीप के पास एक गहरा गर्त है जिसकी गहराई सर्वाधिक (लगभग 4224 फैदम) है। उक्त प्रमुख नितल भागों के

बीच में कई प्रमुख कटकें (Ridges) एवं द्रोणियां (Basins) पाई जाती हैं जो हिन्द महासागरीय नितल के उच्चावच की निर्धारक संवाहिका है।

12.5.4 मध्यवर्ती कटक (Central Ridges)

हिन्द महासागर का मध्यवर्ती भाग छिछला है यहां पर कई महासागरीय कटक एवं उनके ऊपर 'द्वीप' भी स्थित हैं। इस महासागर में स्थित यह कटक प्रायद्वीपीय भारत के दक्षिण से प्रारम्भ होकर सुदूर दक्षिण में अण्टार्कटिका तक एक क्रमिक कड़ी के रूप में फैली हुई है।

1. लंकादीव - चौगान्स कटक - यह उत्तर में प्रायद्वीपीय मग्न तट से प्रारम्भ होती है जहां पर यह 320 किमी चौड़ी है।
2. चौगास - सेण्टपॉल कटक - लंकादीव - चौगास कटक का दक्षिणी विस्तार ही चौगास - सेण्ट-पॉल कटक कहा जाता है जो भूमध्य रेखा एवं 30° दक्षिणी अक्षांश के मध्य अवस्थित है।
3. एम्स्टर्डम सेण्ट-पॉल कटक - यह कटक 30° दक्षिणी अक्षांश से 50° दक्षिणी अक्षांश के मध्य स्थित है जो चौगस - सेण्ट-पॉल कटक का अगला विस्तार है। इस कटक की चौड़ाई 1600 कि.मी. तक हो गई है। 50° दक्षिणी अक्षांश के दक्षिण में इसकी दो शाखायें हो गई हैं - (अ) पश्चिमी कटक - गुलेन कटक, जो 50° से 63° दक्षिणी अक्षांश के मध्य फैली है, (ब) पूर्वी इण्डियन - अण्टार्कटिक कटक, जिसका विस्तार पूर्व में अण्टार्कटिका महाद्वीप की तरफ है।

मुख्य कटक की शाखायें

मुख्य कटक से स्थानीय स्तर पर शाखायें निकली हुई हैं जो महाद्वीपीय तटों की तरफ फैल गई हैं। उल्लेखनीय शाखायें निम्न हैं -

(क). सोकोत्रा - चौगास कटक - 50° दक्षिणी अक्षांश के समीपवर्ती भाग में मुख्य कटक से अलग निकला यह कटक उत्तर-पश्चिम दिशा में पूर्वी अफ्रीका के गुर्दाफई अन्तरीप तक चला गया है।

(ख). सेशल्स कटक - यह शाखा 18° दक्षिणी अक्षांश के आस-पास मुख्य केन्द्रीय कटक से निकलकर सोकोत्रा-चौगास कटक के समानान्तर पूर्वी अफ्रीका तट की तरफ बढ़ गयी है।

(ग). मलागासी (मेडागास्कर) कटक - मेडागास्कर के मग्नतटीय भाग से आरम्भ होकर दक्षिण दिशा की तरफ यह कटक फैली हुई है। 48° दक्षिणी अक्षांश के पास इस कटक को प्रिंस एडवर्ड कॉजेड कटक कहा जाता है।

(घ). अण्डमान-निकोबार कटक - बंगाल की खाड़ी में इरावदी के डेल्टाई भाग से शुरू होकर निकोबार द्वीप तक इस शाखा का विस्तार है। इसी प्रकार भारत तथा अफ्रीका महाद्वीप के बीच में कॉर्ल्सबर्ग नामक कटक पाई जाती है।

द्वीप (कटक सम्बन्धी) - कतिपय कटक यंत्र-तंत्र समुद्र तल से ऊपर दृष्टिगत होते हुए द्वीप की आकृति में हो गई है। केन्द्रीय (मध्यवर्ती) कटक के ऊपर क्रमशः लक्षद्वीप, मालदीव, चौगास, न्यू एम्सटर्डम, सेण्ट-पॉल एवं करगुलेन द्वीप अवस्थित है। कटकों की शाखाओं पर सेशल्स, क्रोजेट एवं प्रिंस एडवर्ड आदि द्वीप पाये जाते हैं।

12.5.5 महासागरीय बेसिन (Ocean Basins)

'हिन्द महासागर की मध्यवर्ती कटक इस महासागर के बेसिन को पूर्वी तथा पश्चिमी महासागरीय बेसिन में विभाजित कर देती है। इस महासागर के प्रमुख बेसिन निम्नांकित है -

1. **पूर्वी इण्डियन अण्टार्कटिक बेसिन -** यह अण्टार्कटिका के उत्तर में तीन ओर मध्यवर्ती कटक से घिरा है। इसकी गहराई 4,800 मीटर है।
2. **पश्चिमी आस्ट्रेलियन बेसिन -** यह ऑस्ट्रेलिया के पश्चिम तथा मध्यवर्ती कटक के पूर्व से 10° उत्तर से 5° दक्षिणी अक्षांश तक विस्तृत है। इस बेसिन में कटक की छोटी-छोटी अनेक शाखायें विद्यमान हैं। इसे कोकोस कीलिंग बेसिन के नाम से भी जाना जाता है। इसकी गहराई 3,500 मी. से 5500 मीटर है।
3. **अण्डमान बेसिन -** यह अण्डमान के पश्चिम में बंगाल की खाड़ी में विस्तृत है। इसकी गहराई 2,000 से 3,600 मीटर है।
4. **अटलाण्टिक अण्टार्कटिक बेसिन -** यह अण्टार्कटिका महाद्वीप के उत्तर तथा प्रिंस एडवर्ड काजेट कटक के दक्षिण में विस्तृत है। इसकी गहराई 5000 से 5500 मीटर है।
5. **नेटाल बेसिन -** यह केप कटक तथा दक्षिणी मैडागास्कर कटक के मध्य विस्तृत एक लघु आकारीय बेसिन है। इसकी गहराई लगभग 3600 मीटर है।
6. **मॉरिशस बेसिन -** यह दक्षिणी मैडागास्कर कटक, दक्षिणी-पश्चिमी भारतीय कटक तथा सेशल्स कटक से घिरा एक विस्तृत आकार वाला बेसिन है। यहाँ जल की गहराई 3600 से 5500 मीटर है।
7. **सोमाली बेसिन -** यह अफ्रीका के सोमाली तट से पूर्व में सोकोत्रा चौगास कटक एवं सेशल्स से घिरा है। इस पर जल की गहराई लगभग 3500 मीटर है।
8. **कारगुलिन बेसिन -** यह चारों और कटकों यथा कारगुलिन, मध्य भारतीय, दक्षिणी-पश्चिमी भारतीय तथा प्रिंस एडवर्ड क्राजेट कटक से घिरा एक वृत्ताकार बेसिन है जो दक्षिण में अटलाण्टिक-अण्टार्कटिक बेसिन से मिला हुआ है तथा गहराई 3532 मीटर है।
9. **अरेबियन बेसिन -** यह अरब सागर में प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिम में सोकोत्रा-चौगास कटक एवं चौगास कटक के मध्य स्थित है। यह वृत्ताकार है। इसकी गहराई 3500 मीटर से 4500 मीटर तक है।
10. **मासकेटिन बेसिन -** यह मैडागास्कर के पूर्व तथा सेशल्स कटक के पश्चिम में विस्तृत एक लम्बा बेसिन है। इसकी गहराई 3700 मीटर है।
11. **अगुलहास बेसिन -** यह केप कटक के पूर्व तथा प्रिंस एडवर्ड क्राजेट कटक के पश्चिम में विस्तृत एक संकीर्ण बेसिन है। इसकी गहराई 4200 मीटर है।
12. **मध्य इण्डियन बेसिन -** यह मध्य भारतीय कटक के दक्षिण में विस्तृत है जो पूर्व में पूर्वी कटक तथा पश्चिम में चैगोस कटक से घिरा हुआ उत्तर से दक्षिण में फैला है। इसकी गहराई 5000 मीटर है।

महासागरीय गर्त (Ocean Deeps)

जावा के निकट सुण्डा गर्त (7450 मी.) सबसे गहरा गर्त है। इस महासागर में गर्तो की संख्या है।

12.5.6 हिन्द महासागर के द्वीप (Island)

हिन्द महासागर में अन्य महासागरों की अपेक्षा द्वीप कम हैं। इसमें मैडागास्कर, श्रीलंका, सोकोत्रा, जंजीवार, कोमोरो, सेशल्स, अण्डमान-निकोबार द्वीप पुंज, लक्षद्वीप, मालदीव, क्रोजेट, प्रिंस एडवर्ड, न्यू एम्सटर्डम, सेन्ट-पॉल, अभिगत्ते, फुर्कुहर, कोकोस, चागोस, नस्कार्नेस, मॉरिशस, रीयूनियन आदि छोटे बड़े द्वीप है। संभवत: इन द्वीपों की उत्पत्ति निम्नांकित प्रक्रियाओं द्वारा हुई है -

1. विस्थापन के समय महाद्वीपों के कुछ भाग पीछे छूट गये थे जो बाद में द्वीप के रूप में जाने गये।
2. हिन्द महासागर में अतीत में ज्वालामुखी का उद्गार कई बार हुआ था जिससे अनेक छोटे-बड़े द्वीपों का सृजन हुआ था जिनमें क्रोजेट, प्रिंस एडवर्ड, न्यूएम्सटर्डम, सेन-पॉल आदि प्रमुख है।

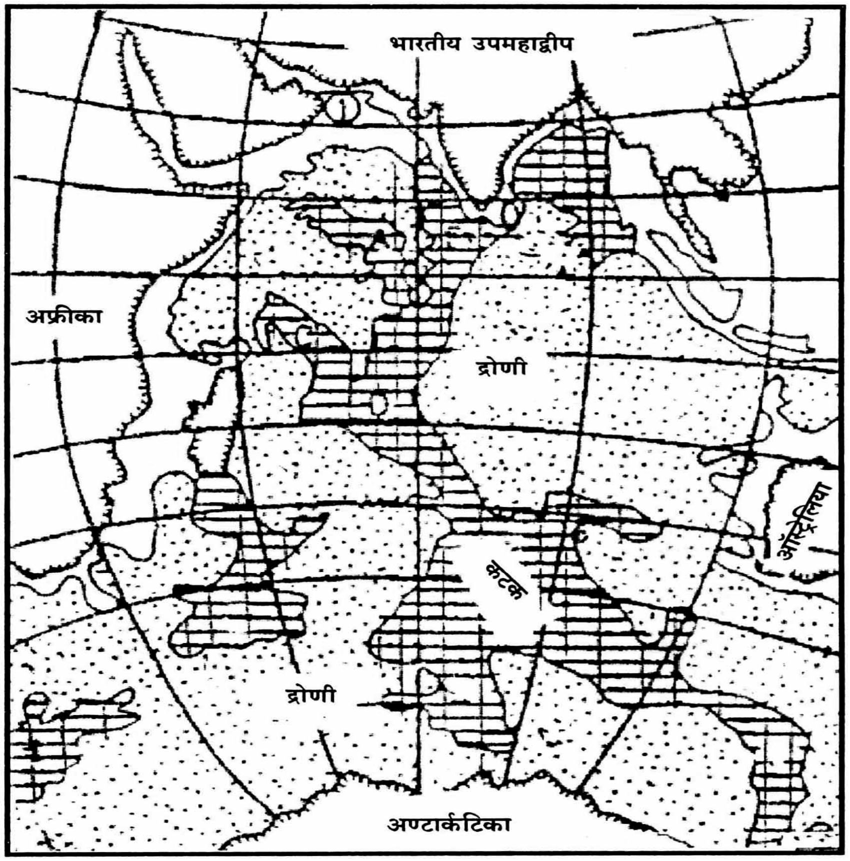

चित्र - 12. 3 : हिन्द महासागर-नितल की आकृतियाँ

3. हिन्द महासागर में अनेक द्वीपों का निर्माण प्रवाल भित्तियों के रूप में हुआ है। प्रवाल द्वीपों में लक्षद्वीप, मालदीव, अमिरान्ते, फुर्कुहट, कोकोस, चागौस आदि प्रमुख हैं।
4. हिन्द महासागर की कटक अनेक स्थानों पर द्वीपों के रूप में सागरतल के ऊपर उभरी हुई है इनमें लक्षदीव, मालदीव, तथा मध्य कटक पर उभरे अनेक छोटे-छोटे द्वीप आते हैं।

तटवर्ती समुद्र (Marginal Seas) - लाल सागर, फारस की खाड़ी, अण्डमान सागर, मोजाम्बिक चैनल, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी आदि प्रमुख तटवर्ती सागर हैं। लाल सागर जलडमरूमध्य के द्वारा पृथ्क होकर सीमान्त सागर है। इसका निर्माण अरेबियन प्लेट तथा सोमाली प्लेट के एक दूसरे के विपरीत दिशा में खिसकने तथा भ्रंशघाटी के सृजन से हुआ है। फारस की खाड़ी एक छिछले सागर के रूप में है। अरबसागर एवं बंगाल की खाड़ी का पृथकत्व प्रायद्वीपीय भारत के द्वारा होता है।

बोध प्रश्न- 3

1. महासागरीय नितल किसे कहते हैं?

   ....

   ....

2. महासागरीय नितल के उच्चावच को वर्गीकृत कीजिए।

   ....

   ....

3. हिन्द महासागर के मुख्य कटक बतलाइए।

   ....

   ....

4. IIOE का क्या तात्पर्य है।

   ....

   ....

12.6 सारांश

सागर विज्ञान में समुद्री बेसिनों के आकार एवं प्रकृति, बेसिनों के जल की विशेषताओं एवं जल की गतियों से सम्बन्धित शक्तियों का अध्ययन किया जाता है। मानव अपने विकास के लिए समुद्र का विभिन्न रूपों में उपयोग करता है जिससे भूमण्डलीयकरण के प्रभाव एवं आर्थिक, तकनीकी विकास का इसके ऊपर प्रभाव पड़ता है। सम्पूर्ण ग्लोब के 70.8 प्रतिशत भाग पर महासागर फैले हुए हैं। प्रत्येक देश की महासागरीय सीमा तट से 20 कि मी. तक है जबकि उसका महासागरों को संसाधनों का विदोहन करने का अधिकार 200 कि.मी. तक की दूरी तक माना गया है। महासागर खाद्य सामग्री, व्यापार, खनिज, शक्ति के स्त्रोत व पेयजल स्त्रोत की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।
जलीय चक्र में समुद्री जल का वाष्पीकरण, वायुमण्डल में जल वाष्प का महासागरों रख महाद्वीपों के ऊपर परिवहन, वायुमण्डलीय आर्द्रता का संघनन, वायुमण्डलीय जल वाष्प का वर्षण तथा धरातल पर प्राप्त जल विभिन्न माध्यमों (नदी आदि) से पुन: महासागरों में वापिस पहुँचता है। समुद्र, स्थलीय जल, हिम-सरिताएँ, भूमिगत जल, मृदा की आर्द्रता व वायुमण्डलीय आर्द्रता आदि जल चक्र के घटक हैं।
महासागरीय आकृतियों को महाद्वीपीय निमग्न तट, महाद्वीपीय निमग्न ढाल, गहरे समुद्री मैदान एवं महासागरीय गर्तों में विभाजित किया जाता है। हिन्द महासागर का आकार अंग्रेजी को 'M' की

तरह है। हिन्द महासागर का मध्यवर्ती भाग छिछला है जहाँ महासागरीय कटक तथा उसके ऊपर द्वीप स्थित है एवं द्रोणियों की बहुलता है जबकि खाइयों एवं गर्तों की संख्या कम है। हिन्द महासागर का पूर्वी भाग अत्यन्त गहरा है जबकि पश्चिमी भाग की गहराई 2000 फैदम से कम है तथा इसमें कई द्वीप स्थित हैं।

12.7 शब्दावली

जलमण्डल	:	पृथ्वी के धरातल के 70.8% जलावृत भाग को जलमण्डल कहा जाता है।
जैविक समुद्र विज्ञान	:	इसके अन्तर्गत महासागरों में पाए जाने वाले सभी पादपों एवं जीवन का अध्ययन किया जाता है।
विलवणीकरण संयंत्र	:	इस यंत्र के द्वारा सागरीय जल को पेय जल के रूप में बदलकर भिन्न नगरों एवं उद्योगों में पेयजल की आपूर्ति की जाती है।
ग्योट	:	जिन निमग्न द्वीपों की ज्वालामुखी चोटियाँ चपटी होती है उसे ग्योट कहा जाता है ।
उच्चतादर्शी वक्र	:	इस वक्र के द्वारा महासागरों की गहराई एवं स्थल की ऊँचाई प्रदर्शित की जाती है।

12.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. डी.पी. उपाध्याय एवं डॉ. रामाश्रय सिंह	:	जलवायु विज्ञान और समुद्र विज्ञान, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर
2. चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ. रतन जोशी	:	भौतिक भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
3. सविन्द्र सिंह	:	भौतिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. समुद्र विज्ञान सागरों का विज्ञान है, जिसमें महासागरीय उच्चावच एवं जल की विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।
2. पृथ्वी के धरातल का 70.8 प्रतिशत जलावृत है।
3. धरातल पर जल का अधिक विस्तार होने के कारण कई वैज्ञानिक इसे जलीय ग्रह कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं।
4. चौदहवीं सदी के पश्चात् महासागरों का विविध प्रकार से महत्व तेजी से बढ़ने लगा।
5. अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराओं के अनुसार प्रत्येक देश उपयुक्त तट से 200 कि मी. तक की दूरी तक महासागरीय संसाधनों का विदोहन कर सकता है।
6. फ्रांस में।

बोध प्रश्न - 2

1. वर्षा जल का कुछ भाग भूसतह के नीचे अत: संचरण होकर मृदा शैलों में भण्डारित होता है उसे मृदा जल भंडार कहते हैं।
2. भूमण्डलीय जल चक्र के घटक समुद्र, स्थलीय जल, हिम सरिताएँ. भूमिगत जल, मृदा की आर्द्रता, व वायुमण्डलीय आर्द्रता आदि है।
3. समुद्र में।

बोध प्रश्न- 3

1. जिस प्रकार महाद्वीपों पर पर्वत, पठार एवं मैदान पाए जाते हैं, ठीक उसी प्रकार महासागरीय तली पर भी पर्वत, पठार मैदान व घाटियाँ गर्त आदि पाए जाते जिसे महासागरीय नितल कहा जाता है।
2. महासागरीय उच्चावच को महाद्वीपीय निमग्न तट, महाद्वीपय निमग्न ढाल, गहरे सागरीय मैदान एवं महासागरीय गर्त में वर्गीकृत किया गया है।
3. हिन्द महासागर के निम्नलिखित कटक है -

   (अ) चौगस कटक

   (ब) शल्स कटक

   (स) मलागासी कटक

   (द) अण्डमान -निकोबार कटक।
4. IIOE - (International Indian Ocean Expendition) "अन्तर्राष्ट्रीय हिन्द महासागर खोज कार्य अभियान" कहा जाता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशों के सम्मिलित प्रयासों से हिन्द महासागर की कई रहस्यमयी स्थलाकृतियों का अध्ययन किया जाता है।

12.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. महासागरों को भविष्य का संसाधन क्यों कहा जाता है? समझाइये।
2. जल चक्रीय एवं इसके घटकों का वर्णन लिखिए।
3. हिन्द महासागर के नितल का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 13 : सागरीय लवणता

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 महासागरीय जल का संघटन

13.3 महासागरीय लवणता के स्रोत

13.4 खुले महासागरों में लवणता का वितरण

13.4.1 लवणता का क्षैतिज वितरण

13.4.1.1 अक्षांशीय वितरण

13.4.1.2 प्रादेशिक वितरण

(i) अटलाण्टिक महासागर

(ii) प्रशान्त महासागर

(iii) हिन्द महासागर

13.4.2 लवणता का लम्बवत वितरण

13.5 आंशिक बन्द सगर

13.6 स्थलबद्ध सागर

13.7 लवणता की असमानता के कारण

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.11 सन्दर्भ ग्रंथ

13.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- सागरीय जल के संघटन,
- सागरीय लवणता के स्रोत,
- खुले, आशिक बन्द व स्थलबद्ध सागरों में लवणता तथा
- लवणता की असमानता के कारकों आदि को समझ सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

महासागरों, आंशिक बन्द समुद्रों एवं स्थलबद्ध सागरों का जल खारा (लवणीय) होता है। इनमें अनेक प्रकार के खनिज पाये जाते हैं, जिनमें सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) की अधिकता होती है। वस्तुत: जल की लवणता उसमें घोल रूप में पाये जाने वाले सभी प्रकार के

लवणों का योग होता है। लवणता की मात्रा द्‌वारा जल का स्वभाव भी प्रभावित होता है, जैसे लवणता के कारण जल का हिमांक बिन्दु बदल जाता है।

13.2 महासागरीय जल का संघटन

महासागरीय जल एक सक्रिय घोलक होता है, इसमें कई प्रकार के खनिज घुली अवस्था में पाये जाते हैं। प्रतिवर्ष नदियों द्‌वारा महासागरों में लवण लाया जाता है जिससे लवणता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जोली, मरे एवं क्लार्क नामक विद्‌वानों ने महासागरों में लवणता की मात्रा क्रमश: 50 अरब टन, 5 अरब टन एवं 2.7 अरब टन बतायी है ।

सन् 1884 के चैलेन्जर अन्वेषण में डिटमार नामक वैज्ञानिक ने महासागरों के लवणों व समुद्रों के जल में 47 प्रकार के लवणों का पाया जाना निश्‍चित किया। इनमें सात प्रकार के लवण सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें सर्वाधिक मात्रा में साधारण नमक अर्थात सोडियम क्लोराइड होता है। इन लवणों के अतिरिक्त महासागरीय जल में ब्रोमाइन, कार्बन, बोरान, सिलिकॉन स्ट्रॉन्टियम तथा फ्लोरिन आदि भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। वायुमण्डलीय गैसों की थोड़ी मात्रा (आक्सीजन तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड) महासागरीय जल में घुली अवस्था में पायी जाती है। इन गैसों की उपस्थिति महासागरीय जीवों व वनस्पति में पाये जाने वाले विभिन्न जैविक प्रक्रमों के लिये विशेष महत्वपूर्ण होती है।

वैज्ञानिक ये मानते हैं कि पृथ्वी तल पर पाये जाने वाले सभी तत्व किसी न किसी रूप व मात्रा में सागर तल में भी पाये जाते हैं। सोना, चांदी, तांबा, जस्ता, सीसा, निकिल, कोबाल्ट, मैंगनीज, एल्यूमीनियम, लोहा, सिलिकॉन आदि बहुत थोड़ी मात्रा में महासागरों के जल में घोल के रूप में विद्‌यमान हैं। वैज्ञानिक गणनानुसार प्रतिघन मील महासागरों के जल में 14 पौण्ड सोना तथा 500 पौण्ड सीसा घोल रूप में विद्‌यमान है। जिस प्रकार महासागरों के जल से वर्तमान में सोडियम क्लोराइड (नमक) और मैगनीशियम निकाला जाता है, उसी प्रकार भविष्य में अन्य खनिजों का दोहन भी संभव हो जायेगा।

विभिन्न महासागरों व समुद्रों में लवण की कुल मात्रा में अन्तर हो सकता है, परन्तु उसकी संरचना के अनुपात में सभी स्थानों पर समानता पायी जाती है। विभिन्न महासागरों व समुद्रों में लवण की मात्रा $33^{0/00}$ से $37^{0/00}$ (अर्थात 1000 ग्राम जल में 33 से 37 ग्राम लवण की मात्रा) के बीच पायी जाती है।

डिटमार (Dittmar) द्‌वारा दिया गया विभिन्न लवणों का भार एवं प्रतिशत निम्न सारणी द्‌वारा व्यक्त किया जा रहा है, जो चैलेन्जर अन्वेषण अभियान द्‌वारा प्राप्त आकड़ों पर आधारित है -

तालिका- 13.1 : महासागरीय जल में विभिन्न लवणों का भार एवं प्रतिशत

लवण	मात्रा % (प्रति हजार ग्राम)	कुल लवणों का प्रतिशत
सोडियम क्लोराइड	27.213	77.8
मैगनीशियम क्लोराइड	3.807	10.9
मैगनीशियम सल्फेट	1.658	4.7
कैल्शियम सल्फेट	1.260	3.6
पोटेशियम सल्फेट	0.863	2.5
कैल्शियम कार्बोनेट	0.123	0.3

मैगनीशयम ब्रोमाइड	0.076	0.02
	35.000	**100.0**

बोध प्रश्न-1

हाँ या नहीं में उत्तर दीजिये

1. पृथ्वी तल पर 70.8% भाग पर जल पाया जाता है। हाँ/नहीं
2. महासागरीय लवणता प्रति हजार ग्राम 35% में अंकित की जाती है। हाँ/नहीं
3. प्रशान्त महासागर का क्षेत्रफल समस्त स्थलीय भाग से भी अधिक है। हाँ/नहीं
4. दक्षिण गोलार्ध के 80.9% भाग पर जल पाया जाता है। हाँ/नहीं

13.3 महासागरीय लवणता के स्रोत

महासागर जल के विशाल स्रोत हैं। किन्तु इस जल का उपयोग पीने के लिए नहीं किया जाता है क्योंकि इसमें लवणता अधिक पायी जाती है। महासागरों में यह लवणता कहां से आयी? इस प्रश्न पर विभिन्न मत दिये गये हैं। वर्षा के जल में घुलकर लवणता महाद्वीपों से ही पहुंची है। लवणता खनिजों एवं रसायनों का ही स्वरूप है जिसे नदियों द्वारा महासागरों में पहुँचाया गया है। महाद्वीपों की शैलों में अनेक प्रकार के रसायन एवं लवण पाये जाते हैं, जिन्हें नदियां बहाकर महासागरों में ले जाती हैं।

महासागरीय जल में वाष्पीकरण क्रिया द्वारा भी लवणता की मात्रा में वृद्धि होती है। लवण की जो मात्रा नदियों द्वारा महासागरों में पहुंचायी जाती है, वह महासागरों में उपस्थित कुल लवण पदार्थो का सूक्ष्म अंश होता है। किन्तु महासागरों में वाष्पीकरण क्रिया के फलस्वरूप स्वच्छ या मीठा जल, जल वाष्प में परिवर्तित होकर वायुमण्डल में मिल जाता है तथा इसके फलस्वरूप महासागरों के जल में धीरे-धीरे लवणता की मात्रा बढ़ती जाती है। कुछ विद्वानों के मतानुसार पृथ्वी की उत्पत्ति पश्चात् उसकी प्रथम ठोस पपड़ी में लवणता की मात्रा अधिक थी। इस प्रथम अपरदन के कारकों द्वारा भारी मात्रा में लवण पदार्थ महासागरों में पहुंचाये गये, जिस कारण महासागरीय जल की लवणता में वृद्धि होती चली गयी। नदियां इस प्रक्रिया में लवण पहुंचाने वाले कारकों में सर्व प्रमुख थी। नदियों के अतिरिक्त पवनों, ज्वालामुखी उदगारों द्वारा भी महासागरों में लवणता वृद्धि की गयी है।

बोध प्रश्न -2

रिक्त स्थान भरो -

1. चैलेंजर अन्वेषण अभियान सन्........................ में सम्पन्न हुआ ।
2. महासागरीय खारे जल में सर्वाधिक मात्रा में ....नाम खनिज लवण पाया जाता है ।
3. जाँली नामक विद्धवान के अनुसार महासागरीय जल में ....लवणता की मात्रा है ।

4.	विभिन्न महासागरों व समुद्रों में लवणता की मात्रा में सर्वाधिक वृद्धि करने वाला कारक ....हैं ।	

13.4 खुले महासागरों में लवणता का वितरण

महासागरों में लवणता सर्वत्र एक समान नहीं पायी जाती है। लवणता के वितरण में असमानता मुख्य रूप से तीन कारकों - (i) वर्षा व नदियों द्वारा ताजे पानी कीं आपूर्ति (ii) वाष्पीकरण की दर (iii) महासागरों के जल में मिश्रण से उत्पन्न होती है।

लवणता का वितरण मानचित्र पर प्रदर्शित करने के लिए समलवण रेखाओं (Isohaline Lines) की सहायता ली जाती है। समलवण रेखाएं समान लवणता वाले स्थानों को मिलाकर खींची जाती हैं। इन रेखाओं द्वारा केवल सतही जल की लवणता का प्रदर्शन होता है। सतह से नीचे जाने पर लवणता में भिन्नता आती जाती है। महासागरों का क्षैतिज एव लम्बवत लवणता का वितरण सदैव भिन्न होता है। महासागरों की औसत लवणता में भिन्नता 35‰है।

13.4.1 लवणता का क्षैतिज वितरण (Horizontal distribution of Salinity)

लवणता के क्षैतिज वितरण में मुख्य रूप से अक्षांशीय रख प्रदेशिक वितरण पर ध्यान दिया जाता है। प्रादेशिक वितरण के अन्तर्गत खुले महासागरों की लवणता का अलग-अलग वितरण प्रस्तुत किया जाता है। महासागरों के साथ-साथ सीमान्त सागरों, खुले, आशिक बन्द रख स्थलबद्ध समुद्रों की लवणता वितरण का भी अवलोकन किया जाता है।

13.4.1.1 अक्षांशीय वितरण

सारणी- 13.1 : जॉन्स्टन द्वारा दिया गया लवणता का अक्षांशीय वितरण

अक्षांश मण्डल	लवणता %
50°-70° उत्तर	30 - 31
40°-50° उत्तर	33 - 34
15°-40° उत्तर	35 - 36
15° उत्तर - 10° दक्षिण	34.5 - 35
10° -30° दक्षिण	35 - 36
30°-50° दक्षिण	34 - 35
50° -70° दक्षिण	33 - 34

उपरोक्त सारणी एवं समलवण रेखाओं (Isohalines) द्वारा बने मानचित्र का अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में लवणता अधिक पायी जाती है। इसका मुख्य कारण दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थलीय विस्तार का कम पाया जाना है, जिसके फलस्वरूप जल का मिश्रण विभिन्न अक्षांशों में बिना किसी अवरोध के होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय भाग अधिक पाये जाने के कारण इसमें बाधा उत्पन्न होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में 34%0 एवं दक्षिण गोलार्द्ध में 35%0 औसत लवणता पायी जाती है।

- महासागरों में सर्वाधिक लवणता उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में 30° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के निकट पायी जाती है। इन क्षेत्रों में कम वर्षा तथा अधिक वाष्पीकरण अधिक लवणता पाये जाने के मुख्य कारण हैं। इसके अतिरिक्त नदियों द्वारा लाये गये जल की मात्रा भी इन क्षेत्रों में बहुत कम होती है। मेघ रहित स्वच्छ आकाश, प्रतिचक्रवाती अवस्था एवं सूर्यताप अधिक पाया जाता है।
- भूमध्यरेखीय पेटी में अधिक वर्षा, कम वाष्पीकरण तथा नदियों द्वारा बहाकर लाये गये जल की मात्रा अधिक होती है, जिसके फलस्वरूप कर्क एवं मकर रेखाओं से भूमध्य रेखा की ओर जाने पर लवणता में कमी आती जाती है। यहां वर्षा अधिक होने के कारण मीठे या लवणता रहित जल का मिश्रण होता रहता है।
- ध्रुवीय क्षेत्रों में तापमान वाष्पन कम होने तथा गर्मी में बर्फ पिघलने से पानी की अधिकता हो जाने से लवणता न्यूनतम पायी जाती है।
- मध्य अंक्षाशीय प्रदेशों में तापमान एवं वाष्पीकरण की दर अधिक होने से महासागरों में लवणता अधिक पायी जाती है।
- नदियों के मुहानों पर लावणता कम पायी जाती है, क्योंकि वहां नदियों का मीठा जल सागरों में आकर गिरता है।
- महासागरों और अधखुले सागरों के जल में भली प्रकार से सम्मिश्रण न होने के कारण लवणता में अंतर पाया जाता है। भूमध्य सागर में जिब्राल्टर जल डमरूमध्य के पास लवणता 36.5$\%_0$ मिलती है। यह लवणता पूर्व की तरफ जाने पर बढ़ती चली जाती है, सीरिया तट के पास आते-आते 39$\%_0$तक पहुँच जाती है। इसी प्रकार लाल सागर में दक्षिण की ओर लवणता 36.5$\%_0$पायी जाती है, जो उत्तर की ओर बढ़ती जाती है। लाल सागर में एक भी नदी आकर नहीं मिलती है। काला सागर में एक भाग ओजोव सागर में कई नदियों के मिलने के कारण लवणता कम पायी जाती है। बाल्टिक सगर में लवणता का कम पाया जाना उसकी उच्च अंक्षाशों में स्थिति, कम वाष्पन एवं हिम का पिघला जल प्राप्त होने के कारण है।
- बन्द सागरों या झीलों में लवणता का वितरण अलग पाया जाता है। जिन सागरों में नदियां गिरती हैं एवं जल का निकास है, वहां लवणता कम पायी जाती है क्योंकि इनमें लवणता एकत्रित नहीं हो पाती। पूर्णत: बन्द सागरों व झीलों में नदियां आकर गिरती तो हैं लेकिन उनका निकास नहीं होने के कारण इनमें लवणता बहुत अधिक पायी जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के यूटाह (Utah) राज्य में स्थित 'ग्रेट सॉल्ट लेक' (Great Salt Lake) के जल की लवणता 220$\%_0$है, इसी प्रकार टर्की में पायी जाने वाली वान झील (Van lake) में लवणता 3305$\%_0$एवं मृत सागर (Dead Sea) में 237.5$\%_0$ लवणता पायी जाती है। कैस्पियन सागर के उत्तरी भागों में वॉल्गा एवं यूराल नदियों द्वारा मीठा जल प्राप्त होने के कारण लवणता 130$\%_0$ तथा दक्षिणी भागों में विशेष कर दक्षिण पूर्व में स्थित कारा बोगाज की खाड़ी (Gulf of Kara Bogaz) में लवणता 170$\%_0$ पायी जाती है। ये झीलें अर्द्ध शुष्क प्रदेशों में स्थित हैं जिससे इनमें

वाष्पन की दर तीव्र पायी जाती है। इन झीलों में सोडियम क्लोराइड की मात्रा खुले महासागरों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर महासागरों में लवणता के चार मण्डल बताये गये हैं - (1) भूमध्य रेखीय क्षेत्र का अपेक्षाकृत कम लवणता का मण्डल, (2) अयनवर्ती अधिकतम लवणता का मण्डल (3) शीतोष्ण कटिबंधीय मध्यम लवणता का मण्डल एवं (4) ध्रुवीय तथा उपध्रुवीय न्यूनतम लवणता का मण्डल।

13.4.1.2 प्रादेशिक वितरण

प्रादेशिक वितरण से तात्पर्य विभिन्न महासागरों में लवणता के वितरण से है। लवणता के प्रादेशिक वितरण को समझने के लिए दो प्रकार की विधियां प्रयोग में लायी जाती हैं। प्रथम विधि के अनुसार अलग-अलग महासागरों में लवणता के वितरण की विवेचना की जाती है। दूसरी विधि में जेनकिन्स (Jenkins) ने महासागरों व सागरों में पायी जाने वाली लवणतानुसार तीन वर्ग निश्चित किये हैं - (1) सामान्य से अधिक लवणता वाले सागर ($37\%_0$ से $41\%_0$), (2) सामान्य लवणता वाले सागर ($35\%_0$ से $36\%_0$) तथा (3) तीसरा वर्ग सामान्य से कम लवणता वाले सागर ($20\%_0$ से $35\%_0$) से संबंधित हैं। लेकिन प्रथम विधि द्वारा सुगम एवं सर्वमान्य है। इसलिए यहाँ विभिन्न महासागरों में पाये जाने वाली लवणता का विवेचन महासागरानुसार किया गया है।

(i) **अटलाण्टिक महासागर :** 20° से 30° उत्तरी अक्षांशों के मध्य (उत्तरी अटलाण्टिक) लवणता का स्तर $37\%_0$ है जो अन्य महासागरों की तुलना में सबसे अधिक है। अटलाण्टिक महासागर के उत्तर में सतही जल की औसत लवणता $35.5\%_0$ है, जबकि दक्षिण अटलाण्टिक की औसत लवणता $34.5\%_0$ है। उत्तरी व दक्षिणी भागों में पायी जाने वाली इस लवणता के अन्तर का मुख्य कारण महासागरीय जल में मिश्रण की मात्रा का भिन्न-भिन्न होना है। भूमध्य सागर का अधिक खारीपन का कारण तीव्र वाष्पीकरण है। भूमध्य सागर का अधिक खारा जल जिब्राल्टर जलडमरुमध्य से होता हुआ उत्तरी अटलाण्टिक के सतही जल में मिलता है, जिससे यहां की लवणता खुले महासागरों की तुलना में सर्वाधिक होती है। इस महासागर के भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में वाष्पन की तुलना में वर्षा द्वारा स्वच्छ जल की आपूर्ति अधिक होती है, यहाँ सतही जल की औसत लवणता $35\%_0$ रहती है। इसके विपरीत 20° - 25° उत्तरी तथा 20° दक्षिणी अक्षांशों के निकट वर्षा की अपेक्षा वाष्पन अधिक होता है, जिससे इन क्षेत्रों में लवणता $37\%_0$पायी जाती है। अयनवर्ती क्षेत्रों से ध्रुवों की ओर जाने पर वाष्पन की अपेक्षा वर्षा अधिक होने से सतही लवणता धीरे-धीरे कम होती जाती है, इन क्षेत्रों में लवणता $35\%_0$ पायी जाती है।

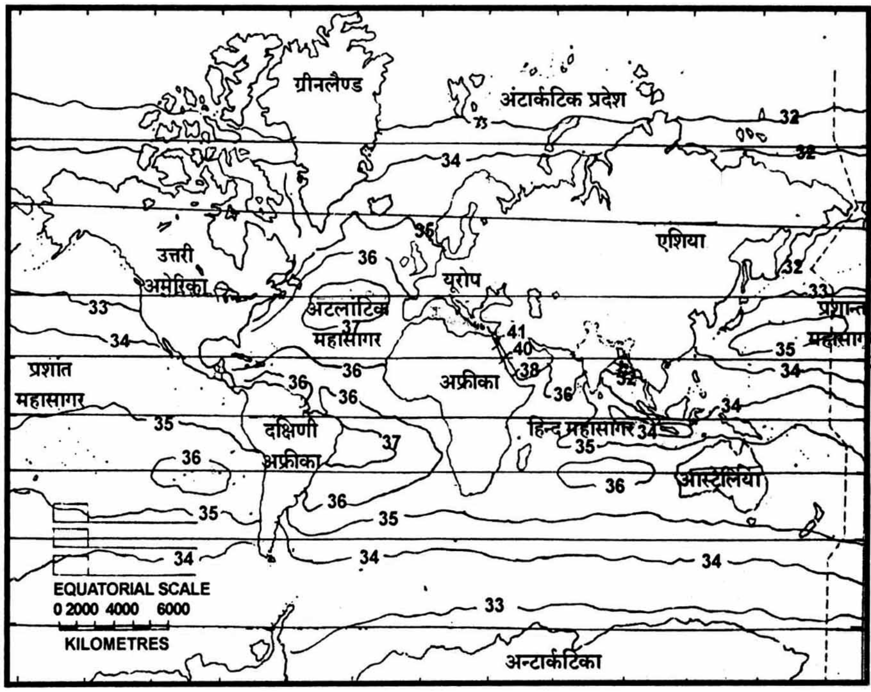

मानचित्र - 13.1 : विश्व: लवणता का क्षैतिज वितरण (समलवणता रेखाओं द्वारा)

गल्फ स्ट्रीम अपने साथ $35\%_0$ लवणता वाली जल राशि को बहाकर अटलाण्टिक महासागर के उत्तर-पूर्वी भाग में 78° उत्तरी अक्षांश पर स्थित स्पिट्जबर्गेन तक ले जाती है, जिससे वहां पर लवणता बढ़ जाती है। इसी जल धारा के प्रभाव स्वरूप उत्तरी सागर, नॉर्वे के तटवर्ती सागर आदि क्षेत्रों में लवणता अधिक पायी जाती है। इसी प्रकार आर्कटिक सागर का $34\%_0$ लवणता वाला जल ठण्डी जलधाराओं के माध्यम से 45° उत्तर अक्षांश तक पहुंचा दिया जाता है। ध्रुवीय क्षेत्रों में लवणता की मात्रा $30\%_0$से $33\%_0$ तक पायी जाती है। अटलाण्टिक महासागर के पश्चिमी किनारे पर लेब्रेडोर धारा के कारण लवणता कम पायी जाती है। अफ्रीका के किनारे गिनी की खाड़ी में लवणता कम होती है, क्योंकि यहां व्यापारिक पवनों द्वारा सतही जल हटा दिया जाता है, जिससे आंतरिक कम लवणता वाला जल उभर आता है। इस क्रिया को उत्प्रवाह (Upwelling) कहते हैं।

अटलाण्टिक महासागर के तटवर्ती क्षेत्रों तथा छिछले लैगूनों में लवणता $34\%_0$से कम होती है। न्यूफाउण्डलैण्ड के निकट सतही लवणता $34\%_0$ से भी कम पायी जाती है। अटलाण्टिक महासागर के मध्य में 25° उत्तरी अक्षांश के निकट स्थित सारगोसा सागर में ग्रीष्मकालीन लवणता $57\%_0$से भी अधिक पायी जाती है।

दक्षिणी अटलाण्टिक महासागर के पूर्वी भाग की अपेक्षा पश्चिमी भाग में अधिक लवणता पाई जाती है। विशेष रूप से ऐसा 10° से 30° दक्षिणी अक्षांश के मध्य देखा जाता है। इन्हीं अक्षांशों के पूर्वी तट के पास महासागर की गहराइयों से शीतल और कम खारे जल का उत्प्रवाह होता है जिससे पूर्वी भागों में खारापन कम पाया जाता है। इस महासागर में गिरने वाली नदियों के महानों के निकट सतही लवणता कम पायी जाती है। अमेजन

($15\%_0$), काँगो ($34\%_0$), नाइजर ($20\%_0$) एवं सेनेगल ($34\%_0$) प्रतिशत नदियों के मुहानों के निकट लवणता कम पायी जाती है।

(ii) **प्रशान्त महासागर :** प्रशान्त महासागर के भूध्यरेखीय क्षेत्रों में लवणता कम पायी जाती है। यहां लवणता $34\%_0$ पायी जाती है। 15° उत्तरी व दक्षिणी अंक्षाशों के निकट लवणता की मात्रा बढ़कर $34\%_0$ से $35\%_0$ तक हो जाती है। इस महासागर में अधिकतम लवणता की मात्रा $36\%_0$ दक्षिण पूर्वी भाग में पायी जाती है। उत्तरी प्रशान्त महासागर में व्यापारिक पवनों के क्षेत्र में लवणता की मात्रा $36\%_0$ से अधिक नहीं पायी जाती है। प्रशान्त महासागर के उत्तरी -पश्चिमी भाग में 15^0से 30^o उत्तरी अक्षांशों के मध्य लवणता की मात्रा $35.55\%_0$ पायी जाती है।

दक्षिणी प्रशान्त महासागर में लवणता की मात्रा $36\%_0$ प्रतिशत तक पायी जाती है। अण्टार्कटिका के समीप सतही लवणता $34\%_0$ से भी कम पायी जाती है। इसी प्रकार प्रशान्त महासागर के बिलकुल उत्तरी क्षेत्र में लवणता $32\%_0$ से भी कम अंकित की जाती है। इस महासागर के पश्चिमी भाग में भारी वर्षा व मानसून प्रणाली के फलस्वरूप लवणता की मात्रा घट कर $31\%_0$ के लगभग आ जाती है। पूर्वी एवं पश्चिमी प्रशान्त की लवणता में अन्तर मुख्य रूप से धाराओं की प्रकृति रख मौसमी परिवर्तन होता है। उत्तरी चीन के तट के पास क्यूराइल ठण्डी धारा के कारण लवणता केवल $31\%_0$ पायी जाती है, परन्तु क्यूरोसीवो गर्म जलधारा के कारण पूर्वी भाग पर लवणता अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। कैलिफोर्निया के तट के पास उत्तर दिशा से कैलिफोर्निया धारा द्वारा हिम का पिघला जल लाने से लवणता कम होती है। कोलम्बिया और पीरू के तट के समीप लवणता क्रमश: $28\%_0$और $33\%_0$अंकित की जाती है। यहाँ ठण्डी चिली जल धारा का प्रभाव भी देखने को मिलता है। नदियों के मुहानों पर लवणता कम पायी जाती है जैसे ह्वांगहों के मुहाने पर $30\,{}^{0}/_{00}$ के यांगटिसी क्यांग के मुहाने पर $33\%_0$लवणता अंकित की जाती है।

(iii) **हिन्द महासागर :** हिन्द महासागर में लवणता का वितरण अलग प्रकार का पाया जाता है। यहाँ भूमध्य रेखा और 10^0 उत्तरी अक्षांशों के बीच लवणता $25\%_0$ पायी जाती है। बंगाल की खाड़ी में लवणता घटती जाती है तथा गंगा के मुहाने पर यह $30\%_0$ ही रह जाती है, इसी प्रकार गोदावरी, कृष्णा रख कावेरी नदियों के मुहानों पर भी लवणता कम पायी जाती है। अरब सागर की ओर लवणता बढ़ती जाती है। लाल सागर के मुहाने पर लवणता की मात्रा $36.5\%_0$ एवं फारस की खाड़ी के मुहाने पर यह बढ़ कर $37\%_0$हो जाती है। लाल सागर में स्वेज नहर के पास यह बढ़कर $41\%_0$और फारस की खाड़ी के आन्तरिक भाग में लवणता बढ़कर $40\%_0$ हो जाती है। दजला एवं फरात नदियों के मुहानों पर लवणता मात्र $35\%_0$ही पायी जाती है। इस महासागर के पूर्वोतर भाग में लवणता की मात्रा $32\%_0$से $34\%_0$ प्रतिशत तक पायी जाती है जो उत्तरी पश्चिमी भागों में पायी जाने वाली लवणता $32\%_0$ से $37\%_0$ की अपेक्षाकृत कम है। उत्तरी-पूर्वी भागों में कम लवणता यहाँ होने वाली भारी वर्षा एवं बड़ी संख्या में नदियों द्वारा मुहाने बनाने के कारण पायी जाती है।

इस महासागर में 40^0 दक्षिणी अक्षांश से अण्टार्कटिका महाद्वीप के किनारों तक लवणता घटती जाती है। इन क्षेत्रों में लवणता की मात्रा 35‰ से घटकर 33.5‰ तक पहुँच जाती है। इसका मुख्य कारण अण्टार्कटिका में फैली हिम चादरों एवं हिम खण्डों के पिघलने से प्राप्त स्वच्छ जल है। ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप के पश्चिमी तट के निकट जलवायु शुष्क होने से वाष्पन अधिक होता है जिसके कारण यहाँ लवणता अधिक पायी जाती है।

13.4.2 लवणता का लम्बवत (ऊर्ध्वाधर) वितरण (Vertical distribution of Salinity)

महासागरों में उपस्थित विभिन्न जलराशियों की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं के कारण सतह के नीचे अलग-अलग गहराइयों में लवणता एवं तापमान आदि के वितरण में अत्यधिक जटिलतायें पायी जाती हैं । लवणता के वितरण रख गहराई में कोई विशेष नियम नहीं होता है।
40^o उत्तर से 50^o दक्षिण अक्षांशों के मध्य लवणता (लम्बवत) में तेजी से गिरावट आती है। 800 मीटर की गहराई पर लवणता 34.3‰से 34.9‰ तक पायी जाती है। इसी प्रकार 1600 से 2000 मीटर की गहराई पर लवणता 34.8‰से 34.9‰ तक बढ़ती है। इसके पश्चात् लवणता धीरे-धीरे कम होती जाती है।
दक्षिण अटलाण्टिक महासागर में सतही लवणता $33^{o/oo}$ पायी जाती है। यह 400 मीटर (200 फैदम) की गहराई में बढ़कर 34.5‰ हो जाती है तथा 1200 मीटर (600 फैदम) पर 34.75‰ हो जाती है। परन्तु 20^0 दक्षिण अक्षांश पर सतही लवणता 37% है जो तली में घटकर 35‰ हो जाती है। इसके ठीक विपरीत भूमध्य रेखा पर सतही लवणता 34‰पायी जाती है जो गहराई में बढ़कर 35‰ हो जाती है।
हिन्द रख प्रशांत महासागर में लवणता के लम्बवत वितरण में समानता पायी जाती है। लवणता में 2000 मीटर तक वृद्धि होती है, उसके बाद धीरे-धीरे कम होती जाती है।
सामान्यत: यह पाया गया है कि उच्च अक्षांशों में सतही लवणता कम तथा गहराई में बढ़ती जाती है। मध्य अक्षांशों में 400 मीटर तक लवणता में वृद्धि तथा उसके पश्चात् कम होती जाती है। भूमध्य रेखा पर सतही लवणता कम, गहराई में अधिक तथा तली में पुन: कम होती है।

बोध प्रश्न- 3

10 शब्दों में उत्तर दीजिये।

1. महासागरीय लवणता के प्रमुख स्रोत बताइये?

   ....

   ....

2. वाष्पीकरण एवं लवणता में क्या संबंध है?

   ....

   ....

3. विद्वानों के अनुसार पृथ्वी उत्पत्ति पश्चात् उसकी प्रथम पपड़ी पर (Crust) किस खनिज की मात्रा सर्वाधिक थी?

……………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………

13.5 आंशिक बन्द सागर (Partially Enclosed Seas)

आंशिक बन्द सह वे जलराशियाँ होती हैं जो आंशिक रूप से दो या तीन तरफ से स्थलीय भागों द्वारा घिरी होती हैं। इन जल राशियों के जल में भली प्रकार से सम्मिश्रण न होने के कारण लवणता में अन्तर पाया जाता है। भूमध्य सागर के जिब्राल्टर जलडमरूमध्य पर लवणता $36.5\textperthousand_0$ मिलती है यह लवणता पूर्व की ओर बढ़ती हुई सीरिया तट पर $39\textperthousand_0$ हो जाती है। लाल सागर से दक्षिण की ओर लवणता $36.5\textperthousand_0$ तथा स्वेज की खाड़ी के पास $41\textperthousand_0$ पायी जाती है। यह लवणता की अधिक मात्रा वाष्प के अधिक बनने व वर्षा के कम होने के कारण है। काला सागर में लवणता $18\textperthousand_0$ तथा ओजोव सागर में इससे भी कम पायी जाती है। इनमें स्वच्छ जल की नदियां स्वच्छ जल की आपूर्ति करती हैं। बाल्टिक सागर उच्च अक्षांशों में स्थित है, जिससे वाष्पन कम होता है तथा हिम के पिछले जल की अधिक प्राप्ति होने से लवणता की मात्रा कम पायी जाती है। बाल्टिक सागर की औसत लवणता $7\textperthousand_0$ पायी जाती है। मैक्सिको की खाड़ी तथा कैरिबियन सागर में लवणता $3\textperthousand_0$पायी जाती है। फारस की खाड़ी में लवणता $37\textperthousand_0$ तथा आन्तरिक भाग में $40\textperthousand_0$पायी जाती है।

13.6 स्थलबद्ध सागर (Landlocked Seas)

स्थलबद्ध या अन्त स्थलीय सागर वे जल राशियाँ होती हैं जिनका संबंध महासागरों से नहीं होता है तथा वे चारों तरफ से स्थलीय भागों से घिरे होते हैं। जिन स्थलबद्ध सागरों में नदियां आकर मिलती हैं तथा उनका निकास भी होता है, उनमें लवणता की मात्रा बहुत कम पायी जाती हैं। इसके विपरीत अगर इन सागरों से नदियों का निकास नहीं होता तो यहां लवणता की मात्रा अधिक पायी जाती है। ऐसे स्थलबद्ध सागरों में महासागरों की अपेक्षा लवणता बहुत अधिक पायी जाती है। ग्रेट सॉल्टलेक में जल की लवणता $220\textperthousand_0$, टर्की की लेक वान में लवणता लवणता स्तर $330\textperthousand_0$ तथा मृत सागर में $237\textperthousand_0$ लवणता पायी जाती है। कैस्पियन सागर के उत्तर में नदियों के मुहाने बनाने के कारण लवणता मात्रा $13^{o/oo}$ तथा दक्षिणी पूर्वी भागों में $170\textperthousand_0$पायी जाती है। इन दक्षिण पूर्वी भागों में अर्द्ध शुष्क जलवायु होने के कारण वाष्पन अधिक होता है तथा लवणता की मात्रा भी अधिक अंकित की जाती है।

बोध प्रश्न- 4

10 शब्दों में उत्तर दीजिये -

1. महासागरीय लवणता किस प्रतिरूप में दर्शाई जाती है?

   ……………………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………………

2. भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर लवणता में क्या बदलाव आता है?

....

....

3. उत्तरी गोलार्द्ध एवं दक्षिणी गोलार्द्ध की औसत लवणता बताइये।

....

....

4. विश्व में सर्वाधिक लवणता कहां पायी जाती है?

....

....

13.7 लवणता में असमानता के कारण (Causes of inequalities in salinity)

विभिन्न महासगरों, आशिक बन्द एवं स्थलबद्ध सागरों या झीलों में लवणता का वितरण बहुत असमान पाया जाता है। इतना ही नहीं एक महासागर या समुद्र के विभिन्न भागों में लवणता वितरण में अंतर पाया जाता है। महासागरों, समुद्रों तथा झीलों में लवणता की मात्रा को प्रभावित करने वाले 'नियंत्रक कारक' (Controlling factors) निम्नलिखित है -

(i) **वाष्पीकरण (Evaporation) -** वाष्पीकरण सौर्यताप पर निर्भर करता हैं। अधिक ताप, अधिक वाष्पन एवं कम ताप कम वाष्पन से सम्बन्धित है। वाष्पन क्रिया द्वारा जल वाष्प वायुमण्डल में विलीन हो जाती है, लवण जल में शेष रह जाते हैं। इससे लवणता का अनुपात बढ़ता जाता है। भूमध्य रेखा पर तापमान व सापेक्षिक आर्द्रता दोनों अधिक पाये जाते हैं। आर्द्ता अधिक होने एवं बादलों की अधिकता के कारण यहां वाष्पीकरण की दर कम पायी जाती है। कर्क एवं मकर रेखाओं पर वायु के अवतलन के कारण प्रतिचक्रवातीय दशाएं बनी रहती हैं जिससे वायुमण्डल शुष्क एवं आकाश मेघ रहित पाया जाता है। इसी कारण से इन क्षेत्रों में वाष्पीकरण सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है जिससे लवणता की मात्रा भी यहां सर्वाधिक होती है। ध्रुवीय क्षेत्रों में तापमान एव वाष्पन कम होने से लवणता की मात्रा भी बहुत कम पायी जाती है। महासागरों में वाष्पीकरण की मात्रा वुस्ट के अनुसार प्रतिवर्ष 93 सेंटीमीटर एवं श्मिट के अनुसार 74 सेंटीमीटर अंकित की गई है।

(ii) **वर्षा (Rainfall) -** वर्षा द्वारा स्वच्छ या मीठे जल की प्राप्ति होती है, अत: अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में लवणता कम एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में लवणता अधिक पायी जाती है। इसीलिए भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में लवणता कम एवं कर्क-मकर रेखाओं पर लवणता अधिक पायी जाती है। हिमवर्षण का प्रभाव भी जल वर्षण के समान ही होता है। ध्रुवीय एवं उपध्रुवीय क्षेत्रों में हिमवर्षा द्वारा प्राप्त जल के कारण लवणता कम पायी जाती है।

(iii) **नदियों का जल (Raver Water) -** नदियों के जल में लवण (सोडियम क्लोराइड) कम पाये जाते हैं। जिन सागरों एवं महासागरों में नदियों द्वारा मुहाने बनाये जाते हैं,

उन क्षेत्रों में तुलनात्मक रूप से लवणता कम पायी जाती है। गंगा, अमेजन, काँगो, मिसीसिपी आदि नदियों के मुहाने पर स्वच्छ जल की प्राप्ति के कारण लवणता की मात्रा कम अंकित की जाती है।

(iv) **पवनों की दिशा (Wind Direction) -** निरन्तर एक ही दिशा में पवन के चलने का प्रभाव भी लवणता को प्रभावित करता है। व्यापारिक पवनों द्वारा महासागरों का जल पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग में एवं पछुआ पवनों द्वारा महासागरों का जल पश्चिमी भाग से पूर्वी भाग में ले जाया जाता है। व्यापारिक पवनें पश्चिमी भागों में तथा पछुआ पवनें पूर्वी भागों में लवणता की मात्रा में वृद्धि करती हैं। अत: स्थाई पवनों के क्षेत्रों में पूर्वी एवं पश्चिमी भागों में लवणता में भिन्नता देखने को मिलती हैं।

(v) **महासागरीय गतियां (Oceanic Movements) -** महासागरीय गतियों जैसे धाराओं, ज्वारीय तरंगों एवं संवाहनीय धाराओं द्वारा भी लवणता में बदलाव आता है। भूमध्यरेखीय गर्म धाराएं महाद्वीपों के पश्चिमी भागों से लवणता को पूर्वी भागों में पहुंचा कर वहाँ की लवणता में वृद्धि करती हैं। मैक्सिको की खाड़ी में इसी कारण से लवणता अधिक पायी जाती है। गल्फस्ट्रीम रण क्यूरोसीवो की उष्ण धाराएं अपने साथ लवणयुक्त जल बहाकर ध्रुवों की ओर ले जाती हैं, जिसके फलस्वरूप यहाँ पर लवणता की मात्रा अधिक पायी जाती है। ज्वारीय तरंगें भी जल में लवणता के अन्तर को प्रभावित करती हैं। संवाहनिक धाराएं महासागरों में लम्बवत गति उत्पन्न करती हैं। इससे जल का कहीं अपसरण तो कहीं अभिसरण होता है लेकिन यह गति महासागरों में प्रत्येक स्थान पर सुचारू रूप से नहीं होने के कारण लवणता में अंतर पाया जाता हैं।

(vi) **मौसमी परिवर्तन (Seasonal Change) -** मौसमी परिवर्तन के फलस्वरूप पृथ्वी के सभी भागों में तापमान बदलते रहते हैं, यहाँ तक कि एक ही अंक्षाश पर शीतकाल में ठण्डा एवं ग्रीष्मकाल में गर्म मौसम पाया जाता है। तापमान बढ़ते व घटने के कारण एक ही अंक्षाश पर लवणता में भी अंतर आ जाता है, यानि ग्रीष्मकाल में लवणता अधिक एवं शीतकाल में लावणता कम पायी जाती है। इसी प्रकार सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन होने से भी उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों में लवणता की मात्रा बढ़ती घटती रहती है।

बोध प्रश्न- 5

1. जेनकिन्स नामक विद्वान ने महासागरों एवं समुद्रों में पायी जाने वाली लवणता के .... वर्ग निश्चित किये।
2. लवणता में सर्वाधिक असमानता................. महासागर में पायी जाती है।
3. नदियों के.................................. पर लवणता बहुत कम पायी जाती है।
4. हिन्द महासागर के उत्तरी-पूर्वी भागों में कम लवणता पाये जाने के क्या कारण हैं?

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

5. हिन्द महासागर के उत्तरी-पश्चिमी भागों में अधिक लवणता के क्या कारण हैं?

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

सही/गलत में उत्तर दीजिये -

6. लम्बवत लवणता वितरण एवं गहराई में अत्यधिक जटिलताएं पायी जाती हैं।

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

7. महासागरों व आशिक बंद समुद्र की लवणता में भारी समानता पायी जाती है।

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

8. स्थलबद्ध समुद्रों का सम्बद्ध...................................... से नहीं होता है।

9. वान झील का लवणता स्तर................................... होता है।

10. ग्रेट सॉल्ट लेक संयुक्त राज्य अमेरिका के......................... राज्य में स्थित है।

11. कैस्पियन सागर के उत्तरी भागों में लवणता का स्तर....................... एवं दक्षिण भाग में लवणता का स्तर................................ पाया जाता है।

12. महासागरीय लवणता में असमानता के दो प्रमुख कारण बताइये।

…………………………………………………………………………………………….

13. नदियों के मुहानों पर लवणता स्तर कम क्यों पाया जाता है?

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

14. गल्फ स्ट्रीम गर्म जलधारा किस प्रदेश की लवणता स्तर को बढ़ाती है?

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

15. स्थायी पवनें लवणता को कैसे प्रभावित करती हैं?

…………………………………………………………………………………………….

…………………………………………………………………………………………….

13.8 सारांश

हमारी पृथ्वी जलीय ग्रह है। इस पर 70.8% जल की उपस्थिति है। जिसका अधिकांश भाग महासागरों, समुद्रों में पाया जाता है। महासागरीय जल में लवणता की मात्रा अधिक होती है। इसलिए यह पीने योग्य नहीं होता है। वर्तमान में इस महासागरीय खारे जल को नयी तकनीकों से

फिल्टर कर पीने योग्य बनाया जा रहा है लेकिन ये तकनीक बहुत महंगी है। महासागरों में उपस्थित खारेपन पर वैज्ञानिकों में मतभेद पाये जाते हैं। महासागरीय जल में 7 प्रकार के मुख्य खनिज लवण पाये जाते हैं जिनमें सोडियम क्लोराइड सर्वाधिक मात्रा में होता है। महासागरों का औसत खारापन 35‰ से 37‰ (प्रति हजार ग्राम) अंकित किया गया है। लवणता का क्षैतिज एवं लम्बवत प्रकार से वितरण किया जाता है। क्षैतिज वितरण में अक्षांशीय एवं प्रादेशिक तरीकों से लवणता वितरण को समझा जाता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि आशिक एवं स्थलबद्ध समुद्रों में लवणता की मात्रा खुले महासागरों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। महासागरों व समुद्रों में लवणता का प्रदर्शन समलवणता रेखाओं की सहायता से किया जाता है। ये समलवण रेखाएं समान लवणयुक्त स्थानों को जोड़ने का कार्य करती हैं। लवणता के असमान वितरण को वाष्पीकरण, वर्षा, जल, नदियो का जल, पवन दिशा एवं सागरीय जल गतियां आदि कारक प्रभावित करते हैं।

13.9 शब्दावली

लवणता	:	सागरीय जल में लवणों की मात्रा
समलवण रेखाएँ	:	समान लवणता के स्थानों को मिलाने वाली रेखाएँ
स्थलबद्ध सागर	:	स्थल से घिरे हुए जलाशय
आंशिक बन्द सागर	:	खुले महासागरों से संकड़े जलमार्ग द्वारा जुड़े हुए सागर

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गौतम : 'जलवायु एवं समुद्र विज्ञान' रस्तौगी एण्ड कम्पनी मेरठ, 2006
2. लाल : 'जलवायु एवं समुद्र विज्ञान' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003
3. सिंह : 'भौतिक भूगोल' वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006
4. कुलश्रेष्ठ, कामता प्रसाद : 'समुद्र विज्ञान' किताब घर, कानपुर।

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1.हां 2. हां 3. हां 4. हां

बोध प्रश्न- 2

1. 1884 2. सोडियम क्लोराइड

3. 50 अरब टन 4. 33 से 37 नदियों

बोध प्रश्न- 3

1. महासागरीय लवणता के प्रमुख स्रोत नदियां एवं वाष्पीकरण है।
2. अधिक वाष्पीकरण अधिक लवणता, कम वाष्पीकरण कम लवणता का संबंध।

3. पृथ्वी उत्पत्ति पश्चात् प्रथम पपड़ी पर सर्वाधिक लवणता वाले खनिज थे।

बोध प्रश्न- 4

1. महासागरीय लवणता को क्षैतिज एवं लम्बवत प्रतिरूप में दर्शाया जाता है।
2. भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर तापमान एवं लवणता स्तर में कमी आती जाती है।
3. उत्तरी गोलार्द्ध 34 एवं दक्षिण गोलार्द्ध 35 प्रति हजार ग्राम औसत लवणता स्तर रखते हैं।
4. विश्व में सर्वाधिक लवणता लेक वॉन (टर्की) 330 प्रति हजार ग्राम में पायी जाती है।

बोध प्रश्न- 5

1. तीन वर्ग 2. अटलांटिक महासागर
2. मुहानों पर
3. हिन्द महासागर के उत्तरी पूर्वी भागों में वर्षा अधिक एवं बड़ी संख्या में नदियों द्वारा मुहाने बनाये जाते हैं।
4. हिन्द महासागर के उत्तरी पश्चिमी भागों में कम वर्षा एवं अधिक वाष्पीकरण पाया जाता है।
5. सही
6. गलत
7. महासागरों से 9. 330
8. यूटाह राज्य में। 11. 13 एवं 17 प्रति हजार ग्राम
9. महासागरीय लवणता में असमानता वाष्पीकरण एवं वर्षा की मात्रा से प्रभावित होता है।
10. नदियों द्वारा स्वच्छ जल महासागरों में लाया जाता है जिससे मुहानों पर लवणता स्तर कम होता है।
11. गल्फस्ट्रीम गर्म जल धारा नार्वे के तटीय प्रदेशों की लवणता स्तर को बढ़ाती है।
12. स्थायी पवनें अधिक लवणता वाले जल को कम लवणता वाले क्षेत्रों में ले जाकर लवणता स्तर बढ़ाती हैं।

13.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लवणता का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके स्रोतों की व्याख्या कीजिये।
2. लवणता के अक्षांशीय एवं प्रादेशिक वितरण को समझाइये।
3. विभिन्न महासागरों में पायी जाने वाली क्षैतिज एवं लम्बवत् लवणता को स्पष्ट कीजिये।
4. महासागरीय एवं सागरीय लवणता की असमानता को नियंत्रित करने वाले कारक बताइये।

इकाई 14 : महासागरीय जल का संचलन : लहरें, ज्वार एवं धाराएँ

इकाई संरचना

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना लहरें
14.2 लहरें
 14.2.1 लहरों की संरचना
 14.2.2 लहरों की उत्पत्ति के कारण
 14.2.3 अन्य लहरें
14.3 ज्वार
 14.3.1 ज्वार का तात्पर्य
 14.3.2 ज्वार को नियंत्रित करने वाले कारक
 14.3.3 ज्वरोत्पादक शक्तियाँ
 14.3.4 ज्वारभाटा आने का समय
14.4 धाराएँ
 14.4.1 धाराओं की उत्पत्ति
 14.4.2 उत्तरी अटलाण्टिक महासागर की धाराएँ
 14.4.3 दक्षिणी अटलाण्टिक महासागर की धाराएँ
 14.4.4 प्रशान्त महासागर की धाराएँ
 14.4.5 हिन्द महासागर की धाराएँ
 14.4.6 धाराओं का प्रभाव
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 संदर्भ ग्रन्थ
14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं -

- महासागरीय लहरों की उत्पत्ति तथा उनके संचलन की जानकारी देना,
- महासागरों में ज्वार - भाटा की उत्पत्ति, प्रकार आदि का विस्तार से वर्णन करना तथा
- महासागरीय धाराओं के प्रकार, वितरण आदि से अवगत कराना।

14.1 प्रस्तावना

महासागरीय जल स्थिर न रहकर गतिमान रहता है। महासागरीय जल में क्षैतिज तथा उर्ध्वाधर दोनों प्रकार की गतियाँ पायी जाती हैं। महासागरों में क्षैतिज गति लवणता एवं तापमान में अन्तर, जल के घनत्व में भिन्नता तथा पवन वेग के कारण उत्पन्न होती है। महासागरीय लहरें व धाराएँ क्षैतिज गति से सम्बन्धित हैं। ज्वार-भाटा उर्ध्वाधर गति से सम्बन्धित है। सूर्य एवं चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल तथा पृथ्वी के अपकेन्द्रीय बल के कारण महासागरीय जल एक दिन में दो बार ऊपर उठता तथा नीचे गिरता है जिसे क्रमश: ज्वार व भाटा कहा जाता है।

14.2 लहरें

लहरें या तरंगें महासागरीय जल की सबसे व्यापक गति होती है। पवनों के कारण जल की सतह पर गति होने तथा जल के आगे बढ़ने व पीछे लौटने की क्रिया को लहर कहा जाता है। लहर में सामान्यत: जल आगे की ओर बढ़ता दिखाई देता है, किन्तु वास्तव में जल बिन्दु आगे नहीं बढ़ते, अपितु एक स्थान पर ही जल ऊपर नीचे तथा आगे पीछे होते रहते है। इसे जल की दोलन गति (Oscillation) कहा जाता है।

14.2.1 लहरों की संरचना (Structure of Waves)

दोलन गति के कारण महासागरीय जल ऊपर नीचे होता रहता है। परिणामस्वरूप लहरों को दो भागों में विभाजित किया जाता है। उच्चतम भाग शिखर (Crest) तथा सबसे निचला भाग गर्त (Trough) कहलाता है। शिखर व गर्त के मध्य अन्तर को लहर की ऊँचाई तथा दो शिखरों या दो गर्तों के मध्य की दूरी को तरंग की लम्बाई कहते हैं।

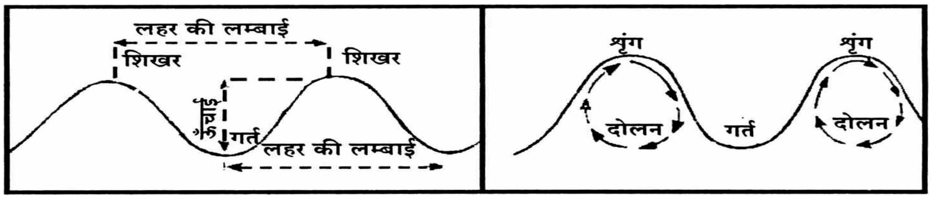

चित्र- 14.1 : तरंग संरचना

14.2.2 लहरों की उत्पत्ति के कारण

लहरों या तरंगों का आकार, आकृति तथा उत्पत्ति को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं -

(i) **पवनों की गति:** पवनों की गति जल को ऊर्जा प्रदान करती है जिससे लहरें उत्पन्न होती हैं। वायु के कारण लहरें महासागर में गति करती हैं तथा ऊर्जा तटरेखा पर समाप्त (निर्मुक्त) होती है।

(ii) **सागर का विस्तार** : विस्तृत तथा खुले महासागरों में लहरें बिना किसी बाधा के प्रवाहित होती हैं। लहर जब महासागर तट के समीप पहुँचती है तो उसकी गति कम हो जाती है। ऐसा गत्यात्मक जल के मध्य घर्षण होने के कारण होता है तथा जब जल की गहराई तरंग के तरंगदैर्ध्य के आधे से कम होती है तब तरंग टूट जाती है।

14.2.3 अन्य लहरें

सामान्य तरंगों के अतिरिक्त अन्य तरंगें भी होती हैं जो अपेक्षाकृत अधिक विनाशकारी होती हैं। ये निम्न हैं -

(i) **सुनामी (Tsunamis) :** भूकम्प के प्रभाव से सागरीय भागों में उत्पन्न होने वाली काफी ऊँची तथा तीव्र गति वाली लहरों को सुनामी के नाम से जाना जाता है। ये तटीय भागों में पहुँच कर काफी जान और माल का नुकसान करती हैं। 26 दिसम्बर 2004 को इण्डोनेशिया के सुमात्रा द्वीप के समुद्र की तलहटी के 40 कि.मी. नीचे भूकम्प के कारण समुद्री जल से उठने वाली सुनामी लहरों के द्वारा दक्षिणी पूर्वी एशिया के इण्डोनेशिया, मलेशिया, थाइलैण्ड, भारत, श्रीलंका व मालद्वीप जैसे देशों में करीब डेढ़ लाख लोगों को जान गँवानी पड़ी।

(ii) **तूफानी लहरें (Stormy Waves) :** सागरीय जल में भँवर की भाँति अस्थिर और परिवर्तनशील हवाओं के भँवर के परिणामस्वरूप चक्रवातों की उत्पत्ति होती है, जिनसे इन तूफानी लहरों की उत्पत्ति होती है। मानसून, चक्रवात तथा हरिकेन के प्रभाव से हानिकारक तूफान आते हैं। ऐसी तरंगों से आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा व बांग्लादेश आदि के तटीय भागों में हानि होती है।

बोध प्रश्न - 1

1. लहर क्या है? .

   ……………………………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………………………

2. महासागरीय लहरों से ऊर्जा कैसे उत्पल होती है?

   ……………………………….……………………………………………………………..

   ……………………………………………………………………………………………

3. लहर का शिखर किसे कहा जाता है?

   ……………………………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………………………

4. सुनामी क्या है?

   ……………………………………………………………………………………………

   ……………………………………………………………………………………………

14.3 ज्वार

ज्वार-भाटा समुद्र की लम्बवत् गतियों के द्योतक हैं। जब सूर्य तथा चन्द्रमा की गुरूत्वाकर्षण शक्ति अथवा पृथ्वी के अपकेन्द्रीय बल के फलस्वरूप जल ऊपर उठता है तब उसे ज्वार कहा जाता है। इसके विपरीत जब समुद्र का जल नीचे गिर जाता है उसे भाटा कहते हैं। समुद्र का जल

निरन्तर एक दिन अर्थात् 24 घण्टे और 52 मिनिट में दो बार ऊपर उठता है तथा दो बार नीचे गिरता है।

विस्तृत खुले महासागरों में ज्वार भाटा के जल स्तरों का अन्तर कम (0.3 से 0.6 मीटर) होता है, किन्तु कम गहरे तटीय भागों में अन्तर 10 मीटर तक पाया जाता है। भारत में ज्वारों की ऊँचाई के अन्तर को ओखा (गुजरात) के उदाहरण द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जहाँ ज्वार की ऊँचाई 2 - 5 मीटर पायी जाती है। फण्डी की खाड़ी (Bay of Fundy, U.S.A.) में ज्वार की ऊँचाई 15 से 18 मीटर के बीच होती है।

ज्वार की प्रकृति और परिणाम को नियन्त्रित करने वाले कारक हैं - पृथ्वी के सन्दर्भ में चन्द्रमा की स्थिति, पृथ्वी के सन्दर्भ में चन्द्रमा और सूर्य की स्थिति में परिवर्तन, पृथ्वी पर जल का अनियमित वितरण, समुद्रों की आकृति में असमानताएँ आदि।

14.3.3 ज्वारोत्पादक शक्तियाँ

न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्तानुसार विश्व में सभी पिण्ड एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। यह बल पिण्डों के द्रव्यमान के गुणनफल का अनुक्रमानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युतक्रमानुपाती होता है। खगोलीय पिण्डों के द्रव्यमान की अधिकता के कारण उनके मध्य आकर्षण बल का परिणाम काफी अधिक होता है। इसी बल के कारण इन पिण्डों में आवश्यक अभिकेन्द्रीय बल (Centripetal Force) उत्पन्न होता है। परिणामत: पृथ्वी सूर्य के चारों ओर तथा चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करता है।

सूर्य का आयतन चन्द्रमा की अपेक्षा 2 करोड़ 60 लाख गुना अधिक है परन्तु चन्द्रमा पृथ्वी के केन्द्र से 3.87 लाख कि.मी. तथा ऊपरी सतह से 3.79 लाख किमी दूर है। पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी 14,90,00,000 कि.मी. है जो चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य की दूरी की अपेक्षा 380 गुणा अधिक है। अत: सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण अधिक प्रभावी होता है। परिणामत: ज्वार भाटा की उत्पत्ति में सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण बल अधिक महत्वपूर्ण होता है।

ज्वार की उत्पत्ति

महासागरों के जल स्तर में नियमित रूप से ऊपर उठने व नीचे गिरने की क्रिया उत्पन्न करने में दो शक्तियों का योगदान होता है -

1. **गुरूत्वाकर्षण बल (Gravitational Force) :** सूर्य व चन्द्रमा के गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है किन्तु स्थल की अपेक्षा जल अधिक आकर्षित होता है। इस कारण चन्द्रमा के ठीक सामने वाले भाग पर समुद्र का जल ऊपर उठता है।
2. **अपकेन्द्रीय बल (Centrifugal Force) :** अपनी धुरी पर घूमती हुई प्रत्येक वस्तु में अपकेन्द्रीय बल होता है। इस बल के कारण प्रत्येक पदार्थ अपने घूर्णन के केन्द्र से दूर जाने की प्रवृत्ति रखता है जिसके प्रभाव में विपरीत ओर ज्वार आते हैं।

चित्र – 14.2 : गुरुत्वाकर्षण बल एवं अपकेन्द्रीय बल

14.3.4 ज्वार भाटा आने का समय

सामान्यत: महासागरीय तटों पर चौबीस घण्टों में दो बार ज्वार आता है। प्रतिदिन आने वाले इन दो ज्वारों में से एक प्रत्यक्ष ज्वार एवं एक अप्रत्यक्ष ज्वार होता है। पृथ्वी के 24 घण्टे में अपना परिभ्रमण पूरा कर लेने के कारण सैद्धान्तिक रूप से एक प्रत्यक्ष ज्वार के बाद दूसरा प्रत्यक्ष ज्वार भी 24 घण्टे बाद आना चाहिए। लेकिन वास्तव में अगला ज्वार 24 घण्टे 52 मिनट के बाद आता है। इस विलम्ब का मुख्य कारण चन्द्रमा की पृथ्वी के चारों ओर की जाने वाली परिक्रमण गति है जैसा कि चित्र - 14.3 में दर्शाया गया है। मान लीजिए इस चित्र के अनुसार स्थान अ पर आज मध्याह्न 12 बजे

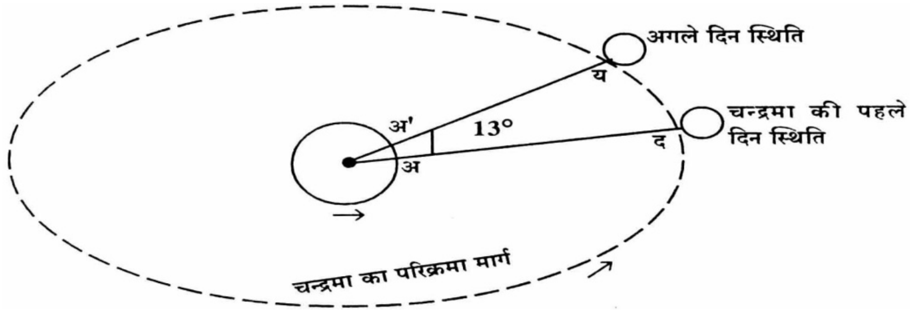

चित्र 14.3 : ज्वार आने के समय में अन्तर

ज्वार आया है, तो अगले दिन ज्वार आया है, तो अगले दिन उसी स्थान पर 12 बजकर 52 मिनट पर आयेगा। इन 24 घण्टों में चन्द्रमा अपने परिक्रमण मार्ग पर स्थान द से य तक आगे बढ़ जाता है। अत: अब स्थान अ को चन्द्रमा के सम्मुख आने के लिये 52 मिनट का अतिरिक्त समय लगता है। चन्द्रमा प्रतिदिन अपने अतिरिक्त समय लगता है। इसी प्रकार किसी स्थान पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष ज्वार के मध्य 26 मिनट का अन्तर पड़ता है।

ज्वार भाटा के प्रकार

वृहत् ज्वार - पृथ्वी, चन्द्रमा एवं सूर्य तीनों ग्रहों के एक सीधी रेखा में आने पर वृहत् ज्वार उत्पन्न होते हैं। यह स्थिति प्रत्येक पूर्णिमा एवं अमावस्या को होती है। तीनों ग्रहों के एक सीध में आ जाने के कारण गुरूत्वाकर्षण बल का सागरीय जल पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अत: जल में सर्वाधिक उठाव आता है। इसे वृहत् ज्वार कहते हैं जो चित्र संख्या 14. 4 में दर्शाया गया है।

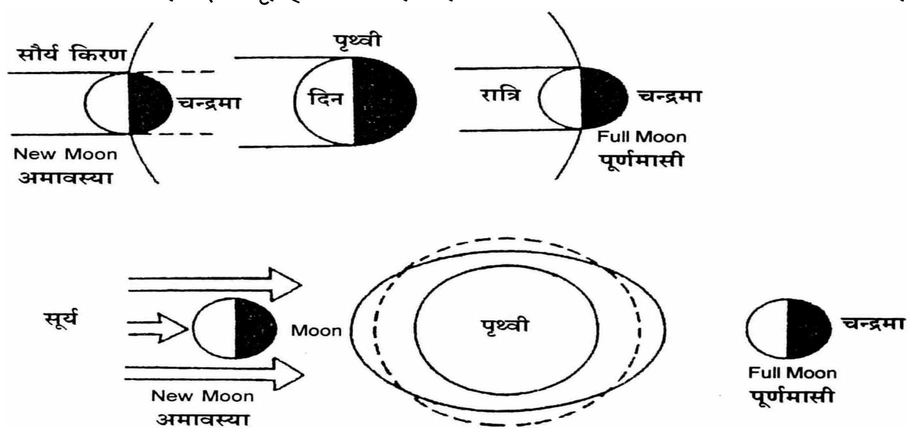

चित्र 14.4 : वृहत् ज्वार

अमावस्या के दिन ग्रहों की स्थिति क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के क्रम में होती है। प्रत्यक्ष ज्वार वाले स्थान पर सूर्य व चन्द्रमा का सम्मिलित गुरूत्वाकर्षण प्रभाव 20 प्रतिशत है। अनुमानत : इस स्थिति में ज्वार की ऊँचाई सामान्य से 20 प्रतिशत अधिक होती है ।

लघु ज्वार (Neap Tide)

पूर्णिमा व अमावस्या को छोड़कर अन्य किसी भी दिन तीनों ग्रह एक रेखा में नहीं आते। अत: उनकी सम्मिलित शक्तियाँ अन्य किसी भी दिन कार्य नहीं करती। चन्द्रमा की अपने परिक्रमण मार्ग पर बदलती हुई स्थितियों के कारण इन ग्रहों के बल बँट जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ज्वार की ऊँचाई अपेक्षाकृत कम रहती है। अष्टमी के दिन सूर्य व चन्द्रमा का गुरूत्वाकर्षण बल पृथ्वी पर एक दूसरे के समकोण पर कार्य करते हैं। अत: इस शक्ति का प्रभाव न्यूनतम हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप लघु ज्वार आते हैं। लघु ज्वार सामान्य से लगभग 20 प्रतिशत कम ऊँचे होते हैं।

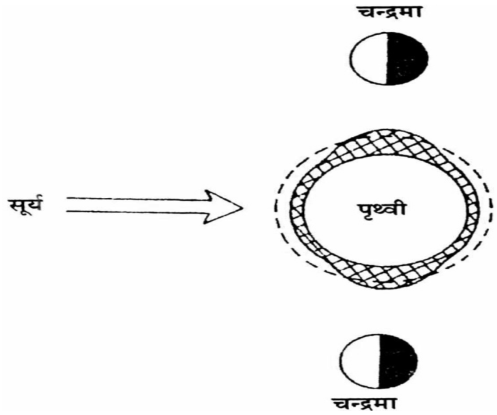

चित्र 14.5 : लघु ज्वार

अपभू ज्वार एवं उपभू ज्वार (Apogean and Perigean Tide)

चन्द्रमा अपनी दीर्घवृत्ताकार कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अत: वह कभी पृथ्वी के समीपस्थ तो कभी दूरस्थ होता है। जब चन्द्रमा पृथ्वी के समीपस्थ दूरी अर्थात् 3,56,000 कि. मी. पर स्थित होता है तो उपभू (Perigy) और अधिकतम दूरी अर्थात् 4,07,000 कि.मी. पर स्थित होता है तो उसे अपभू स्थिति (Apogee) कहा जाता है। उपभू स्थिति में सामान्य ज्वारों की अपेक्षा 20 प्रतिशत अधिक ऊँचा होता है। इसके विपरीत चन्द्रमा की अपभू स्थिति में उत्पन्न ज्वारों की ऊँचाई सामान्य से 20 प्रतिशत कम

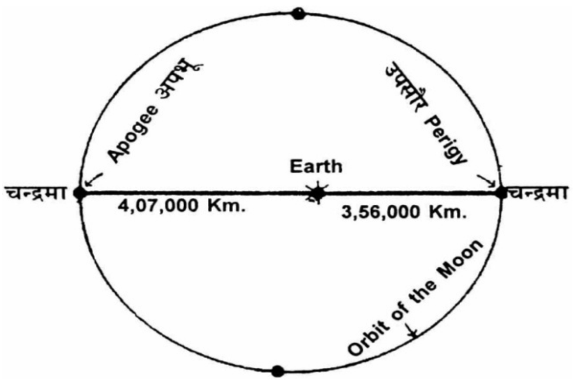

चित्र 14.6 : चन्द्रमा व पृथ्वी की सापेक्षिक स्थितियाँ

दैनिक ज्वार (Diurnal Tide)

किसी एक बल के द्वारा एक दिन में एक बार उत्पन्न ज्वार को दैनिक ज्वार कहते हैं। ऐसे ज्वार 24 घण्टे 52 मिनिट के अन्तराल पर उत्पन्न होते हैं।

अर्द्ध दैनिक ज्वार (Semi Diurnal Tide)

किसी स्थान पर दिन में दो बार आने वाले ज्वारों को अर्द्ध दैनिक ज्वार कहते हैं। प्रत्येक ज्वार 12 घण्टे 26 मिनिट बाद आता है।

मिश्रित ज्वार (Mixed Tide)

किसी स्थान पर आने वाले असामन अर्द्ध दैनिक ज्वार को "मिश्रित ज्वार" कहते हैं अर्थात् दिन में दो ज्वार तो आते हैं, परन्तु एक ज्वार की ऊँचाई दूसरे ज्वार की अपेक्षा कम तथा एक भाटे की नीचाई दूसरे की अपेक्षा कम होती है।

ज्वार भाटा की उत्पत्ति की परिकल्पनाएँ

संतुलन सिद्धान्त (Equilibrium Theory)

सन् 1687 ई. में ज्वार भाटा की उत्पत्ति की व्याख्या करने हेतु सर आइजक न्यूटन ने सन्तुलन साध्य को प्रतिपादित किया। इन्होंने पहली बार बतलाया कि प्रत्येक आकाशीय पिण्ड परस्पर गुरुत्वाकर्षण के द्वारा अपने स्थान पर टिका हुआ है। सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा भी इसी गुरूत्वाकर्षण बल से अपनी अपनी कक्षाओं में निरन्तर गतिशील हैं। यद्यपि सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल चन्द्रमा से अधिक है, किन्तु पृथ्वी के अत्यधिक करीब होने के कारण चन्द्रमा के आकर्षण बल का प्रभाव पृथ्वी की सतह पर सूर्य की अपेक्षा अधिक होता है।

आलोचना - न्यूटन के सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की गई है कि पृथ्वी पर जल और स्थल दोनों पाए जाते हैं। अत: चन्द्रमा के आकर्षण बल का प्रभाव उतना सक्रिय नहीं हो सकता जितना की केवल जल पर। अत: ज्वार के समय जल का ऊपर उठना बिना किसी क्षैतिज गति के सम्भव नहीं है।

प्रगामी तरंग सिद्धान्त (Progressive Wave Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1833 ई. में विलियम हेवैल ने किया। इस सिद्धान्त के अनुसार दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थल के अभाव के कारण दो विशाल ज्वारीय तरंगों की उत्पत्ति होती है। ये तरंगें चन्द्रमा से प्रेरित होकर पूर्व से पश्चिम की ओर आगे बढ़ती हैं। इन्हें प्राथमिक तरंगें कहते हैं। इन तरंगों के शिखरों को ज्वार तथा द्रोणियों को भाटा तथा निम्न ज्वार कहते हैं।

दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्पन्न ज्वारीय तरंगें जब पूरब से पश्चिम की ओर बढ़ती हैं, तब स्थल खण्डों के अवरोध के कारण इनकी स्थिति उत्तर की ओर होती जाती है। इस तरह दक्षिण में उत्पन्न होकर ये ज्वारीय तरंगें निरन्तर उत्तर की ओर गतिशील होती जाती हैं। उत्तर की ओर गतिशील तरंगों के शिखरों से उच्च ज्वारों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न स्थानों पर एक ही समय पर उत्पन्न होने वाले ज्वारों को प्रदर्शित करने वाली रेखाओं को समज्वारीय रेखाएँ (Co-tidal line) कहते हैं।

आलोचना - इस सिद्धान्त के अनुसार ज्वारीय तरंगें दक्षिणी महासागर से पूर्व से पश्चिम की ओर गतिशील होती है और उत्तर की ओर अग्रसर होती हैं। अत: उत्तर की ओर दूरी बढ़ने के साथ इनके पहुँचने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा। एक ही देशान्तर पर दक्षिण में स्थित स्थान की

अपेक्षा उत्तर में स्थित स्थान पर ज्वार देर से उत्पन्न होना चाहिए। किन्तु निरीक्षण के द्वारा देखा जाता है कि अटलाण्टिक महासागर में हॉर्न अन्तरीप से ग्रीनलैण्ड तक दीर्घ ज्वार का समय लगभग समान होता है। अत: ज्वार की उत्पत्ति को दक्षिण सागर में मान लेना तथा उनका उत्तर की ओर अग्रसर होना तर्कसंगत नहीं लगता।

अप्रगामी तरंग का सिद्धान्त (Stationary Wave theory)

अप्रगामी तरंग सिद्धान्त का प्रतिपादन आर ए. हैरिस नाम अमेरिकी वैज्ञानिक ने 19वीं सदी के दशक में किया था। इनके अनुसार पृथ्वी पर ज्वार भाटा की क्रिया दक्षिण महासागर से उठने वाली प्रगामी तरंगों के कारण नहीं होती। अपितु प्रत्येक महासागर में स्वतंत्र रूप से ज्वार भाटे के उत्पत्ति होती है।

हैरिस ने अपने सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिए एक प्रयोग किया। इनके अनुसार एक छिछले आयताकार बेसिन को धक्का दिया जाए तो एक सिरे की ओर जल की सतह ऊपर उठ जायेगी और दूसरे सिरे का जल स्तर नीचा हो जायेगा। इसके परिणामत: जल में दोलन क्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। इसे स्थायी तरंग कहते हैं। पात्र के केन्द्रीय भाग में जल के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस बिन्दु को केन्द्रीय बिन्दु कहते हैं। पात्र में जल तल में परिवर्तन एक सीधी रेखा के सहारे होता है। इस रेखा को निस्पंद रेखा कहते हैं। इन तरंगों की दिशा और इनकी गतिशीलता पात्र में लगाये जाने वाले धक्के की प्रकृति पर निर्भर करती है। तरंग का दोलन उस पात्र की लम्बाई, गहराई तथा लगाये गये बल पर निर्भर करता है।

इस प्रकार हैरिस ने स्पष्ट किया कि पृथ्वी पर विभिन्न महासागर जल से भरे विभिन्न पात्रों के समान हैं। पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण बल के कारण समुद्रों में दोलन क्रिया चलती रहती है। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण स्थिर तरंगें एक सीधी रेखा में चलने की बजाय एक केन्द्र के चारों ओर चलती हैं। जिस कारण कई भंवर बिन्दु बन जाते हैं। इस बिन्दु पर महासागरीय जल तल समान तथा शांत रहता है तथा चारों और जल तल असमान रहता है। इसके चारों ओर तरंगें दाएँ से बाई ओर चक्कर लगाती हैं। इस तरह की क्रिया सभी महासागरों में होती है। इनका सम्मिलित रूप दोलन प्रणाली कहलाता है। इन तरंगों के शिखर और द्रोणी क्रमश: ज्वार और भाटा कहलाते हैं। दोलन से उत्पन्न तरंगों की दिशा और उनके वेग के अनुसार ज्वार का समय एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर आगे बढ़ता जाता है।

ज्वार भाटा महासागरीय जल की एक ऐसी गति है जिसका प्रभाव पर्यावरण तथा मानव दोनों पर पड़ता है। ज्वार भाटा मत्स्य उद्योग और जहाजरानी उद्योग को विशेष प्रभावित करता है। कोलकाता, लन्दन एवं अन्य बन्दरगाहों तक बड़े मालवाही पोतों को ज्वार के समय जल स्तर ऊँचा होने के समय पहुँचाया जाता है।

बोध प्रश्न- 2

1. ज्वार भाटा किसे कहते हें?

……………………………………………………………………………..

……………………………………………………………………………..

2 दीर्घ ज्वार से आप क्या समझते हैं?

..………………………………………………………………………………………………..

………………………………………….………………………………………………………..

3. लघु ज्वार से आप क्या समझते हैं?

……………………………………………………………..…………………………………………………..

…………………………………………………………………..…………………………………………………..

4. समज्वारीय रेखाएँ किन्हें कहते हैं?

…….…..

…………………………..……………………………..…………………………………………………………..

14.4 धाराएँ

स्थल पर नदियों की भाँति महासागरों में भी जल का प्रवाह एक स्थान से दूसरे स्थान पर होता रहता है। इन्हें महासागरीय धाराएँ कहा जाता है। गति के आधार पर धाराओं को दो भागों में बाँटा जाता है - (i) प्रवाह एवं (ii) धारा।

(1) प्रवाह (Drift)

प्रवाह में जल की गति अत्यन्त मन्द होती है। इसमें जल का प्रवाह काफी चौड़े व उथले रूप में होता है। उत्तरी अटलांटिक तथा दक्षिणी अटलांटिक प्रवाह इसके उदाहरण हैं।

(2) धारा (Currents)

इसमें प्रवाह एक निश्चित सीमा में, निश्चित दिशा में एवं तीव्र गति से होता है, जैसे क्यूरोसीवो, पीरू, बैंग्वेला आदि।

गुणों के आधार पर धाराएँ दो वर्गों में विभाजित की जाती हैं : (i) गर्म धाराएँ (ii) ठण्डी धाराएँ।

(i) **गर्म धाराएँ (Warm Currents) :** इन धाराओं में उष्ण क्षेत्रों का जल शीतल क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होता है। इन धाराओं की दिशा मोटे रूप से भूमध्यरेखीय प्रदेशों से ध्रुवीय प्रदेशों की ओर होती है।

(ii) **ठण्डी धाराएँ (Cold Currents) :** ठण्डे क्षेत्रों से उष्ण क्षेत्रों की ओर चलने वाल धाराएँ ठण्डी धाराएँ कहलाती हैं। ये सामान्यत: ध्रुवीय प्रदेशों से भूमध्य रेखीय प्रदेशों की ओर चला करती हैं। अपने साथ शीतल जल को प्रवाहित करने के कारण जिन क्षेत्रों से ये गुजरती हैं वहाँ तापमान में गिरावट लाती हैं।

14.4.1 धाराओं की उत्पत्ति (Origin of Currents)

धाराओं की उत्पत्ति में कई कारकों का योगदान होता है। इसमें से कुछ कारक महासागरीय धाराओं की दिशा एवं शक्ति को भी प्रभावित करते हैं। इन कारकों को चार मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है - (अ) महासागरीय कारक, (ब) बाह्य सागरीय कारक, (स) धाराओं की दिशा में परिवर्तन लाने वले कारक तथा (द) पृथ्वी से सम्बन्धित कारक ।

(अ) महासागरीय कारक

1. **तापमान की भिन्नता -** सूर्य ताप के वितरण में असमानता के कारण सागरीय जल प्रभावित होता है। तापमान की अधिकता के कारण भूमध्य रेखीय जल का घनत्व कम हो जाता है, और हल्का जल सतह के निकट जल ध्रुवों की ओर से अग्रसर होता है। ध्रुवीय ठण्डा भारी जल गहराई पर भूमध्य रेखा की ओर प्रवाहित होता है।
2. **लवणता में भिन्नता -** वाष्पीकरण के कारण लवणता तथा घनत्व में अन्तर आता है, इस अन्तर के कारण धाराओं की उत्पत्ति होती है।

(ब) बाह्य सागरीय कारक

1. **वायुदाब तथा पवनें** - पृथ्वी पर वायुदाब में भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता के कारण पवनों में गति उत्पन्न होती है। जब पवनें सागर की सतह पर होकर गुजरती हैं तो जल को गति प्रदान करती हैं। पवनों के घर्षण के कारण जल पवनों की दिशा में गतिशील हो जाता है।
2. **वाष्पीकरण तथा वर्षा की मात्रा -** वाष्पीकरण की मात्रा का सागरीय जल की लवणता तथा घनत्व पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। जहाँ वाष्पीकरण कम होता है, वहाँ लवणता और घनत्व कम होता है, सागरीय जल की सतह पर वर्षा का भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। अधिक वर्षा से सतह ऊँची और कम वर्षा से सतह नीची हो जाती है। सतह का नीचा-ऊँचा होना सागरीय जल के संचार पर प्रभाव डालता है, जिससे धाराएँ प्रवाहित होती हैं।

(स) धाराओं दिशा में परिवर्तन लाने वाले कारक

1. **महाद्वीपों के तटों की आकृति -** तटीय आकार का सागरीय धाराओं की दिशा पर प्रभाव पड़ता है। जब कोई धारा तट के समीप से गुजरती है तो उसकी दिशा तटीय आकार के अनुरूप हो जाती है, जैसे ब्राजील तट के साथ-साथ ब्राजील की धारा प्रवाहित होती है।
2. **महासागर तलीय आकृतियाँ -** महासागर तलीय उच्चावचों का धाराओं की प्रवाह दिशा पर प्रभाव पड़ता है। जैसे उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा अटलांटिक कटक को पार करते समय दाहिनी ओर मुड़ जाती है।
3. **मौसमी परिवर्तन -** मानसून जलवायु वाले क्षेत्रों में भिन्न मौसमों में पवनों की दिशा एकदम विपरीत हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप जल धाराओं की दिशा भी एकदम विपरीत हो जाती है। उदाहरण के लिए प्रायद्वीपीय भारत के तट के सहारे मानसून ड्रिफ्ट ग्रीष्म ऋतु में पश्चिम से पूर्व एवं शीत ऋतु में पूर्व से पश्चिम को चलती है। मौसम में परिवर्तन के अनुरूप वायुदाब की पेटियाँ खिसकती हैं। इनका प्रभाव स्थायी पवनों की पेटियों पर पड़ने के कारण महासागरीय जलधाराओं पर भी पड़ता है।

(द) पृथ्वी की परिभ्रमण गति

पृथ्वी अपनी धुरी पर निरन्तर पश्चिम से पूर्व को परिभ्रमण करती है। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में अपने पथ के दाँयी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध के बाँयी और मुड़ जाती हैं।

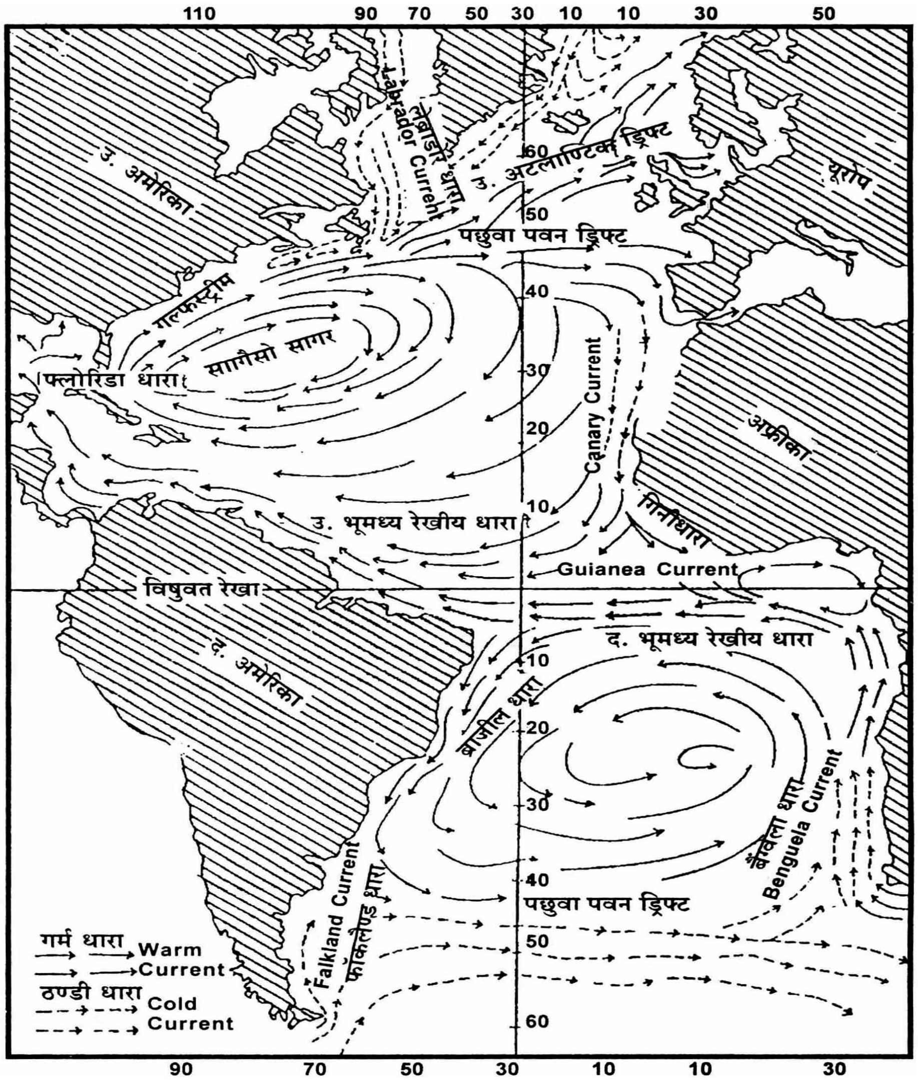

चित्र 14.7 : अटलाण्टिक महासागर की धाराएँ

14.4.2 उत्तरी अटलाण्टिक महासागर की धाराएँ

1. **उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा -** अटलाण्टिक महासागर में भूमध्यरेखा के उत्तर में उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवनों के द्वारा एक उष्ण जल धारा प्रवाहित होती है जो भूमध्य रेखा के गर्म जल को पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित करती है। उसे उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा कहते हैं। कैरिबियन सागर में पश्चिमी द्वीप समूह के मध्य में आने के कारण यह धारा दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक शाखा उत्तर की ओर अमेरिका के पूर्वी तट के साथ बहकर गल्फ स्ट्रीम में मिल जाती है। दूसरी शाखा दक्षिण की ओर चलकर मैक्सिको की खाड़ी में पहुँच जाती है।
2. **फ्लोरिडा धारा -** यह उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा का ही अग्र भाग है जो बड़ी मात्रा में जल लेकर युकाटन जल सन्धि द्वारा मैक्सिको की खाड़ी में प्रवेश करती है। जल की अत्यधिक राशि के कारण मैक्सिको की खाड़ी का तल अटलाण्टिक महासागर के तल से

ऊँचा हो जाता है इस कारण यहाँ एक गरम धारा का जन्म होता है जिसे फ्लोरिडा की धारा कहा जाता है।

3. **गल्फ स्ट्रीम -** इस जल धारा की उत्पत्ति मैक्सिको की खाड़ी में होती है । यह एक गर्म जल धारा है। यह धारा उत्तर पूर्व दिशा की ओर 60° उत्तरी अक्षांश तक पश्चिमी यूरोप के पश्चिमी तट तक प्रवाहित होती है। यही धारा उत्तर में उत्तरी अटलाण्टिक प्रवाह कहलाती है। यही प्रवाह फिर पश्चिमी यूरोप में नॉर्वे की ओर चला जाता है और उत्तरी ध्रुव सागरीय जल से मिल जाता है।
4. **कनारी धारा -** उत्तरी अटलाण्टिक प्रवाह स्पेन के निकट दो शाखाओं में विभक्त हो जाता है। एक शाखा उत्तर की ओर चली जाती है और दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़कर स्पेन, कनारी द्वीप व उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका के तट के सहारे बहती हुई भूमध्य रेखीय धारा से मिल जाती है। यह ठण्डी धारा है।
5. **लैबोडोर धारा -** यह ग्रीनलैण्ड के पश्चिमी तट से होते हुए लैब्रोडोर पठार के सहारे-सहारे प्रवाहित होते हुए न्यूफाउण्डलैण्ड के निकट गल्फ स्ट्रीम से मिल जाती है। यह एक ठण्डी धारा है।
6. **प्रति भूमध्यरेखीय धारा -** ये उत्तरी तथा दक्षिणी भूमध्यरेखीय धाराओं के मध्य भूमध्य रेखा के सहारे पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है। दोनों धाराओं के मध्य उष्ण जल के इस उल्टे बहाव को प्रति भूमध्यरेखीय धारा कहा जाता है।

14.4.3 दक्षिणी अटलाण्टिक महासागर की धाराएँ

1. **दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा -** यह गर्म धारा दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनों से उत्पन्न होती है और भूमध्यरेखा के समानान्तर पूर्व से पश्चिम को प्रवाहित होती है।
2. **ब्राजील धारा -** यह गर्म धारा है जो ब्राजील के पूर्वी तट के सहारे सहारे दक्षिण की ओर बहती है। यह धारा ब्राजील के पूर्वी तट पर प्रभाव डालती है।
3. **दक्षिणी अटलाण्टिक ड्रिफ्ट -** यह एक ठण्डी जल धारा है जो 40° दक्षिणी अक्षांश के निकट ब्राजील धारा के पछुआ हवाओं के प्रभाव में आ जाने से बनती है। यह धारा पूर्व की ओर बहती हुई आशा अन्तरीप तक जाती है।
4. **बैंग्वेला धारा -** यह ठण्डी जलधारा है। यह धारा अफ्रीका के पश्चिमी तट के सहारे सहारे बढ़ती हुई उत्तर की ओर गिनी की खाड़ी तक जाती है। वहाँ यह दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा से मिल जाती है।
5. **फॉकलैण्ड धारा -** दक्षिणी अमेरिका के फॉकलैण्ड द्वीपों के सहारे-सहारे बहती हुई यह धारा 40° दक्षिणी अक्षांश के निकट पहुँचकर ब्राजील धारा से मिल जाती है। यह एक ठण्डी जल धारा है।
6. **अण्टार्कटिक प्रवाह -** अण्टार्कटिक महासागर में पश्चिम से पूर्व ही ओर चलने वाली यह ठण्डी धारा है। इसका प्रवाह पछुआ पवनों के प्रभाव में होता है।

14.4.4 प्रशान्त महासागर की धाराएँ

1. **उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा -** यह गर्म धारा है जो मध्य अमरीकी तट से प्रारम्भ होकर पश्चिम में फिलीपीन्स की ओर चली जाती है। यहाँ यह धारा दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। प्रथम शाखा दक्षिण की ओर मुड़कर अपनी दिशा पूर्व को कर लेती है, जिसे प्रति भूमध्य रेखीय धारा कहते हैं, द्वितीय शाखा उत्तर की ओर क्यूरोसीवो धारा के नाम से चलती है।
2. **क्यूरोसीवो धारा -** यह एक गर्म धारा है जो फिलीपीन द्वीप समूह, ताइवान तथा जापान के तटों के समीप उत्तर की ओर बहती है। क्यूशू द्वीप के समीप यह धारा दो शाखाओं में बँट जाती है। एक शाखा उत्तर की ओर अलास्का तट के सहारे बहती हुई पुन: प्रशान्त प्रवाह में मिल जाती है तथा एक शाखा दक्षिण की ओर मुड़ कर कैलीफोर्निया की ठण्डी धारा से मिल जाती है। क्यूरोसीवो की एक शाखा जापान के पश्चिमी तट के सहारे उत्तर में जापान सागर में चली जाती है, जो सुशीमा की धारा के नाम से विख्यात है।
3. **क्यूराइल धारा -** यह एक ठण्डी जल धारा है, जो बेरिंग जल डमरूमध्य से दक्षिण में साइबेरिया तट के साथ बहती हुई क्यूराइल द्वीप समूह के निकट क्यूरोसीवो गर्म धारा से मिलती है।
4. **दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा -** भूमध्य रेखा के दक्षिण में लगभग 3° से 10° दक्षिणी अक्षांश के सहारे सहारे यह गर्म धारा पीरू से ऑस्ट्रेलिया तक चलती है।

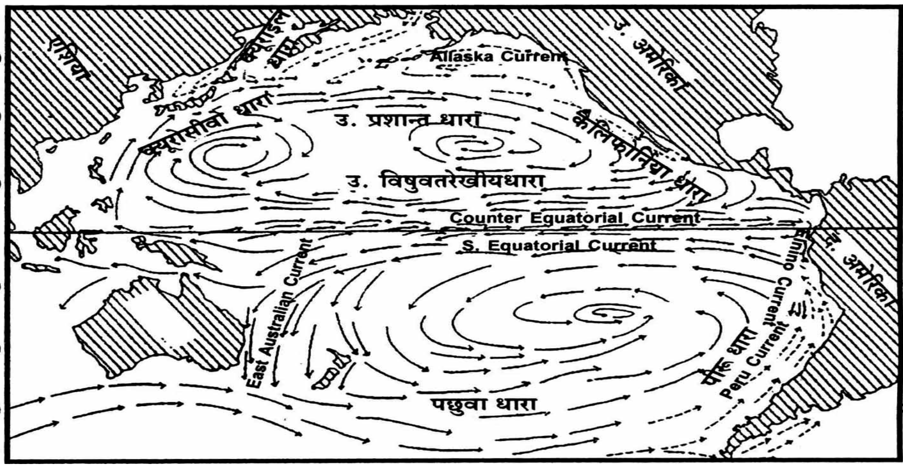

चित्र- 14. 8 : प्रशान्त महासागर की धाराएँ

1. **पूर्वी ऑस्ट्रेलियन धारा -** यह गर्म जल धारा है जो ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के सहारे सहारे दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। तस्मानिया के निकट पहुँचकर यह धारा अण्टार्कटिक प्रवाह से मिल जाती है।
2. **अण्टार्कटिक प्रवाह -** यह अण्टार्कटिक महासागर में पश्चिम से पूर्व की ओर चलने वाली वृहत् धारा का एक अंग है। यह ठण्डी जलधारा है। हॉर्न अन्तरीप के निकट पहुँच कर इसकी एक शाखा दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट के सहारे सहारे उत्तर की ओर चलती है।
3. **पीरू धारा -** यह एक ठण्डी धारा है। जिसे पीरू के तट के सहारे प्रवाहित होने के कारण पीरू की धारा कहा जाता है। आगे यह धारा दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा से मिल जाती है।

14.4.5 हिन्द महासागर की धाराएँ

हिन्द महासागर की धाराएँ प्रशान्त एव अटलाण्टिक महासागरीय धारा प्रवाह क्रम से भिन्नता रखती हैं क्योंकि हिन्द महासागर में मानसूनी पवनें चला करती हैं। मानसूनी पवनें ग्रीष्म तथा शीतकाल में विपरीत दिशा में चलती हैं। अत: हिन्द महासागर में चलने वाली धाराएँ भी मानसून के साथ अपनी दिशा बदल लेती हैं।

1. **उत्तरी पूर्वी मानसून धारा -** शीत ऋतु में उत्तरी पूर्वी मानसून पवनें स्थल से जल की ओर चलती हैं । इन पवनों के प्रभाव से एशिया के दक्षिणी -तटों के सहारे धारा प्रवाहित होती है जो पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। अफ्रीका के समीप यह पूर्व की ओर मुड़ कर पूर्वी द्वीप समूह की ओर चलती है।
2. **प्रति भूमध्यरेखीय धारा -** यह शीत ऋतु में चलने वाली धारा है। यह एक गर्म धारा है। यह धारा 2° से 8° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य पश्चिम से पूर्व को चलती है।
3. **दक्षिणी पश्चिमी मानसून धारा -** ग्रीष्म ऋतु में दक्षिणी पश्चिमी मानसून पवनों के प्रभाव से एशिया के तटीय भागों पर इस धारा का विस्तार होता है। यह धारा दक्षिण-पूर्व से उत्तर - पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होती है।
4. **दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा -** 10° से 15° द. अक्षांशों के मध्य चलने वाली धाराओं को भूमध्य रेखीय धारा कहा जाता है। यह दक्षिणी पूर्वी व्यापारिक पवनों के प्रभाव से ऑस्ट्रेलिया के पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है। मैडागास्कर तट पर यह दक्षिण की ओर मुड़ जाती है।

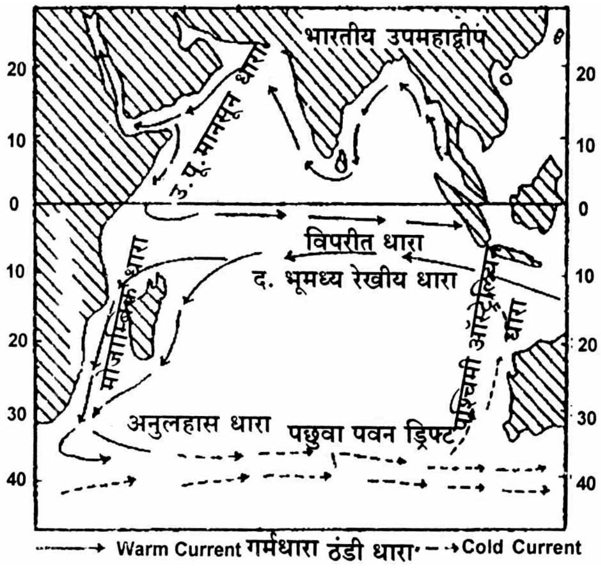

चित्र 14.9 : हिन्द महासागर की धाराएँ

5. **मोजाम्बिक धारा -** यह एक गर्म जल धारा है। दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा की ही एक शाखा है। यह अफ्रीका तथा मैडागास्कर के मध्य प्रवाहित होती है।
6. **अगुलहास धारा -** अफ्रीका के दक्षिण में चलने वाली एक गर्म धारा है जो अन्तत: यह अण्टार्कटिक प्रवाह से मिल जाती है।

7. **अण्टार्कटिक प्रवाह -** हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है। यह ठण्डी जल धारा है। यह प्रवाह पछुआ पवनों के प्रभाव में चलती है।

8. **पश्चिमी ऑस्ट्रेलियन धारा -** अण्टार्कटिक प्रवाह से कुछ ठण्डा जल उत्तर की ओर मुड़कर आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट के साथ प्रवाहित होता हुआ दक्षिणी भूमध्यरेखीय जल धारा में मिल जाता है। यह पश्चिमी ऑस्ट्रेलियन धारा कहलाती है।

14.4.6 धाराओं का प्रभाव

1. **जलवायु पर प्रभाव -** जिन तटों के सहारे ठण्डी धाराएँ चलती हैं वहाँ की जलवायु ठण्डी हो जाती है। गर्म जल धाराओं के कारण सम्बन्धित तटों की जलवायु गर्म हो जाती है।
2. **वर्षा पर प्रभाव -** ठण्डी जल धाराओं के प्रभाव में आने वाले क्षेत्रों की जलवायु शुष्क रहती है। गर्म जलधाराओं के प्रभाव में आने वाले क्षेत्रों की जलवायु आर्द्र रहती है।
3. **कोहरा -** जहाँ पर गर्म व ठण्डी धाराएँ मिलती हैं उन क्षेत्रों में घना कोहरा छाया रहता है। घने कोहरे के कारण व्यापारिक गतिविधियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
4. **मत्स्य व्यापार पर प्रभाव -** गर्म जल धाराओं के साथ साथ प्रचुर मात्रा में प्लैंकटन बहकर आती है जो मछलियों का प्रमुख भोजन है। ठण्डी व गर्म धाराओं के मिलन स्थल पर विश्व के प्रमुख मछली क्षेत्र बन गए हैं।

बोध प्रश्न- 3

1. किस प्रकार की धारा है?

   ……………………………………………………………………………………….……..

   ……………………………………………………………………………………………….

2. उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा किस दिशा में चलती है?

   ……………………………………………………………………………………………….

   ………………………………………………………………………………………………

3. क्यूराइल धारा की प्रकृति कैसी है?

   ……………………………………………………………………………………………….

   ………………………………………………………………………………………………

14.5 सारांश

धाराओं में महासागरीय जल निरन्तर गतिशील रहता है। धाराओं के द्वारा जल एवं उष्मा का महासागरों में क्षैतिज रख उर्ध्वाधर वितरण किया जाता है। महासागरीय धाराएँ नदियों की तरह एक निश्चित मार्ग पर और निश्चित वेग से चलती हैं। तापमान के आधार पर धाराओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है - उष्ण और ठण्डी धारा। इन धाराओं की उत्पत्ति के लिए तापमान, घनत्व, लवणता, वायुदाब, पवन वाष्पीकरण, वर्षा आदि कारक उत्तरदायी हैं। यें धाराएँ अपने तटवर्ती भागों पर अनेक भौगोलिक, आर्थिक व मानवीय प्रभाव डालती हैं।

14.6 शब्दावली

लहरें	:	पवनों के कारण जल तल पर होने वाली गति
ज्वार-भाटा	:	जल स्तर का क्रमश: ऊपर उठना व नीचे गिरना
अपभू-उपभू	:	चन्द्रमा की पृथ्वी से क्रमश: दूरस्थ व निकटस्थ स्थिति

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डी. एस. लाल	:	जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003
2.ई. एच. एस. शर्मा	:	भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2005
3.वी. एस. चौहान, अल्का गौतम	:	भौतिक भूगोल , रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, 2003
5.सविन्द्र सिंह	:	भौतिक भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2006
6. B.S. Negi	:	भू-आकृति विज्ञान, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ, 1981
7.Monkhouse, F.J.	:	Principles of Physical Geography, University Press, London, 1982

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. पवनों के वेग से उत्पन्न जल कणों की गोलाकार की गति
2. पवनों के वेग से
3. लहरों के उच्चतम भाग को
4. समुद्री-कम्प द्वारा उत्पन्न लहरें

बोध प्रश्न - 2

1. सागरीय जल का नियमित रूप से ऊपर उठना व नीचे गिरना
2. सूर्य, चन्द्रमा व पृथ्वी के सीधी रेखा में आने पर उत्पन्न ज्वार
3. सूर्य, पृथ्वी व चन्द्रमा के समकोणी स्थिति में उत्पन्न ज्वार
4. एक ही समय पर उत्पन्न ज्वार वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखाएँ

बोध प्रश्न - 3

1. गरम
2. पूर्व से पश्चिम
3. ठण्डी

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रति भूमध्यरेखीय धारा क्या है?
2. गल्फ स्ट्रीम धारा का विस्तृत विवरण दीजिए।
3. सारगैस का विवरण दीजिए।
4. धाराओं का वर्गीकरण दीजिए।

5. हम्बोल्ट धारा कहाँ चलती है?
6. महासागरीय धाराएँ क्या हैं? इनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है? किसी एक महासागर की धाराओं का वर्णन कीजिए।
7. प्रशान्त या हिन्द महासागर की धाराओं का वर्णन करते हुए तटीय भागों पर इनके प्रभाव का विस्तृत वर्णन दीजिए।
8. अटलाण्टिक महासागर की धाराओं का विवरण दीजिए।
9. महासागरीय धाराओं की उत्पत्ति के कारणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
10. महासागरीय धाराओं के प्रभाव का उदाहरणों सहित विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई - 15 : महासागरीय निक्षेप एवं महासागरीय जल का प्रदूषण

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 महासागरीय निक्षेप
15.2.1 महासागरीय निक्षेपों के स्त्रोत
15.2.2 महाद्वीपीय निमग्न तट एवं मग्न ढाल के निक्षेप
15.2.3 जैविक तथा कार्बनिक निक्षेप
15.2.4 गम्भीर सागरीय मैदानों तथा सागरीय गर्तों के निक्षेप
15.3 प्रवाल भित्तियों
15.3.1 प्रवाल के विकास के लिए आवश्यक दशाएँ
15.3.2 प्रवाल भित्तियों के प्रकार
15.4 प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त
15.4.1 डार्विन का निमज्जन सिद्धान्त
15.4.2 डेली का हिमनद नियंत्रण सिद्धान्त
15.4.3 मरे का स्थिर स्थल सिद्धान्त
15.4.4 आगालीज का अपरदन सिद्धान्त
15.4.5 डेविस की परिकल्पना
15.5 महासागरीय संसाधन
15.6 महासागरीय प्रदूषण
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ्ने के बाद आप निम्न बातों को समझने के योग्य हो जायेंगे ' -

- महासागरीय निक्षेप क्या होता है तथा ये निक्षेप किन -किन कारणों से होते हैं?
- महासागरीय निक्षेपों के स्त्रोत कौन-कौन से हैं,
- प्रवाल भित्तियाँ क्या होती हैं एवं इनके विकास के लिए आवश्यक दशाएँ क्या हैं,
- प्रवाल भित्तियों कितने प्रकार की होती हैं,
- महासागर हमारे लिए आर्थिक रूप से कितने महत्वपूर्ण हैं,

- महासागरों में जल प्रदूषण के क्या कारण हैं तथा उनके क्या परिणाम होते हैं।

15.1 प्रस्तावना

महासागरों में निक्षेपों के स्रोत कई होते हैं। समुद्रों में कहीं-कहीं विभिन्न प्रकार की प्रवाल निर्मित स्थलाकृतियाँ दिखाई पड़ती हैं जिनका निर्माण चूने का उत्स्त्रवण (Secretion) करने वाले प्रवाल कीटों (Coral Polyps) से होता है। प्रवाल भित्तियों का निर्माण अधिकतर उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों की प्रमुख विशेषता होती है। प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई परिकल्पनाएँ हैं। प्रवाल भित्तियों से अनेक प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण होता है जिनमें से कुछ प्रवाल भित्तियाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का उदाहरण बन चुकी हैं।

महासागरों का मानव जीवन में बहुत ही अधिक आर्थिक महत्व है। इनमें जल प्रदूषण बढ़ रहा है जो मानव जीवन के लिए खतरनाक है । इन सभी का महत्व इस इकाई में बताया गया है।

15.2 महासागरीय निक्षेप (Ocean Deposits)

जैसे अनावृत्तिकरण के साधनों द्वारा भू-आकृतियों को काटकर उसके मलवे का निक्षेपण होता है उसी प्रकार कुछ साधनों द्वारा महासागरों के नितल पर विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ और मिट्टी जमती है। ये समुद्री जमाव ही "महासागरीय निक्षेप" कहलाते हैं। समुद्रों का नितल जैविक एवं अजैविक स्रोतों से प्राप्त अवसादों की मोटी-मोटी परतों से ढका हुआ है।

15.2.1 महासागरीय निक्षेपों के स्रोत (Sources of Ocean Deposits)

विभिन्न स्थानों से उद्भूत पदार्थों और प्रवाहित करने वाले साधनों के आधार को लेकर महासागरीय निक्षेपों को निम्न स्रोतों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) **स्थलजात निक्षेप :** विभिन्न अपरदनकारी शक्तियाँ (जैसे नदियाँ, पवनें, हिमनदियाँ, लहरें आदि) स्थलखण्डों पर पाई जाने वाली चट्टानों को तोड़-फोड़ देती हैं जिनका मलवा प्रवाहित करके महासागरीय तली पर बिछा दिया जाता है।

(ii) **ज्वालामुखी निक्षेप :** ज्वालामुखी भूपृष्ठीय तथा अन्त:समुद्री दोनों ही प्रकार के होते हैं।

(iii) महाद्वीपों पर ज्वालामुखी के विस्फोट होने पर उससे निकले पदार्थ जैसे लावा, सुख, झांका (Pumice) आदि सर्वप्रथम स्थल पर ही जमा होते हैं। तत्पश्चात उनके अपक्षय तथा अपरदन से प्राप्त अवसादों को नदियाँ समुद्र में पहुँचाने का कार्य करती हैं। अन्त: समुद्री ज्वालामुखी उद्‌गार से निकले हुए पदार्थों का भी सागरीय तली पर निक्षेपण हो जाता है।

(iv) **गम्भीर महासागरीय निक्षेप :** समुद्री जीवों और वनस्पतियों के कवच तथा खोलों के अवशेष गहरे समुद्रों में विशेष रूप से निक्षेपित होते हैं। समुद्रीय जीवों के खोल और सूक्ष्म समुद्री जीवों के ढांचों का विखण्डन तथा रासायनिक परिवर्तन होता है। समुद्री अवसादों में चूना प्रधान तथा सिलिका प्रधान पदार्थों को आसानी से पहचाना जा सकता है। चूना प्रधान अवशेष दो वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं। पहला समुद्री जीवों के अवशेष तथा दूसरा समुद्र के जल में उत्पन्न वनस्पतियों के अवशेष।

(v) **अजैविक :** जब किसी पदार्थ का विलेयता गुणनफल (Solubility Product) अत्यधिक हो जाता है तब अजैविक अवक्षेपों का निर्माण होता है। अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा समुद्र के जल में ऐसे अवक्षेप बनते हैं।

(vi) **रासायनिक निक्षेप :** इस वर्ग में उन पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी उत्पत्ति समुद्र के जल तथा ठोस कणों की पारस्परिक क्रिया के कारण होती है। अन्तक्रिया विशेष रूप से ज्वालामुखी से निसृत पदार्थों तथा समुद्र के जल के बीच होती है। रासायनिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न पदार्थों में ग्लाकोनाइट फेल्सपार, फॉस्फोटाइट तथा मृत्तिका खनिज (Clay minerals) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

(vii) **उल्का धूल :** अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर अनेकबार उल्काएँ गिरती रहती हैं। जब समुद्रों की सतह पर उल्का के कण गिरते हैं तब धीरे-धीरे वे नितल पर जमा हो जाते हैं। किन्तु उल्का से प्राप्त अवसादों की मात्रा बहुत कम होती है। इन पदार्थों का पता लगाने का श्रेय मरे तथा रेनार्ड को है।

15.2.2 महाद्वीपीय निमग्न तट एवं मग्न ढाल के निक्षपे (Deposits of the Continental shelf and slope)

स्थल के अपरदन तथा अपक्षय से प्राप्त पदार्थ - महाद्वीपों के मग्न तटों तथा मग्न ढालों पर निक्षिप्त पदार्थों में स्थल के अपरदन से प्राप्त तलछटों की प्रधानता होती है। इन स्थलजाल पदार्थों को नदियाँ अपने जल में बहाकर ले आती हैं। इनके अतिरिक्त, समुद्र में उत्पन्न तरंगें अथवा लहरें तट को काटकर विभिन्न प्रकार के पदार्थों को समुद्र के नितल पर डाल देती हैं। चट्टानों के बड़े टुकड़े अपने आकार एवं भार के कारण तट के निकटवर्ती भाग में ही निक्षिप्त होते हैं। किन्तु शैलों के बारीक कण समुद्र के तट से काफी दूर तक पहुँचा दिये जाते हैं। कणों का आकार जितना छोटा होगा उतने ही दूर तक उनका निक्षेप पाया जायेगा। इस प्रकार आकार के आधार पर इन पदार्थों का वर्गीकरण किया जाता है। शैल चूर्णों में आकार में पर्याप्त भिन्नता के कारण उनका निक्षेपण उनके आकार के अनुसार होता है। तटों के निकट निमग्न छिछले भागों के निल पर बजरी (gravel) जैसे मोटे पदार्थों का निक्षेप होता है। जबकि रेत, सिल्ट, मृत्तिका (clay) तथा पंकों का जमाव अपेक्षाकृत अधिक गहरे भागों से होता है। इन पदार्थों का निक्षेप महाद्वीपीय मग्न तटों के अन्तिम छोर तक सीमित होता है।

गाद (Silt) अत्यधिक बारीक शैल-चूर्ण को कहते हैं, जिनका व्यास 3.9 से 31.2 माइक्रॉन होता है। मृत्तिका - कणों से भी छोटे आकार वाले कणों को पंक (Mud) की संज्ञा प्रदान की जाती है। विभिन्न प्रकार के शैलों का निर्माण करने वाले खनिज के सूक्ष्म कणों से पंक का निर्माण होता है। पंक में खनिज कणों के साथ-साथ अति सूक्ष्म मृत्तिका के कण भी मिले होते हैं। इनका स्रोत भी धरातल पर पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की शैलें हैं। उपर्युक्त स्थलजात पंकों के रंग के आधार पर जॉन मरे ने उनका निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है -

(i) **नीला पंक (Blue Mud) :** नीला पैक सबसे अधिक विस्तृत क्षेत्र में मिलता है। इसका मूल स्रोत स्थल खण्डों के अपरदन से प्राप्त अवसाद होता है। महाद्वीपों के निकटवर्ती गहरे समुद्रों तथा आंशिक रूप से घिरे हुये समुद्रों में यह पंक अधिक मिलता है।

(ii) **लाल पंक (Red Mud) :** लोहे के ऑक्साइड की मात्रा अधिक होने से कुछ पंक लाल रंग के होते हैं। इसका क्षेत्र सीमित होता है। इस पंक में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा का औसत 32 प्रतिशत होती है। रेडियोलेरिया तथा डायटम जैसे सिलिका प्रधान जीवों का इसमें प्राय: अभाव पाया जाता है। इसमें लौह तत्व अत्यधिक ऑक्सीकृत रूप में उपस्थित रहते हैं जो इसके लाल रंग का मुख्य कारण है।

(iii) **हरा पंक (Green Mud) :** इस पंक के हरे रंग का मुख्य कारण ग्लॉकोनाइट नामक खनिज के कण हैं। ग्लॉइकोनाइट लोहे का सिलिकेट होता है, जिसका निर्माण जैविक पदार्थों के वियोजन की उपस्थिति में ही सम्भव है। फोरामिनिफेरा की खोलों में यह खनिज पाया जाता है, और जब इन जीवों के खोल घुल जाते हैं, तब ग्लॉकोनाइट के छोटे-छोटे गोलकण बच जाते हैं।

उत्तरी अमेरिका के प्रशान्त तथा अटलांटिक महासागरीय मग्न तट, जापान का तटवर्ती समुद्री नितल, ऑस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका के मग्न तट हरे पंक के निक्षेप के लिए उल्लेखनीय हैं।

15.2.3 जैविक तथा कार्बनिक निक्षेप (Organic and Carbonic Deposits)

कुछ ऐसे भी निमग्न तट हैं जिनके नितल पर अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ तथा जीव पाये जाते हैं। अत: इन मग्न तट के नितल पर वहाँ पायी जाने वाली वनस्पतियों तथा जीवों के अवशेषों का निक्षेप पाया जाता है। उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों में प्रवाल कीट तथा चूना प्रधान शैवाल अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इनके मरणोपरान्त इनके कंकाल तथा इनकी खोल लहरों के द्वारा विखण्डित होकर रेत अथवा पंक में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार निर्मित रेत अथवा पंक में कैल्शियम कार्बोनेट की भारी मात्रा होती है, जबकि स्थलजात अवसादों से निर्मित इन्हीं पदार्थों में इसकी कमी पाई जाती है। पश्चिमी द्वीप समूह के समीपवर्ती समुद्रों के नितल पर उपर्युक्त जैविक निक्षेप सर्वाधिक मात्रा में मिलते हैं। बहामा द्वीपों का निर्माण पवन द्वारा उड़ाकर लाये गये समुद्री जीवों के कवचों तथा प्रवाल निर्मित रेतों से हुआ है। उसके समीपवर्ती समुद्रों के नितल पर इसी प्रकार के पंकों का निक्षेप मिलता है। मैक्सिको की खाड़ी तथा कैरीबियन सागर में भी ऐसे जैविक निक्षेप पाये जाते हैं।

15.2.4 गम्भीर सागरीय मैदानों तथा सागरीय गर्तों के निक्षेप (Depopsits of the Deep Sea Plain and Ocean Deeps)

गम्भीर महासागरीय निक्षेपों (Pelagic) का संघटन (Composition) समुद्र में पाये जाने वाले उन असंख्य जीवों तथा वनस्पतियों के अवशेषों से होता है, जो प्राय : समुद्र की सतह पर तैरते रहते हैं। कभी-कभी इन निक्षेपों के निर्माण में पवनों द्वारा उड़ाकर लाई गई ज्वालामुखी धूल का भी कुछ अंश पाया जाता है।

ऐसे निक्षेप जब समुद्र से निकाले जाते हैं, तब मूलत: वे तरल पैक के रूप में होते हैं। इसलिए इन्हें ऊज (ooze) कहा जाता है। यही सिन्धु पंक होता है। सूख जाने पर यह सिन्धु पंक महीन कणों वाले पाऊडर के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसमें कुछ पदार्थ तो रवाहीन होता है तथा कुछ थोड़ी मात्रा में अत्यन्त सूक्ष्म आकार वाले कवचों के अवशेषों से बना होता है। इन निक्षेपों का निर्माण जिन समुद्री जीवों अथवा वनस्पतियों के अवशेषों से होता है, उनमें जिस वर्ग के

अवशेषों की प्रधानता रहती है उसी के आधार पर उनका नामकरण अथवा वर्गीकरण किया जाता है। अत: इन निक्षेपों को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है -

(अ) चूना प्रधान (Calcareous) ऊज : चूना प्रधान निक्षेपों में कैल्सियम कार्बोनेट की मात्रा 30 प्रतिशत से अधिक होती है।

(ब) सिलिका प्रधान (Siliceous) ऊज : जिन समुद्री जीवों की खोलों (Shells) से उपर्युक्त निक्षेपों का निर्माण होता है, उनके आधार पर इनका निम्नांकित वर्गीकरण किया जाता है: -

(i) **टेरोपॉड ऊज (Petropod Ooze) :** इस वर्ग के निक्षेप में एक विशेष प्रकार के समुद्री जीवों की खोलों के अवशेषों कीं प्रधानता रहती है। टेरोपॉड समुद्र के जल में तैरने वाला एक मोलस्क (Mollusc) अथवा मृदु कवची जीव होता है। इसकी खोल मुलायम तथा प्राय: शंक्वाकार होती है, जो अत्यन्त पतली हु आ करती है। इनके निर्माण में चूने के कार्बोनेट का विशेष योगदान होता है।

(ii) **ग्लोबीजेरीना ऊज(Globigerina ooze) :** फोरमिनीफेरा (Forminifera) प्रजाति के ग्लोबीजेराइना तथा अन्य जीवों के चूना प्रधान खोलों से इस सिन्धु पैक का निर्माण होता है। इनकी खोल पिन के सिरे अथवा उससे भी कम आकार की होती है। इनका वितरण अनेक महासागरों के विस्तृत क्षेत्रों में पाया जाता है। इस प्रकार के पंक अटलांटिक, दक्षिणी प्रशान्त महासागर तथा हिन्द महासागरों के विस्तृत क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह सिन्धु पंक उष्ण एव शीतोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु वाले समुद्रों में मिलता है। ग्रीनलैण्ड तथा नॉर्वे के बीच में गर्म समुद्री धारा के प्रभाव से ग्लोबीजेरीना आर्कटिक वृत से कुछ उत्तर तक पाया जाता है।

इस प्रजाति के विकास के लिए जल की अनुकूलतम गहराई 1500 - 2000 फैदम होती है। गहराई में वृद्धि के साथ-साथ इस जीव की संख्या निरन्तर कम होती जाती है। यद्यपि कहीं-कहीं ग्लोबीजेरीना 3000 फैदम की गहराई तक मिलता है, किन्तु महासागरीय गर्तो (Oceanic deeps) में ये जीव बिल्कुल नहीं मिलते हैं।

(iii) **डायटम ऊज (Diatom ooze) :** ठण्डे समुद्रों में विकसित होने वाली समुद्री वनस्पतियों के अवशेष इस पंक का निर्माण करते हैं। इनमें सिलिका तत्व की प्रधानता होती है। यद्यपि इन वनस्पतियों का विकास 600 - 2000 फैदम के मध्य सर्वाधिक होता है, किन्तु कहीं- कहीं 4000 फैदम गहराई तक इनको देखा जाता है। दक्षिणी अटलाण्टिक महासागर में एक चौड़ी पेटी में इस प्रकार का सिन्धु पंक मिलता है। प्रशान्त महासागर की उत्तरी सीमा पर भी एक सँकरी पेटी में इस प्रकार का पंक पाया जाता है।

(iv) **रेडियोलेरियन ऊज (Radiolarian ooze) :** फोरामिनिफेरा प्रजाति का ही एक जीव रेडियोलेरिया होता है, जिसकी खोल सिलिका प्रधान होती है। इसमें चूने के अंश का अभाव होता है। इस सिन्धु पंक में सिलिका प्रधान खोलों के अतिरिक्त मृत्तिका (clay) का अंश मिला होता है। रेडियोलेरिया गहरे समुद्रों में मुख्य रूप से पाया जाता है। 2000 फैदम से कम गहरे समुद्रों में इसे नहीं देखा जाता।

इस जीव का विकास 5000 फैदम गहराई तक होने के फलस्वरूप इसके अवशेषों से निर्मित निक्षेप सागरीय मैदानों तथा गर्तों में भी पाये जाते हैं। यह उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों में ही

सीमित होता है। प्रशान्त महासागर में रेडियोलेरियन पैक विशेष रूप से मिलता है, किन्तु हिन्द महासागर में भी सीमित क्षेत्रों में इस पंक का निक्षेप मिलता है। अटलांटिक महासागर में यह सिन्धु पंक कहीं नहीं पाया जाता है।

(v) **लाल सिन्धु पंक (Red clay) :** अन्य सभी गम्भीर सागरीय निक्षेपों की तुलना में लाल सिन्धु पंक अधिक विस्तृत क्षेत्रों में पाया जाता है। इसमें अल्यूमीनियम का जलयोजित सिलिकेट(hydrated silicate of aluminium) तथा लोहे का ऑक्साइड होता है। जॉन मरे के अनुसार अन्त: सागरीय शैलों तथा अल्यूमिनियम के सिलिकेट के रासायनिक वियोजन (decomposition) से ही लाल सिन्धु पंक का निर्माण होता है। अधिक गहराई वाले समुद्रों के नितल पर यह पंक मिलता है। इस पंक के निर्माण में समुद्र की सतह पर तैरने वाले प्यूमिस (Pumice) तथा पवन द्वारा उड़ाकर लायी गई धूल जैसे ज्वालामुखियों से निकले पदार्थों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए ज्वालामुखियों के समीपवर्ती समुद्रों के नितल पर यह पंक भारी मात्रा में मिलता है। इस सिन्धु पंक में रेडियोधर्मी पदार्थ भी पाये जाते हैं। अत्यन्त धीमी गति से जमा होने के कारण लाल सिन्धु पंक के निक्षेप में शार्क मछली के दाँतो तथा ह्वेल के कानों की हड्डियों के अवशेष मिलते हैं।

लाल सिंधु पंक लगभग सभी महासागरों के नितल पर पाया जाता है। प्रशान्त महासागर के आधे से अधिक भाग पर यह निक्षेप मिलता है। अटलांटिक तथा हिन्द महासागर के बहुत बड़े भाग में और सर्वाधिक गहराई पर लाल सिन्धु पंक पाया जाता है। उत्तरी अटलांटिक में इस पंक का रंग लाल (ईंट के रंग का) तथा हिन्द एव प्रशान्त महासागरों में गाढ़े चॉकलेट की तरह होता है। सूखने पर यह पंक लाल भूरे रंग का हो जाता है।

पृथ्वी के बाहर से आने वाले पदार्थ (Extra-terrestrial Deposits)

उल्कापात के कारण महासागरों के नितल पर निक्षिप्त विभिन्न प्रकार के जैविक एव अजैविक पदार्थों के अतिरिक्त उल्काओं के विखण्डन से प्राप्त पदार्थों के अत्यन्त सूक्ष्म कणों का भी निक्षेप होता है। किन्तु इस प्रकार के खनिजों के कणों की मात्रा बहुत कम होती है। इनके रंग प्राय: काले अथवा भूरे होते हैं। इन खनिजों में लौह तत्व अथवा लोहे ऑक्साइड से निर्मित मैग्नेटाइट विशेष उल्लेखनीय होते हैं। अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा में होने के बावजूद इन खनिजों का वैज्ञानिकों के लिए विशेष महत्व होता है। इन खनिज कणों का व्यास 30- 60 माइक्रोमीटर होता है। यह अत्यधिक गहरे समुद्रों के नितल पर निक्षिप्त पदार्थो में पाया जाता है।

बोध प्रश्न- 1

1. ज्वालामुखी रेत के नाम से कौन से पदार्थ जाने जाते हैं?

………………………………………………………………………………..

………………………………………………………………………………..

2. महासागरीय निक्षेप मुख्यत: कितने प्रकार के होते हैं?

………………………………………………………………………………..

………………………………………………………………………………..

3. चूना प्रधान सिन्धु पंक कौनसा होता है?

………………………………………………………………………………..

……………………………………………………………………………..

15.3 प्रवाल भित्तियाँ

समुद्र की कौतुहल पूर्ण वस्तुओं में प्रवाल (मूंगा) भी एक है। इनसे फूनाफूटी, बरमूडा, मीजी, टुक द्वीप, वेनीकोरो, ग्रेट बैरियर रीफ, लक्षद्वीप, मालद्वीप, बंकरद्वीप, सोसाइटी द्वीप आदि की रचना हुई है। इन सभी द्वीपों की रचना मूंगों से हुई है। द्वीप पर्यटकों और वैज्ञानिकों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। हैरन द्वीप में एक शोध संस्थान की स्थापना की गई है जहाँ विश्व भर के वैज्ञानिक प्रवाल की चट्टानों के बारे में अध्ययन करके वैज्ञानिक ज्ञान के भंडार में वृद्धि कर रहे हैं।

प्रवाल भित्तियों का निर्माण मुख्य रूप से बहुपाद प्राणियों की क्रियाओं से होता है। इनका रंग हरा, लाल और पीला होता है। यह प्राणी व्यास से आधे इंच तक के होते हैं और आकार में खोखले बेलनाकार होते हैं। इनके खोल चूने से बने होते हैं। जब विपरीत परिस्थितियाँ आती हैं तो ये समाप्त हो जाते हैं तथा उनमें निहित चूनों से भित्तियों का और अन्त में प्रवाल द्वीपों का निर्माण होता है। इन भित्तियों और द्वीपों में न केवल कोरल पोलिम्स ही होते है वरन् अन्य समुद्री जीव-जन्तु भी पाये जाते हैं जो मरणोपरान्त इनके साथ सम्मिलित हो जाते हैं। इन सबके ढांचों के एक स्थान पर जुड़ जाने से प्रवाल भित्ति का निर्माण हो जाता है। प्रवाल समुद्र तल के नीचे या ज्वार भाटा के तल से 5 मीटर तक ऊँची पाई जाती है। प्रवाल चट्टानों की यह एक विशेषता है कि जब तक ये पानी की सतह को नहीं छू लेती तब तक बढ़ती है।

15.3.1 प्रवाल के विकास के लिये आवश्यक दशाएँ (Necessary conditions for the growth of corals)

सागर के प्रत्येक स्थान में प्रवाल प्राप्त नहीं होते हैं। संसार में केवल 13 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में ही प्रवाल श्रेणियाँ फैली हुई हैं। प्रवाल भित्तियाँ कुछ विशेष परिस्थितियाँ होने पर ही उदय होती हैं। ये दिशायें निम्नलिखित हैं -

(i) **तापमान :** प्रवाल के जन्म और विकास के लिये निश्चित आवश्यकताएँ चाहते हैं उनमें तापक्रम प्रमुख है। इसके विकास के लिये 20° सेल्सियस तक तापमान होने चाहिये।

(ii) **गहराई (depth) :** यह छिछले समुद्र का जीव है। यह साधारणतया 50 फैदम तक की गहराई में विकसित हो पाता है। किन्तु 50 फैदम से अधिक गहराई बढ़ने पर इनकी बस्तियां विरल होती जाती हैं। गार्डीनर ने 150 से 170 फैदम तक की गहराई को भी उपयुक्त बताया है। प्रवालों के पनपने की गहराई वास्तव में इस बात पर निर्भर रहती है कि पानी में कहाँ तक सूर्य की किरणें प्रवेश कर पाती हैं। अत: स्वच्छ जल में जहाँ किरणें अधिक गहराई तक प्रवेश कर पाती हैं प्रवाल अधिक गहराई तक और गंदले पानी में कम गहराई तक पाये जाते है।

(iii) **स्वच्छ जल :** इनके लिए स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है। समुद्री तल पर अधिक मात्रा में तलछट आने पर उस क्षेत्र में प्रवाल जीवित नहीं रह सकते। इसलिये प्रवाल

नदियों के मुहाने के सामने भी नहीं पाये जाते हैं क्योंकि नदियाँ अत्यधिक मात्रा में तलछट लाकर जमा करती हैं जिससे इनकी मृत्यु हो सकती है।

(iv) **उष्ण जल :** इसके लिये उष्ण सामुद्रिक जल उपयुक्त रहता है। जिन समुद्री स्थानों में ठंडा जल पाया जाता है वहाँ प्रवाल नहीं पनपता है। महाद्वीप के पश्चिमी किनारों पर व्यापारिक हवायें तट से दूर समुद्र की ओर बहती हैं जिससे उष्ण समुद्री जल पवनों के प्रभाव में आकर तट से दूर हट जाता है। उसका स्थान ग्रहण करने के लिए नीचे का ठंडा जल ऊपर उठता है। फलस्वरूप ऐसे ठंडे जल में प्रवाल नहीं पनपते हैं। महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में ठंडी जलधारायें भी बहती हैं। अत: इन धाराओं के क्षेत्रों में प्रवाल अपनी बस्तियाँ नहीं बनाते हैं। इसके विपरीत गर्म धाराओं वाले प्रदेशों में ये पनपते हैं।

(v) **लवणता (Salinity) :** प्रवालों के लिये अधिक खारापान भी हानिकारक है। अधिक लवणता वाले सखी भागों में चूने की मात्रा कम हो जाती है। चूना प्रवालों का भोजन और कंकालों को विकसित करने का साधन है।

15.3.2 प्रवाल भित्तियों के प्रकार (Types of Coral Reefs)

प्रकृति और उत्पत्ति के अनुसार प्रवाल भित्तियाँ

प्रवाल भित्तियां, उनकी उत्पत्ति, आकृति और प्रकृति के आधार पर तीन प्रकार की होती है। इनका वर्णन अग्र प्रकार है -

(i) अनुतट या तटीय प्रवाल भित्तियाँ

अनुतट प्रवाल भित्तियाँ किसी द्वीप या महाद्वीपीय तट के समीप या संलग्न रूप से विकसित होती हैं। जिस मंच पर प्रवाल श्रेणी का विकास होता है उसके तथा प्रवाल भित्ति के मध्य कोई खुला पानी या लैगून झील नहीं पाई जाती है। प्रवाल श्रेणी कम चौड़ी और समुद्र की ओर खड़े ढाल वाली होती है। इनकी चौड़ाई एक किलोमीटर के करीब होती है। किन्तु कुछ अपवादस्वरूप अधिक चौड़ी भी होती हैं। अनुतट प्रवाल का ऊपरी भाग समतल नहीं होता बल्कि उबड़ खाबड़ होता है। अनुतट प्रवाल भित्तियों के उदाहरण न्यू हैब्रीडीज में मसकेलान द्वीप समूह के समाऊ द्वीप, दक्षिणी फ्लोरिडा प्रवाल भित्ति, महेतिमा द्वीप आदि हैं। (चित्र 15.1)

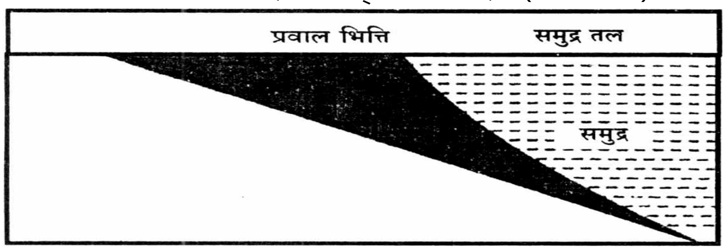

चित्र 15.1 : अनुतट प्रवाल भित्ति

(ii) परातट या अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier Reef)

यह प्रवाल भित्ति बड़ी और विस्तृत होती है। यह महाद्वीप तट से 100 मीटर से लगाकर 5 किमी. तक दूर स्थित होती है। प्रवाल भित्ति और प्रमुख स्थल के मध्य एक अनूप झील होती है। यदि यह भित्ति किसी द्वीप के चारों ओर होती है तब इसकी आकृति गोलाकार और किसी महाद्वीप के तट के सहारे होने पर लगातार लम्बी होती है। परातट प्रवाल श्रेणियाँ अनुतट प्रवाल

श्रेणियों से अधिक ऊंची, अधिक विस्तृत, और तट से अधिक दूर होती हैं। अवरोधक प्रवाल भित्ति का ढाल 45° तक होता है। किन्तु साधारणतया यह 15° से 25° के मध्य ही होता है।

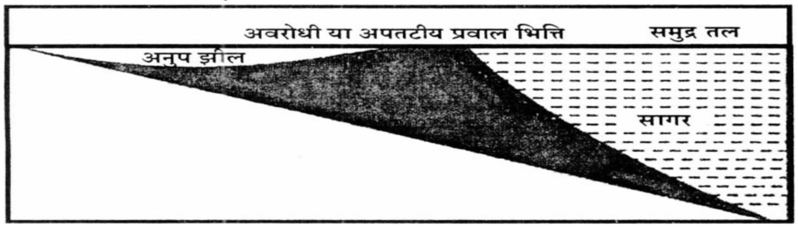

चित्र 15.2 परातट या अवरोधक प्रवाल भित्ति

परातट भित्ति का सर्वोतम उदाहरण ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित 9° दक्षिण से 22° दक्षिणी अक्षांश के मध्य उत्तर में टोटरू जलडमरू मध्य से लगाकर दक्षिण में स्टेन भित्ति तक 1900 किमी. की दूरी में फैली हुई ग्रेट बैरियर रीफ है। यह प्रवाल भित्ति 100 से 200 मीटर ऊँची और लगभग 13000 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैली हुई है। यह परातट प्रवाल श्रेणी समुद्र किनारे से उत्तर में 130 किमी. मध्य में 32 किमी. और दक्षिण में 13 किमी. तक दूर स्थित है। इसकी चौड़ाई 11 से 128 किमी. तथा अनूप झील की गहराई 15 से 20 फैदम तक है। इसी प्रकार की प्रसिद्ध अवरोधक प्रवाल भित्ति कैरोलाइन द्वीप में त्रुक समूह (Truck Group) में भी स्थित है।

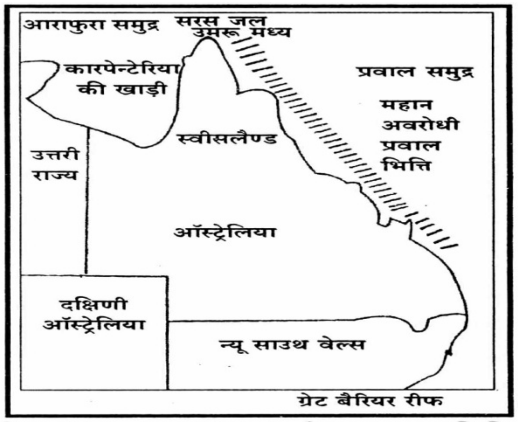

चित्र 15.3 : परातट या अवरोधक प्रवाल भित्ति

(iii) वलयाकार प्रवाल भित्ति (Atoll)

यह घोड़े की नाल के समान वलयाकार प्रवाल भित्तियाँ होती हैं जिनके मध्य एक छिछली अनूप झील होती है। कुछ वलयाकार प्रवाल भित्तियाँ द्वीपों के चारों और बन जाती है और द्वीप तथा प्रवाल श्रेणी के मध्य अनूप झील स्थित होती है। अनूप झीलों की गहराई 40 से 70 फैदम के मध्य होती है।

वलयाकार प्रवाल भित्ति महाद्वीपीय तट से सैकड़ों किलोमीटर दूर होती है तथा इनका समुद्र की ओर ढाल तीव्र होता है। समुद्र तरंगों द्वारा यह टुकड़ों में विभक्त हो जाती है।

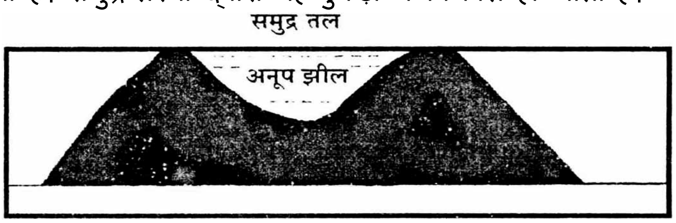

चित्र 15.4 : वलयाकार प्रवाल भित्ति

वलयाकार प्रवाल श्रेणियों को उनकी प्रकृति के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(i) वे वलयाकार प्रवाल श्रेणियाँ जिनका आकार गोल होता है तथा मध्य में द्वीप नहीं होता है।

(ii) वह प्रवाल भित्ति जिसके मध्य की अनूप झील में द्वीप होता है।

वलयाकार प्रवाल भित्तियों की संख्या दक्षिण चीन सागर, एन्टीलीज, लाल सागर, ऑस्ट्रेलिया सागर, मैलागासी के उत्तरी पश्चिमी तट पर, प्रशान्त महासागर में फुनाफुटी, फिजी, केरालाइना के श्रुक प्रवाल आदि में पाई जाती है। फुनाफुटी (Funafuti) श्रेणी 12 किमी. चौड़े, 20 किमी. लम्बे लैगून को घेरती है। यह पूर्व की ओर से कई जगहों से कटी हुई है। वहाँ पर अनेक द्वीप पाये जाते हैं।

15.4 वलयाकार भित्तियों की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त

विद्वानों में अनुतट प्रवाल श्रेणी की उत्पत्ति के विषय में कोई मतभेद नहीं है। उनका मत है कि अनुतट-प्रवाल भित्ति किसी द्वीप या महाद्वीप के स्थल भाग के चारों और जलमग्न चबूतरों पर बनती है। इस प्रकार द्वीप या स्थल खण्ड में सटकर जुड़ी हुई प्रवाल भित्ति जिसका ढाल तट की ओर धीमा और समुद्र की ओर तीव्र होता है, अनुतट प्रवाल भित्ति होती है।

अवरोधी प्रवाल भित्ति और वलयाकार प्रवाल भित्ति की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में तीव्र मतभेद है। इसके लिए कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है जिनमें से उल्लेखनीय निम्न प्रकार है।

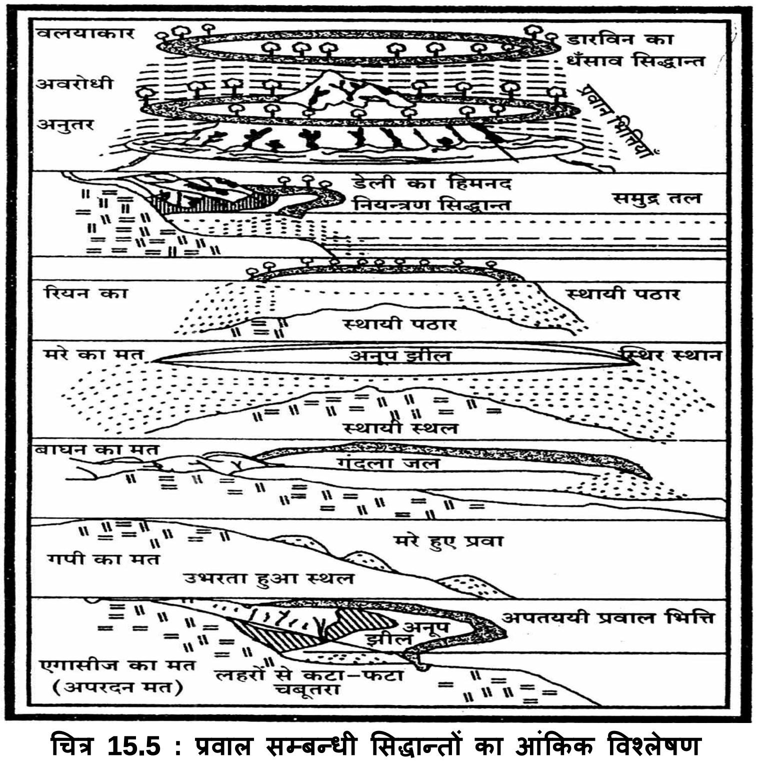

चित्र 15.5 : प्रवाल सम्बन्धी सिद्धान्तों का आंकिक विश्लेषण

15.4.1 डार्विन का निमज्जन सिद्धान्त (Darwin's Subsidence Theory)

डार्विन के समय तक समुद्री विज्ञान, समुद्री नितल, गहराई, तापमान, भू-आकृतियों, खारापन आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं थी। अत: प्रवाल भित्तियों के सम्बन्ध में कोई समस्या ही नहीं थी। सन् 1842 में सबसे पहले डार्विन ने बताया कि प्रवाल भित्तियाँ निमज्जित होते हुए आधार पर जन्म लेती हैं। डार्विन के अनुसार अनुतट, परातट और वलयाकार तीनों ही प्रकार की प्रवाल भित्तियाँ एक ही क्रम में उद्भव होकर विकासोन्मुख स्थिति को प्राप्त होती है। उनका मत है कि सर्वप्रथम किसी द्वीप अथवा स्थल भाग के सहारे अनुकूल परिस्थितियों में प्रवाल समुद्र की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। कालान्तर में वह प्रवाल भित्ति समुद्र की ओर बढ़ती है स्थल की ओर नहीं। इस प्रकार स्थल और प्रवाल भित्ति के मध्य अनूप झील बन जाती है। इस प्रकार अनुतट प्रवाल भित्ति बन जाती है। डार्विन का विश्वास है कि समुद्र तल के धंसाव से लैगून अधिक चौड़ी हो जाती है तथा अनुतट प्रवाल भित्ति द्वीप के चारो ओर या आंशिक रूप से फैलकर परातट या अवरोधक प्रवाल भित्ति को जन्म देती है। पुन: डार्विन महोदय का विचार है कि इतने पर ही स्थल का धंसाव समाप्त नहीं हो जाता वरन् यह प्रक्रिया और अधिक तीव्र हो जाती है। मध्य में स्थित द्वीप अंततोगत्वा पानी में "डूब जाता है तथा प्रवाल ऊपर की ओर भित्ति को बढ़ाते रहते हैं। परिणामस्वरूप या तो द्वीप का कुछ भाग ही लैगून के मध्य दिखाई देता है या सम्पूर्ण द्वीप के निमज्जित हो जाने पर प्रवाल भित्ति से घिरी हुई लैगून झील ही दिखाई देती है। इस प्रकार वलयाकार प्रवाल भित्ति का जन्म होता है।

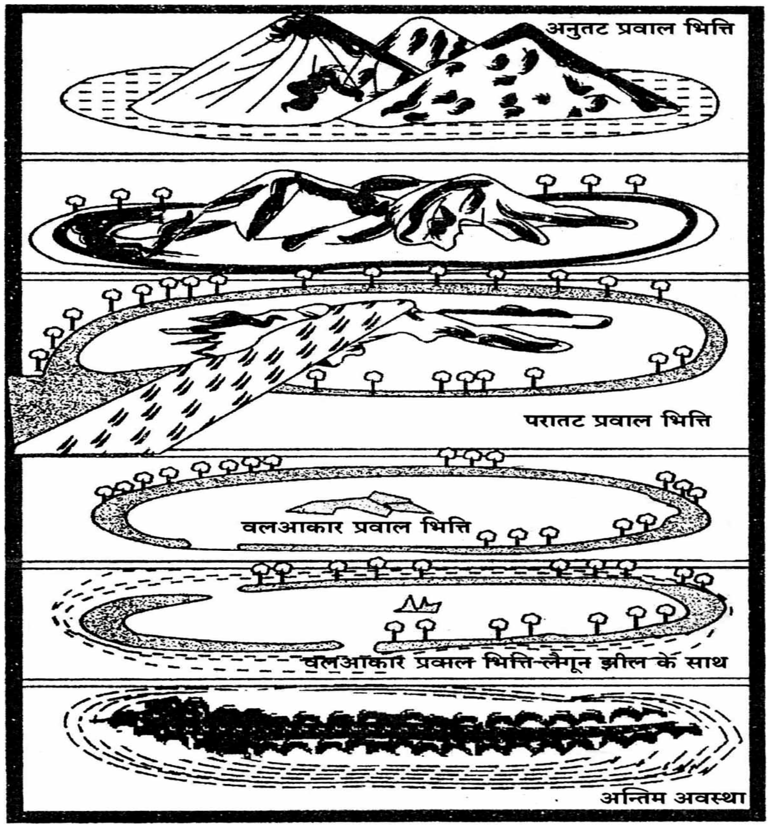

चित्र 15. 6 : डार्विन-डाना का स्थल घंसाव मत

सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of the Theory)

भूतल निमज्जन का सिद्धान्त कई प्रमाणों द्वारा समर्थित किया गया। डाना इसके सशक्त समर्थक रहे हैं जिन्होंने प्रवाल भित्ति के जन्म के बारे में समान विचार प्रस्तुत किये। डार्विन के सिद्धान्त के पक्ष में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये -

1. अवरोधक प्रवाल भित्तियों से आरक्षित किनारों पर जल मग्न घाटियों और भृगु विहीन तटों के प्रमाण पाये जाते हैं। यदि कभी भृगु रहे भी होंगे तो वे निमज्जित हो गये। डाना का मत है कि जलमग्न तट रेखा वास्तव में निमज्जन सिद्धान्त के पक्ष में एक ठोस प्रमाण है।
2. प्रवाल भित्तियों की मोटाई और गहराई भी निमज्जन का समर्थन करती है। प्रवाल केवल 30 फैदम की गहराई तक ही पनपते हैं। कुछ ऐसी वलयाकार प्रवाल भित्तियाँ हैं जिनकी मोटाई 500 से 600 फीट है। यह कैसे सम्भव हुआ? स्पष्ट है ज्यों-ज्यों धरातल धंसकता गया त्यों-त्यों प्रवाल ऊपर बढ़ते गये। इसलिये यह इस सिद्धान्त के पक्ष में प्रबल प्रमाण है।

आलोचना (Criticism)

1. टियूर क्षेत्र में स्थल के धंसाव के प्रमाण नहीं मिलते हैं किन्तु वहाँ पर परातट और वलयाकार प्रवाल भित्तियाँ पनप गई हैं।
2. यदि तीनों प्रकार की प्रवाल भित्तियाँ एक ही क्रम की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के परिणाम है तो एक ही तट या द्वीप पर अनुतट और परातट प्रवाल भित्तियाँ साथ-साथ कैसे पाई जाती हैं? यह भी धंसाव सिद्धान्त से स्पष्ट नहीं हो सकता।

15.4.2 डेली का हिमनद नियंत्रण सिद्धान्त (Glacial Control Theory of Daly)

सन् 1909 में डेली महोदय ने हवाई द्वीप की मौना की (Mavna Kea) नामक प्रवाल भित्ति पर हिमनद के प्रभाव देखे और उनका पूर्ण अध्ययन करने पर उसने सर 1915 में अपना हिमनद नियन्त्रण सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसके मस्तिष्क में एक विचार आया कि प्रवाल भित्तियों के विकास और तापमान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। हवाई द्वीप का वर्तमान शीतकालीन तापमान प्रवाल भित्तियों के विकास के लिये आवश्यक तापमान से कुछ ही ऊपर रहता है। उससे यह निष्कर्ष निकला कि प्लीस्टोसीन हिमयुग में हवाई का तापमान के विकास के लिये बहुत कम था। अत: हवाई द्वीप का प्रवाल भित्तियों के विकास और तापमान में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

डेली महोदय का मत है कि हिमयुग में समुद्री जल तल उन 33 से 39 फैदम तक नीचा चला गया था। इसी समय समुद्री तापमान भी काफी कम हो गया था। लहरों ने इस समय जल के बाहर निकलती हुई प्रवाल भित्तियों को काटना प्रारम्भ कर दिया। तापमान के कम होने से प्रवाल अधिकांशत: समाप्त हो गये। प्रवाल भित्तियों के मध्य स्थित द्वीप को लहरों ने काटकर चबूतरे के समान बना दिया जिन पर आगे चलकर प्रवाल भित्तियों का उदभव हुआ।

कालान्तर में तापमान को ऊँचे उठने से बर्फ पिघलने लगी तथा समुद्री जल तल ऊपर उठा। प्रवाल भी धीरे-धीरे पानी के तल के उभार के साथ-साथ प्रवाल भित्ति का विकास प्रारम्भ कर दिया। प्लेटफार्म की परिधि पर प्रवाल बस्तियों का विकास अधिक हुआ।

सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of the Theory)

1. डेली महोदय के अनुसार अपरदित प्लेटफॉर्म पर हिमयुग के बाद प्रवाल भित्ति का जन्म हुआ। यह तथ्य भूगर्भिक इतिहास से प्रमाणित होता है। प्रवाल भित्ति के निर्माण के समय उसका आधार स्थित रहा और परिणामस्वरूप अनूप झील की गहराई समान नहीं थी।
2. प्रवाल हिमयुग के बाद जल-तल में वृद्धि के साथ-साथ विकसित होते गये। यह गति प्रति तीस वर्ष में एक मीटर बताई गई थी जो संगत लगती है।

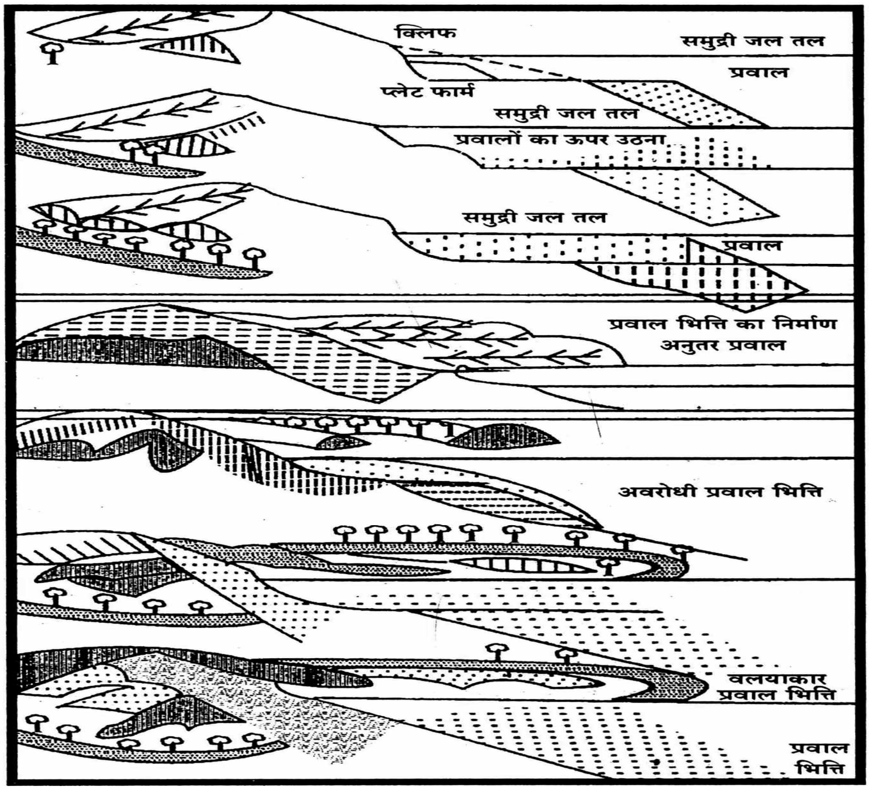

चित्र 15.7 : डेली का हिमनद नियन्त्रण सिद्धान्त

आलोचना (Criticism)

डेविस महोदय ने इस सिद्धान्त के विरूद्ध आपत्तियाँ उठाते हुए कहा कि -

1. डेली महोदय ने लैगून झीलों की गहराई समान बताई है किन्तु कुछ लैगून 20, 120, 300 और 600 फैदम तक गहरे हैं। यह गहराई की भिन्नता कैसे आई है।
2. डेली ने स्थिर सतह पर प्रवालों के जन्म की बात कही है किन्तु कुछ ज्ञातव्य ऐसे अस्थिर क्षेत्र भी हैं जहाँ प्रवाल भित्तियाँ पाई जाती हैं।
3. जिन समुद्री प्लेटफॉर्म का निर्माण डेली के अनुसार लहरों द्वारा माना गया वे इतने विस्तृत हैं कि उन्हें लहरों का कार्य नहीं माना जा सकता जैसे मालदीव के समीप नजोरस प्लेटफॉर्म 350 किमी. लम्बा 100 मिमी. चौड़ा और 100 मीटर ऊँचा है।

15.4.3 मरे का स्थिर स्थल सिद्धान्त (Muray's Stand Still Theory)

मरे और स्पैन्सर महोदय ने काफी समान विचार प्रकट कर परातट और वलयाकार प्रवाल श्रेणियों की उत्पत्ति के विषय में दिये है। उन्होंने अपने सिद्धान्त को दो तथ्यों के आधार पर आगे बढ़ाया है।

1. प्रवाल भित्तियां केवल छिछले पानी में ही विकसित होती हैं। अत: उन्होंने ऊँचे प्लेटफार्मो की उपस्थिति के बारे में विचार किया जिन पर प्रवाल विकसित हो सके।
2. समुद्र का तल अपरिवर्तनशील रहा।

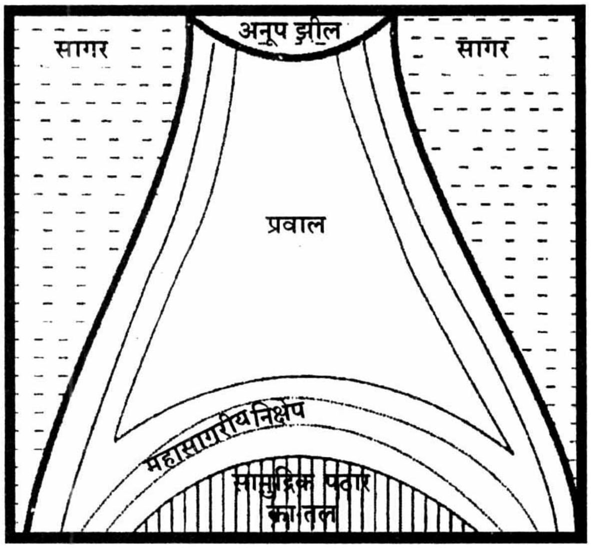

चित्र - 15. : मरे का स्थिर स्थल सिद्धान्त

मरे ने यह विचार किया कि समुद्र में कई जलमग्न चोटियाँ पाई जाती हैं। इनमें से कुछ समुद्री तल से भी ऊपर उठी हुई हैं। इन ऊपर उठी हुई चोटियों पर लहरों ने निरन्तर गति से आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उसका मत है कि ये चोटियाँ समुद्री लहरों द्वारा इतनी काट दी गई कि उन पर प्रवाल जीव अपने को विकसित कर सकें। मरे महोदय के विचारानुसार जब प्रवाल भित्ति जल तल तक बनती हुई पहुँच जाती है तब उसके आन्तरिक भाग में घुलन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसी घुलन क्रिया के कारण बीच में लैगून झील का निर्माण होता है।

सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of the Theory)

1. समुद्री तल और नितल पर पर्वतीय चोटियाँ अवश्य पाई जाती हैं। इन पर लहरों द्वारा अपरदन होता है जिसके प्रमाण भी मिलते हैं।
2. चूने का पत्थर समुद्री जल से निश्चित रूप से घुल सकता है और उससे लैगून झील का निर्माण संभव है।

आलोचना (Critisism)

1. समुद्री पानी उत्तम घोलक नहीं है। अत: इतनी बड़ी और गहरी अनूप झील घुलन क्रिया द्वारा नहीं बन सकती है।
2. डेविस ने मरे द्वारा भू-आकृति के नियमों का उल्लंघन करने की तीव्र आलोचना की है।

15.4.4 आगासीज का अपरदन सिद्धान्त (Agassiz's Erosional Theory)

आगासीज, गार्डीनर (Gardiner), एटल (Atal) आदि विद्वानों ने एक से ही विचार प्रस्तुत किए। उनका मत है कि समुद्री लहरों के द्वारा स्थल और द्वीपों को काटकर जलमग्न प्लेटफॉर्म की रचना कर दी जाती है। इन पर प्रवालों का पतली परतों के रूप में विकास प्रारम्भ हो जाता है। आगासीज के मत में ऑस्ट्रेलिया की ग्रेट बैरियर रीफ, फिजी की प्रवाल भित्तियाँ, ताहिती आदि सभी इसी प्रकार बनी हैं। वलयाकार प्रवाल भित्ति के निर्माण के सम्बन्ध में उनका मत है कि परातट भित्तियों के निर्माण के बाद भी लहरों का कटाव मध्य भाग में निरन्तर क्रियाशील रहता है जिससे लैगून का निर्माण हो जाता है। उनके मत में लैगून में स्थित द्वीप भी कटाव से समाप्त हो जाते हैं।

सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of the Theory)

1. लहरों के कटाव से प्लेटफॉर्म का बनना स्वाभाविक है।
2. लहरों के मध्यवर्ती कटाव से लैगून का निर्माण भी समझा जा सकता है तथा द्वीपों का अपरदन भी स्वाभाविक है।
3. हार्टन (Wharton) ने इस मत का समर्थन करते हुए लैगून की समान गहराई को इस मत से समझे जाने पर जोर दिया है।

आलोचना (Criticism)

1. इस मत के अनुसार प्रवाल सागरों में भृगु पाये जाने की बात कही है। किन्तु वास्तव प्रवाल समुद्रों में बहुत ही कम भृगु पाये जाते हैं। अत: सिद्धान्त अपरिपक्व है।
2. सबसे महत्वपूर्ण आलोचना इस तथ्य को लेकर है अवरोधक प्रवाल भित्ति के निर्माण के बाद भी लहरों द्वारा प्रभावशाली कटाव और लैगून का बनना जारी रहता है। यह सम्भव नहीं है।

15.4.5 डेविस की परिकल्पना (Davis's Hypothesis)

डेविस ने किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया वरन् डार्विन के निमज्जन सिद्धान्त को ही वर्तमान भूआकृतियों की खोज के आधार पर आगे बढ़ाया। डेविस ने तट रेखाओं की बनावट के अध्ययन द्वारा ही प्रवाल रोधिकाओं तथा प्रवाल वलयों की उत्पत्ति के प्रक्रमों को समझाने का प्रयास किया है। डेविस का निष्कर्ष यह है कि अवतलन सिद्धान्त के साथ साथ यदि हिम युग में होने वाले समुद्रों के तल एवं उनके तापमान में उतार-चढ़ाव को मिलाकर भी देखा जाए, तो सभी प्रकार के प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति की समस्या का हल निकल सकता है। प्रवाल भित्तियों का उनके आधार के साथ विषमविन्यासी संस्पर्श (Unconformable contact) तथा प्रवाल भित्तियों से घिरे हुए द्वीपों के अपरदन से प्राप्त मलवे का विसर्जन दो अन्य महत्वपूर्ण बातें हैं जिनकी ओर डेविस ने ध्यान दिलाया।

बोध प्रश्न- 2

1. विश्व की सबसे बड़ी अवरोधक प्रवाल भित्ति कहाँ स्थित है?

   ………………………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

2. प्रवाल के विकास के लिए अनूकूल समुद्री तापमान क्या है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

3. प्रवाल क्या है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

4. भारत में प्रवाल की रचना कहाँ पाई जाती है?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

5. लहरों के कटाव सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन थे?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

6. हिमनद नियन्त्रण सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन थे?

……………………………………………………………………………………

……………………………………………………………………………………

15.5 महासागरीय संसाधन

15.5.1 महासागर - भविष्य के संसाधन (The storehouse future)

विश्व में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से खाद्य पदार्थों तथा प्राकृतिक संसाधनों के अभाव का संकट उत्पन्न होना निश्चित है। भारत जैसे अनेक देश इस संकट का प्रारम्भिक दौर झेल भी रहे हैं। उपर्युक्त स्थिति से निपटने हेतु भविष्य में महासागरों एव उनके संसाधनों पर सहज ही दृष्टि ठहरेगी जो समस्त मानव जाति को इस भयावह संकट से निकाल सकने में सक्ष्म है। भविष्य में मानव जाति को महासागरों से निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति होने की सम्भावना है -

15.5.1.1 महासागर एवं खाद्य आपूर्ति (Ocean and food supply)

विश्व के कुल भोजन का 10 प्रतिशत भाग जलीय भाग से उपलब्ध होता है। मछली जो प्रोटीन युक्त उत्तम खाद्य पदार्थ है महासागरीय संसाधन है। तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या हेतु स्थलीय संसाधनों के विस्तार की सम्भाव्यता अत्यल्प रह गयी है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ खेतिहर भूमि कम होती जा रही है। क्योंकि इनका उपयोग आवास आदि के रूप में होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में महासागरीय संसाधनों की प्राप्ति के प्रति नियोजित अभियान चलाने की आवश्यकता है। समुद्रों में अनेक प्रकार के शैवाल तथा पादप प्लावक उगते हैं, जो प्रोटीन सम्पन्न होते हैं। महासागर इन वनस्पतियों के अनन्त भण्डार हैं। मछलियों की कुल 30 हजार के लगभग प्रजातियों में से 20 हजार प्रजातियाँ महासागरों में पायी जाती हैं। मत्स्योत्पादन मुख्य रूप से

जापान, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा एवं नॉर्वे में होता है। सम्पूर्ण विश्व में भोजन के उद्देश्य से हर वर्ष लगभग 10 करोड़ टन मछली पकड़ी जाती है।

15.5.1.2 महासागर एवं खनिज संसाधन (Ocean and Minerals)

समुद्री जल एवं इसके नितल में विभिन्न प्रकार के आर्थिक महत्व वाले खनिज विद्यमान हैं। समुद्री जल लवणयुक्त होता है जिसमें घुला लवण कुल जल का 3.5 प्रतिशत होता है। कुल लवणों का 78 प्रतिशत खाने योग्य होता है। संसार का लगभग 40 प्रतिशत खनिज तेल (Mineral Oil) महासागरीय क्षेत्रों से प्राप्त होता है। भारत में वर्तमान समय में कुल तेल उत्पादन का 50 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा "बॉम्बे हाई", खम्भात की खाड़ी एवं गोदावरी बेसिन आदि अपतटीय समुद्री क्षेत्रों से प्राप्त हो रहा है। उद्योगों में कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त अनेक खनिज जैसे पोटेशियम आयोडीन, फॉस्फोराइट्स, मैग्नीशियम, प्रोटीन आदि भी समुद्री नितल से प्राप्त होते हैं। महासागरीय कटकों में टाइटेनियम युक्त विशाल लौह-मैग्नीशियम के भण्डार भरे पड़े हैं। अकेले प्रशान्त महासागर में ही 10,000 करोड़ टन खनिज हैं, जिनमें मैंगनीज, लौह अयस्क, कोबाल्ट निकिल आदि प्रमुख हैं। आणविक खनिजों में यूरेनियम, थोरियम आदि समुद्री नितल में विद्यमान हैं। संसार के कुल ब्रोमीन का दो तिहाई भण्डार सागरीय जल में है।

15.5.1.3 महासागर शक्ति के स्रोत (Ocean as source of Energy)

महासागरीय लहरों में असीमित ऊर्जा होती है। ये लहरें कुछ सेमी से लेकर 15 मीटर तक की ऊँचाई की होती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार 5 मीटर से अधिक ऊँचाई वाली लहरों वाले समुद्री क्षेत्रों पर तरंगीय जल विद्युत ऊर्जा संयंत्र स्थापित किया जा सकता है। समुद्री तरंगों को ऊर्जा में रूपान्तरित करने हेतु कई देशों में प्रयास किया जा रहा है। इसमें फ्रांस अग्रणी है। नदियों में शुद्ध जल एवं समुद्री खारे जल का संगम क्षेत्र भी समुद्री ऊर्जा के लिए महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो सकता है। इनके जल में वर्तमान लवणता की मात्रा का अन्तर ही ऊर्जा का स्रोत है। समुद्री जैविक पदार्थ भी ऊर्जा उत्पादन का कार्य कर रहे है। समुद्री घास आजकल गैसीय ईंधन हेतु प्रयोग में आ रहा है।

15.5.1.4 महासागर पेयजल के स्रोत के रूप में

लवण युक्त होने के कारण समुद्री जल प्रत्यक्ष रूप से पेयजल के रूप में काम में नहीं आता है। किन्तु भविष्य में आवश्यकता पड़ जाने पर इसको पेय बनाया जा सकता है। अत: अन्य विकल्प के अभाव में समुद्री खारे जल को पीने योग्य बनाने के लिए इसको लवण रहित करना ही एक मात्र उपाय है। इसके लिए विश्व भर में 500 संयंत्र लग चुके हैं, जो समुद्री जल को पीने योग्य बनाते हैं।

15.3.1.5 अन्य (Others)

वैज्ञानिकों ने प्रयोगशालाओं में समुद्री वनस्पतियों एवं प्राणियों में से विभिन्न औषधियाँ व रासायनिक यौगिक खोज निकाले हैं, जिनका उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता है। इसके अतिरिक्त महासागर हमारी जलवायु को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। ये परिवहन रख व्यापार के प्रमुख मार्ग प्रदान करते हैं। पर्यटन की दृष्टि से भी इसका काफी महत्व है।

15.6 महासागरीय प्रदूषण (Marine Pollution)

सागरीय जल का प्रदूषण मुख्य रूप से सागर तटवर्तीय भागों में नगरीय एवं औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थो के विसर्जन के कारण होता है। महासागरीय जल में आवश्यकता से अधिक कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ, औद्योगिक संयंत्रों के रासायनिक अपशिष्ट (मृत प्राणियों के दैहिक विसर्जन आदि से जल की सहज (प्राकृतिक) संरचना एवं स्वरूप प्रदूषित हो जाता है जिसका मनुष्य तथा अन्य प्राणियों पर घातक प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।

महासागरीय प्रदूषण के कारण (Causes of Marine Pollution)

समुद्री प्रदूषण के अनेक कारण हैं - रेडियोधर्मी पदार्थों का विसर्जन, तटवर्ती नगरों के घरेलू मल एवं औद्योगिक अपशिष्ट विशेषकर विषैले (Toxic) पदार्थों का सागरों में प्रवाह, तेल टैंकरों का समुद्र में परिवहन, अपतटीय तेल वेधन (Oil drilling) आदि।

सघन आबाद क्षेत्रों तथा जल के सीमित आदान-प्रदान वाले समुद्री क्षेत्र तीव्र प्रदूषण के क्षेत्र बन जाते हैं, यथा कैस्पियन सागर, भूमध्य सागर, बाल्टिक सागर आदि।

महासागरीय जल में सबसे अधिक प्रदूषण पैट्रोलियम पदार्थों के निष्कासन एवं परिवहन से होता है। संसार भर के 60 प्रतिशत तेल का आयात-निर्यात समुद्री मार्गों से होता है और इस तेल राशि का कुछ भाग सागर सतह पर फैल जाता है जो प्रदूषण का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त समुद्र तटीय भागों एवं गहरे भागों (Off shores) से खनिज तेल के निकाले जाने के दौरान विभिन्न तरह की असावधानियाँ रख दुर्घटनाओं के कारण समुद्री जल में तेल की मात्रा फैल जाती है। इसके प्रदूषण से समुद्री जीवों एवं वनस्पतियों के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। सन् 1991 में जनवरी-फरवरी में हुये खाड़ी युद्ध के दौरान ईराक ने खनिज तेल को सामरिक अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हुए लाखों टन तेल फारस की खाड़ी में उंडेल दिया जिस कारण उत्तरी खाड़ी का जल पूर्णतया प्रदूषित हो गया। आयल टैंकरों से रिसा हुआ तेल सागरीय सतह पर तीव्रता से फैल जाता है। इस तरह फैले हुए तेल को आयल स्लिक कहते हैं। इसके द्वारा सागरीय जल विषैला हो जाता है। इस कारण बहुमूल्य मछलियों सहित अनेक सागरीय जीव मर जाते हैं।

कीटनाशकों (Pesticides) एवं विषैले औद्योगिक पदार्थों से तटीय समुद्री भागों में प्रदूषण होता है। स्वचालित वाहनों के धुएँ से पर्यावरण में सीसे (Lead) की मात्रा बढ़ जाने पर वायुमण्डल में व्याप्त ये प्रदूषित पदार्थ सागरीय पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। डिटर्जेन्ट, उर्वरक तथा सीवरेज एवं जैविक अपशिष्ट जैसे प्रदूषक (Pollutants) भी पर्यावरणीय असंतुलन में सहायक बनते हैं।

सागरीय प्रदूषण पर नियंत्रण

समुद्रों में तेल के फैलने एवं रेडियोधर्मी प्रदूषण को रोकने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग अनिवार्य है जिसके लिए 1962 में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया जिसमें निम्न कानून की व्यवस्था की गई -

1. सभी समुद्र पत्तनों पर ऐसे जलाशय बनाये जाने चाहिये जिसमें तेल अपशिष्ट फैंका जा सके।
2. प्रत्येक जलयान में उसकी तली से तेल एवं चिकने पदार्थों के रिसाव को रोकने हेतु व्यवस्था होनी चाहिये।

3. टैंकरों को उनकी टंकियाँ समुद्र में धोने की मनाही हो।
4. टैंकरों के डूबने तथा तेल पाइप लाइनों के टूटने से होने वाले प्रदूषण को रोकने का उपाय अपेक्षित हैं।
5. अन्य महासागरीय जल प्रदूषक यथा मल एवं कचरा छोड़ने वाली नदियों से प्रदूषण को निवारित करने हेतु नदियों के समुद्र में गिरने से पूर्व जल को विशुद्ध करने की आवश्यकता पर जोर दिया जाना चाहिये।

बोध प्रश्न- 3

1. भविष्य के संसाधनों का भण्डार किसे बताया गया है?

   ....

   ....
2. समुद्री प्रदूषण का मुख्य कारण क्या है?

   ....

   ....
3. समुद्री जल से प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण खाद्य वस्तु कौनसी है?

   ....

   ....

15.9 सारांश

भूमण्डल के दो तिहाई भाग पर स्थित महासागरों में तलछट का निक्षेप होता है। इनका वितरण सभी जगह समान नहीं है प्रवाल के द्वारा अनेक भित्तियों और द्वीपों की रचना हुई है। प्रवाल भित्तियों और प्रवाल द्वीप वलयों की उत्पत्ति की समस्या बड़ी जटिल है। यद्यपि विद्वानों में यथेष्ट मतभेद है तथापि डार्विन व डाना के अवतलन सिद्धान्त को अधिक मान्यता प्राप्त हुई है। डैली ने स्वयं अवतलन की स्थानीय घटना को अस्वीकार नहीं किया है। वास्तव में प्रवाल भित्तियों के जन्म व विकास को समझने के लिए दोनों सिद्धान्त परस्पर पूरक हैं विरोधी नहीं।

महासागर हमारे लिए भविष्य के भंडार हैं जिनमें अनेक प्रकार के संसाधन संचित हैं। इनका आर्थिक महत्व है। परन्तु इनमें होने वाला प्रदूषण भी एक प्रमुख समस्या है जिसके अनेक कारण हैं। महासागरों में होने वाले प्रदूषणों को रोकने के लिए हमें कड़े-कड़े से उपायों की आवश्यकता है।

15.10 शब्दावली

स्थलजा	:	इसमें कंकड़, मलबा, रेत और कीचड़ सम्मिलित होते हैं।
सिंधु पंक	:	समुद्री जीवों के अवशेष।
लाल मृतिका	:	समुद्र के जिस भाग में समुद्र जीवों के पंक की मात्रा बहुत कम होती है वहाँ लाल मृत्तिका बनती है।
प्रवाल	:	यह एक समुद्री जीव होता है इसे मूंगा भी कहते हैं।
प्रवाल भित्ति	:	प्रवालों के कंकालों की पर्तों के जमने से इनका निर्माण होता है।
पेस्टीसाइड्स	:	कीटनाशक पदार्थ।
प्रदूषक तत्व	:	जो तत्व पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. लाल., डी. एस.	:	जलवायु एवं समुद्र विज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2001
2. मोंकहाउस, एफ. जे.	:	प्रिंसिपल ऑफ फीजीकल ज्योग्राफी, यूनिवर्सिटी ऑफ लन्दन, लन्दन प्रेस, लन्दन, 1962
3. नेगी, बी. एस.	:	भूआकृति विज्ञान के सिद्धान्त, मेरठ, 1981
4. स्टीअर्स, जे. ए.	:	द अनस्टेबल अर्थ, मेन्यू एण्ड कं. लि., लन्दन, 1961
5. शर्मा, एच. एस. एवं अन्य	:	भौतिक भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2003
6. तिक्खा, आर.एन.(2005)	:	भौतिक भूगोल, मेरठ, 2005
7. वूरलिज, एस. डब्ल्यू एण्ड मोरगन, आर. एस.	:	एन आउट लाइन ऑफ ज्योमोरफोलोजी लोंगमेन्स, 1963

15.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न- 1

1. बड़े कणों वाले ज्वालामुखी पदार्थ
2. 2
2. ग्लोबिजेरिना

बोध प्रश्न- 2

1. ऑस्ट्रेलिया
2. $20^{o}C$
3. एक समुद्री जीव
4. अण्डमान द्वीप समूह में
5. गार्डिनर
6. डेली

बोध प्रश्न- 3

1. महासागर
2. औद्योगिक अपशिष्ट
3. क्लोरिन

15.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. महासागरीय निक्षेप की विवेचना कीजिए।
2. सागरीय निक्षेपों के स्रोत क्या हैं? इनके प्रकारों का विस्तृत विवरण लिखिए।
3. ऊज से आप क्या समझते हैं। विभिन्न प्रकार के ऊजों का वर्णन कीजिये।
4. महासागरीय निक्षेपों को वर्गीकृत कीजिए तथा उनका विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. प्रवाल भित्ति क्या है? विभिन्न प्रकार की प्रवाली रचनाओं का वर्गीकरण कीजिये।
6. प्रवाल भित्ति के विकास के लिए अनुकूल दशाएँ क्या हैं?
7. डार्विन तथा मरे के प्रवाल की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
8. प्रवाल भित्ति एवं वलन की उत्पत्ति के सन्दर्भ में किसी एक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

9. “महासागर भविष्य के संसाधन के भण्डार हैं" व्याख्या कीजिए।

10. महासागरीय प्रदूषण के कारण, प्रभाव तथा नियंत्रण के उपाय बताइये।